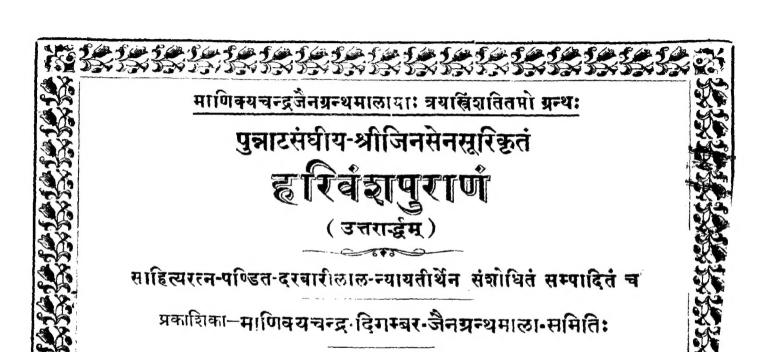
बोर सेवा मन्दर
विल्लो

कम संन्या 228.07 र्



मुल्यं सार्द्धस्यकम्

पब्लिशर— नाथूराम प्रेमी मंत्री, माणिक्यचन्द्रजैनग्रन्थमाला हीराबाग, बम्बई, नं० ४

* * * * * *

> मुद्रक— वि० बा० परांजपे, नेटिष ओपीनियन प्रेस, आग्रेवादी, गिरगांव, मुंबई नं. ४.

हरिवंशपुराणस्य विषयसूची ।

| विंषय | पृष्ठा: | श्लोकाः | विषय | र्ह्याः | श्लोकाः |
|----------------------------------|---------|---------|----------------------------------|---------|---------|
| प्कत्रिंशत्तमः सर्गः | ४०१ | | द्वात्रिंशः सर्गः | 885 | |
| वसुदेवस्य सूर्वदेण हरणं | ४०१ | * | बलदेवजन्म | 412 | 8 |
| मुक्तेन तेन कुंडपुरे कन्यालामः | 808 | ₹ | सर्वपत्नीनामानयनं | 858 | 12 |
| म्हेन्छक्न्यवा जरका सह विवाहः | 808 | • | ऋयश्चिकः स्क्रीत | ** | |
| वस्तो अस्स्कुमारजन्म | 808 | G | | | |
| योषमवस्याः रोहिण्याः स्वयंवरः | 808 | 99 | वसुदेवशिष्येण कंसेन सिंहरशबन्धनं | 83.0 | * |
| तथाः मायकवेषिणाः वसुदेवस्य वरणं | 808 | | कंसस्य जीक्यससा बिवाहः मथुरालामः | | |
| स्वयंवरे कुठीनत्वानियमः | 804 | 40 | વિતુર્વે ષન ગ્ર | 860 | 66 |
| राजोमेः सह वशुद्धयुद्धोः विजयश्च | Rod | 40 | मुनिवाक्यतः इंसस्य भयं | 856 | \$2 |
| समुद्रविजयेन सह युद्धः परिचयः | | | वशिष्ठाख्यानम् | 220 | ยูเง |
| समागमश्च | ४०८ | 99 | समभद्रादीनाम् पूर्वजन्मानि | ४२४ | 94 |

| चतुिस्त्रंशः सर्गः | ४३० | | सुप्रतिष्ठस्य जिनदीक्षा | ४३४ | ४७ |
|------------------------------------|-----|-----|-----------------------------------|------|-----|
| वसुदेवस्य नेमिविषयकप्रश्नः | 830 | 8 | सुप्रतिष्ठस्य नानाविधोपवासाः | 838 | 40 |
| विदेहेऽईद्दासो चृपः | 830 | ३ | उपवासभेद निरूपणम् | ४३४ | 42 |
| जिनपूजारता तस्य पत्नी | ४३१ | 8 | षोडशकारणभावनाः | 888 | १३२ |
| अपराजितकुमारः | 836 | 4 | पंचत्रिंदाः सर्गः | 840 | |
| पुष्करार्धे सूर्यामो भूपतिः | 856 | 8 € | वसुदेवस्य पट्पुत्राः | ४५० | ۶ |
| तस्य त्रयः पुत्राः | ४३२ | 80 | | A. 7 | |
| अरिंजयनृपस्य प्रीतिमती कन्या | ४३२ | १८ | श्रीकृष्णजन्म | ४५१ | 88 |
| गतियुद्धविजेत्रे देया इति कन्यायाः | | • | ् श्रीकुणस्य गोकुले प्रेषणम् | ४५३ | २२ |
| वरयाचनं | ४३२ | १९ | यशोदासुतायाः नासिकाच्छेदः | 848 | ३० |
| गतियुद्धे कन्यायाः विजयः | ४३२ | २३ | गोकुले कुष्णवर्द्धनं | 844 | ३५ |
| सूर्याभपुत्राणाम् वैगायं | 833 | ३२ | कृष्णेन कंसदेवतापराजयः | ४५६ | 36 |
| स्वर्गमनं राजपुत्रत्वं च | ४३३ | ३३ | कृष्णदर्शनाय देवक्याः गोकुले गमनं | ४५७ | ४९ |
| अपराजितस्याच्युतेन्द्रत्वं | 833 | 80 | कृष्णगवेषणाय कंसस्य प्रयत्नः | ४६० | ६८ |
| ततश्च सुप्रतिष्ठराजपुत्रत्वं | 838 | 85 | कुष्णस्य नागशय्यारीहणादि | ४६२ | ७५ |
| | | | | | |

| षट्त्रिंशः सर्गः | ४६३ | | एकोनचत्वारिंशः सर्गः | ४९१ | |
|--------------------------------|-----|----|----------------------------------|-----|----|
| कृष्णेन कालियाहिमर्दनं | ४६३ | 8 | भगवतः स्तुतिः | 898 | 8 |
| कृष्णस्य महायुद्धे विजयः | ४६४ | 88 | मेक्तः आगमनं | 884 | • |
| कंसवधः | ४६९ | 88 | चत्वारिंदाः सर्गः | ४९९ | |
| कारागारादुग्रसेनस्य मुक्तिः | ४७० | 48 | जरासंघभयाद्याद्वानां प्रस्थानं | ४९९ | 8 |
| जीवयशसः पितुः समीपे गमनं | ४७१ | 42 | देवताच्छहाजारासंधस्य परावर्तनं | 408 | २८ |
| सत्यभामया सह कृष्णविवाहः | ४७१ | 48 | एकचत्वारिंशः सर्गः | ५०३ | |
| विवाहे कुलयोषिताम् नृत्यं | ४७२ | ६२ | समुद्रे द्वारवतीसृष्टिः | 403 | १ |
| जरासंधसमीपे जीवद्यशसः रोदनं | ४७३ | ६५ | नगरीप्रवेशः | 408 | γ° |
| जरासंध पु त्रवधः | ४७३ | ७० | द्वाचत्वारिंशः सर्गः | 406 | |
| सप्तत्रिंशः सर्गः | ४७५ | | नारदागमनं | 406 | ۶ |
| रत्नबृष्ट्यादि, स्वप्नदर्शनं च | ४७५ | 8 | चरमशरीरिणः नारदस्य चरितं | 408 | 82 |
| स्यमक्तलकथनं | 800 | २४ | नारदस्य संयमासंयमत्वं | 480 | २० |
| अष्टत्रिंशः सर्गः | ४८२ | | सत्यभामया नारदस्य तिरस्कृतिः | 480 | २५ |
| भगवतो नेमेः जनमकत्याणकं | ४८२ | 8 | नारदेन कृष्णरुक्मिणीविवाहसंयोजनं | 488 | 33 |

| कुष्णसमीपे पत्रक्रेयणं | 413 | 40 | अभिवायुभूतयोर्मुनिवधाय यत्नः | 429 | १३७ |
|--------------------------------------|------------|-----|--|-----|-----|
| रुक्मिणीहरणं | 488 | 40 | उभयोर णुवतग्रहणं | 480 | १४५ |
| शिशुपालवधः | 488 | 96 | उभयोः स्वर्गमनं श्रेष्ठिपुत्रत्वं च | 430 | १४६ |
| रैवतके गिरौ विकाही द्वारिकाप्रवेशश्र | ५१६ | 95 | तत्पित्रो ह्युनीचाण्डाळत्वं पुमश्च देवस्वं | | |
| त्रिचत्वारिंशः सर्गः | 486 | | राजपुत्रीत्वं च | 476 | 141 |
| सत्यमामायाः ईष्यी तर्दुष्फलं च | 485 | 8 | स्वयंवस्मतायाः नवयौवनायाः कन्याय | π: | |
| प्रयुद्गादिजन्म | 428 | 38 | प्रवज्या | 430 | 240 |
| प्रयुन्नहरणं | 458 | ३९ | ् पुनश्रकीतश्च्युतावश्रिबायुभूती मधु- | • ` | • - |
| कालसंवरचपेण पालनं | 422 | ४९ | कैटभी जाती | 434 | १५८ |
| रु विमणी विलापः | ५२३ | ६२ | | | • |
| नारदागमनं | 428 | OS | मधुना परिश्वयाः चन्द्राभायाः हरणं | 456 | १६५ |
| सीमंधरान्तिके गमनं | 424 | 63 | चन्द्राभाषाः महादेवीत्वं | ५३२ | १७६ |
| आग्नेवायुभूती | 496 | ९९ | उभयोर् च ैराग्यं | 439 | 160 |
| मुनिसमीपे उमयोः पराजयः | ५२६ | १०४ | आरणच्युतकल्पे देवत्वं | 4३4 | २५७ |
| पामरकस्य जिनदीक्षा | 426 | १२२ | ततश्च प्रयुष्नादिभवावातिः | 434 | २७७ |
| | | | | | |

| चतुश्चत्वारिंशः सर्गः | 436 | | हिडंवसुन्दर्याः भीमेन विवाहः | 448 | ७७४ |
|--|-----|-----|----------------------------------|-----|------------|
| जाम्बक्तीहरणं | 436 | 3 | द्रीपदीलाभः | 448 | १२० |
| शेषमहादेवीलाभः | ५३९ | २० | द्रोपद्याः पञ्चभर्तृकत्वसंडनं | 448 | १५० |
| पंचचत्वारिंशः सर्गः | ५४२ | | षट्चत्वारिंशः सर्गः | 444 | |
| कुरुवंशपरिचय: | 482 | 8 | यूते पांडवपराजयः निर्गमनं अमणं च | 444 | G |
| कीरवपांडवविरोधः | 484 | 39 | रामगिरौ जिनप्रतिमावन्दनं | ५५६ | 16 |
| मार्गववं शः | ५४६ | 88 | कीचकपराजयः | 440 | 99 |
| संधिद्षणोचोगः | 488 | ४९ | कीचकस्य साधुत्वं उपसर्गजयश्च | 446 | ४२ |
| पांडवगृहदीपनं तिन्निःसरणं 🗷 | ५४७ | 4६ | की बकमोहकारणम् | 449 | ४७ |
| युधिष्ठिरे सुदर्शनाया अनुरागः | ५४७ | ६१ | सप्तचत्वारिंशः सर्गः | 450 | |
| वसंतसुन्दर्याः युधिष्ठिरेऽनुरागात्तापसा- | | | द्वा स्कायाम्पांडवनिवासः | 460 | 8 |
| श्रमे वासः | 486 | 90 | प्रयुम्नकथा | 4६२ | २० |
| मीमेन नरमक्षिराक्षसवधः | 488 | 93 | प्रयुक्तस्य षोडशलामाः | 483 | १९ |
| पांडवदाहश्रवणाद्राजकन्यानामणुबतत्वं | 440 | 34 | कनकमाळायाः सम्मोहः | 468 | 88 |
| अनेकदेशेषु कन्यालाभवचनावाप्तिः | 440 | १०५ | प्रयुम्नवभप्रयत्नः | 466 | 49 |

| कैवस्योत्पात्तः | ६५० | 888 | रुक्मिण्याः पूर्वभवाः | ७०४ | २५ |
|-------------------------------|-----|-----|-----------------------------------|-----------|-----|
| सप्तपंचाशः सर्गः | ६५२ | | धीवरकन्यायाः तीर्धवन्दना | ७०५ | ३७ |
| समवसृतिवर्णनं | ६५२ | y | जांबवत्याः पूर्वभवाः | ७०६ | ४२ |
| अष्टपंचाशः सर्गः | ६६७ | | सुसीम।पूर्वभवाः | ७०७ | पृद |
| भगवतो वाणी | ६६७ | 8 | लक्ष्मणापूर्वभवाः | 500 | ७४ |
| जैनतत्त्वोपदेशः | ६६७ | ? ? | गौरीपूर्वभवाः | ७१० | ९५ |
| एकोनषष्ठितमः सर्गः | ६९२ | | पद्मावतीपूर्वभवाः | ७११ | १०४ |
| मगवतो विहारवर्णनं | ६९२ | १ | गजकुमारेण ब्राह्मणकन्याविवाहः | ७१२ | १२६ |
| विहारदेशाः | 500 | 809 | शलाकापुरुषादीनाम् पूर्वभवाः कल्या | ण- | |
| देवकीपुत्राणाम् जिनदीक्षा | ७०१ | ११६ | क।दि-जनकादिपरिचयः | ७१३ | 134 |
| उर्जयन्तागमनम् | ७०१ | १२६ | रुद्रानिरूपणम् | ७४४ | 438 |
| षष्ठितमः सर्गः | ७०३ | | नारदनिरुपणम् | ७४५ | 486 |
| बेवक्याः पुत्राविषयकः प्रश्नः | ७०३ | ₹ | शकराजकालः | ७४५ | 448 |
| सत्यभामायाः पूर्वभवाः | ६०७ | 80 | कल्किराजानः | ७४५ | ५५२ |
| क न्यादानादिकुदानं | ¥०थ | ? ? | भाविष्यत्कुलकरादयः | ७४६ | ५५३ |

| एकषष्ठितमः सर्गः | ১৪১ | | बरुस्य करणविलापः | ७६५ | २० |
|------------------------------------|------------|----|---------------------------------------|---------------|----|
| अंतक्करकेवलीगजकुमारः | ७४८ | 8 | बलस्य मोहमूर्च्छा | ७६८ | 85 |
| द्वारिकानाशविषयकप्रश्नः | ७४९ | 14 | जरत्कुमारस्य दक्षिणमथुरागमनं | ७६९ | ४६ |
| कुष्णस्य दीक्षाज्ञा | oyo | ३७ | पांडवान्तःपुरे विलापः | ७६९ | 48 |
| द्वीपायनस्य कोधः | ७५१ | ४६ | बलसंबोधनभ्रयतनः | 19 000 | 48 |
| द्वीपायनचरेणाभिकमारेण द्वारिकादाहः | ७५३ | ৬१ | बलस्य जागृतिःजिनदीक्षा च | ७७२ | ₹0 |
| बलकुष्णयोः व्यर्थः रक्षायतः | vyy | 60 | | • | 40 |
| चरमदेहानाम् जिनसमीपे आनयनं | ७५५ | ९२ | चतुःषष्ठितमः सर्गः | 650 | |
| ग्रन्थकर्तु उपदेशः | ७५५ | 93 | पांडवानाम्पूर्वजनमिन मुनिधर्मवर्णनञ्च | 650 | 8 |
| द्विषाष्ठितमः सर्गः | ७५६ | | पंचषष्ठितमः सर्गः | ७९२ | |
| बलकुष्णयोर्दक्षिणाशाम्प्रतिगमनं | ७५६ | 3 | भगवतो निर्वाणवर्णनं | ७९१ | 3 |
| धार्तराष्ट्रस्योपद्रवः | ७५७ | ६ | शरीराविलयः | 490 | 18 |
| हरेर्मरणं | ७५८ | २७ | पांडवानामुपरि उपसर्गः | 680 | 96 |
| त्रिषष्ठितमः सर्गः | ७६२ | | नारदमुाक्तेः | ७९४ | २४ |
| बलस्य जलानयनं | ७३२ | 8 | बलदेवस्योपरि उपसर्गः शमनं स्वर्गगमनं | ष७९४ | २६ |

(१२)

| बलदेवचरदेवस्य कृष्णसमीपगमनं | ७९५ | ४३ | वरिस्य निर्वाणं | ٥٥٥ | १५ |
|-----------------------------------|------------|----|-------------------------|-----|----|
| कृष्णकीर्तिवर्द्धनाम बलदेवप्रयानः | ७९६ | 43 | वीरानन्तरमाचार्यपरम्परा | ८०१ | २२ |
| षट्षष्ठितमः सर्गः | ७९५ | | वारानन्तरमाचायपरम्परा | 201 | ** |
| हरिवंडावरम्परा | ७९८ | ξ | ग्रन्थकर्नुःपरिचयः | ८०३ | ३३ |

(१३)

यन्थमालाके पूर्वप्रकाशित यन्थोंकी सूची।

[तमाम ग्रन्थ लागत मूल्यपर बेचे जाते हैं. अतएव इसके सभी ग्रन्थ बहुत सस्ते हैं ।]

- १ लघीयस्त्रयादिसंग्रह—(१ भट्टाकलंकदेवकृत लघीयस्त्रय अनन्तकीर्तिकृत तात्पर्यवृत्तिसहित, २ भट्टा-कलकदेवकृत स्वरूपसम्बोधन, ३-४ अनन्तकीर्तिकृत लघु और बृहत्सर्वज्ञसिद्धि) पृष्ठसंख्या २२४। मूल्य 😕)
 - २ सागारधर्मामृत-पं० आशाधरकृत, स्वोपज्ञभव्यकुमुदचन्द्रिका टीकासहित । पृष्ठसंख्या २६० ।
 - ३ विकान्तकौरवीय नाटक-किव हस्तिमहाकृत । ए० १७६ । मू० ।=)
 - ४ पार्श्वनाथचरित-श्रीवादिराजसरिप्रणीत । पृ० २१६ । म०॥)
 - ५ मैथिलीकस्याण-किवितर हस्तिमल्लकृत नाटक । १० १०४ । मू० ।)
 - ६ आराधनासार—देवसेनकृत मूल और रत्नकीर्तिदेवकृत संस्कृतटीका । १८ १३२ । मू० ।)॥
 - ७ जिनदत्तचरित--श्रीगुणभद्राचार्यकृत काव्य । १० १०० । मू० ।)॥
 - ८ प्रयुष्त्रचरित--महामहत्तर श्रीपप्पटके गुरु आचार्य महासेनकृत काव्य । १० २३६ । मू० ॥)
 - ९ चारित्रसार—श्रीचामुण्डराय महाराजरचित । पृ० १०८ । मू० ।≈)
 - १० प्रमाणनिर्णय-श्रीवादिराजसूरिकृत न्याय । १० ८४ । मृ० 🗁
 - ११ आचारसार-श्रीवीरनन्दिप्रणीत यतिधर्मशास्त्र । पृं० १०४ । मू० ।=)

१२ त्रिक्टोकसार-शीनेमिचन्द्रकृत मूळ और माधवचन्द्रकृत संस्कृतटीका । मू० १॥)

१३ तत्त्वानुशासनादिसंप्रह—(१ श्रीनागसेनमुनिक्कत तत्त्वानुशासन, २ श्रीपूज्यपादस्वामिकृत इष्टोपदेश पं आशाधरकृत संस्कृतटीकासहित, ३ श्रीइन्द्रनिदकृत नीतिसार, ४ मोक्षपंचाशिका, ५ श्रीइन्द्रनिदकृत कुत श्रुतावतार, ६ श्रीसोमदेवप्रणीत अध्यात्मतरंगिणी, ७ श्रीविद्यानन्दश्वामिप्रणीत बृहत्पंचनमस्कार या पात्रकेसरी-स्तोत्र सटीक, ८ श्रीवादिराजप्रणीत अध्यात्माष्टक, ९ श्रीअमितगतिसूरिकृत द्वात्रिंशतिका, १० श्रीचन्द्रकृत वैराग्यमणिमाला, ११ श्रीदेवसेनकृत तत्त्वसार (पाकृत), १२ ब्रह्महेमचन्द्रकृत श्रुतस्कन्ध, १३ ढाढसी गाथा (प्राकृत), १४ पद्मसिंहमुनिकृत झानसार संस्कृतच्छायासहित।) प्रष्टसंख्या १८४। मू० ॥ =)

१४ अनगारधर्मामृत-पं० आशाधरकृत स्वोपज्ञ-भव्यकुमुदचिन्द्रकाटीकासहित । मू० ३॥)

१५ युक्त्यनुशासन-श्रीमत्समन्तभद्रस्वामिकृत मूल, विचानन्दस्वामिकृत संस्कृतटीका । मू० ॥-)

१६ नयचकसंप्रहः—(१ श्रीदेक्सेनस्रिकृत नयचकं, २ आळापपद्भति और ३ माइह धवलकृत द्रव्य-गुणस्वभावप्रकाशक नयचकं) पृष्ठसंख्या १९४। मृ० ॥ 🔊

१७ षट्प्राभृतादिसंप्रह—(१ श्रीमत्कृदकुन्दस्यामिकृत मूल षट्पाहुड और उसकी श्रुतसागरसूरिकृत संस्कृतटीका, २ श्रीकुन्दकुन्दकृत स्थिप्राभृत, ३ सीलप्रामृत, ४ रयणसार और ५ द्वादशानुप्रेक्षा संस्कृतछाया-सहित।) पृष्ठसंख्या ४९२। मू० ३)

१८ प्रायश्चित्तसंप्रह — (१ इन्दनन्दियोगिन्द्रिकृत छेदपिण्ड प्राकृत छ।यासहित, २ नवतिवृत्तिसहित

छेदशास्त्र, ३ श्रीगुरुदासकृत प्रायश्चित्तचूलिका, श्रीनन्दिगुरुकृतटीकासहित, ४ अक्लंककृत प्रायश्चित्त)। मू० १०)

१९ मूलाचार-(पूर्वार्ध), श्रीवहकेरस्वामीकृत मूल, श्रीवसुनन्दिकृत आचास्वृत्ति। १०५२०। मू०२॥)

२० भावसंत्रहादि—(१ श्रीदेवसेनसूरिक्कत प्राकृत भावसंग्रह छ।यासहित, २ श्रीवामदेवपण्डितकृत संस्कृत भावसंग्रह, श्रीश्रुतमुनिकृत भावत्रिमंगी और ४ आस्रवत्रिभंगी) ए० ३२८ । मू० २।)

२१ सिद्धान्तसारादिसंब्रह—(१ श्रीजिनचन्द्राचार्यकृत सिद्धान्तसार प्राकृत, श्रीज्ञानभूषणकृत भाष्यसित, २ श्रीयोगीन्द्रकृत योगसार प्राकृत, ३ अमृताशीति संस्कृत, ४ निजात्माहक प्राकृत, ५ अजितबहाकृत कत्याणालोयणा प्राकृत, ६ श्रीशिवकोटिकृत रत्नमाला, ७ श्रीमाचनन्दिकृत शास्त्रसारसमुख्य, ८ श्रीप्रभाचन्द्रकृत अर्हत्प्रवचन, ९ आप्तस्वरूप, १० वादिराजश्रेष्ठीप्रणीत ज्ञानलोचनस्तोत्र, ११ श्रीविष्णुसेनरचित समवसरणस्तोत्र, १२ श्रीजयानन्द्रसूरिकृत सर्वज्ञस्तवन सटीक, १३ पार्श्वनाथसमस्यास्तोत्र, १४ श्रीगुणभद्रकृत चित्रबन्धस्तोत्र, १५ महर्षिस्तोत्र, १६ श्रीपद्मप्रभदेवकृत पार्श्वनाथस्तोत्र, १७ नेमिनाथस्तोत्र, १८ श्रीभानुकीर्तिकृत शंखदेवाहक, १९ श्रीअमितगतिकृत सामायिकपाठ, २० श्रीपद्मनन्द्रित धम्मरसायण प्राकृत, २१ श्रीकृलभद्रकृत सारसमुचय, २२ श्रीशुभचन्द्रकृत अंगपण्णित प्राकृत, २३ विवृधश्रीधरकृत श्रुतावतार, २४ शलाकाविवरण, २५ पं० आशा-धरकृत कल्याणमाला) प्रश्वसंख्या ३६५ । मू० १॥)

२२ नीतिवाक्यामृत-श्रीसोमदेवसूरिकृत मूळ और किसी अज्ञातपण्डितकृत संस्कृतटीका। मू०१॥) २३ मूळाचार-(उत्तरार्ध) श्रीवदृक्षेरस्वामिकृत। पृष्ठसंख्या ३४०। मू० १॥) २४ रत्नकरण्डश्रावकाचार—श्रीमत्स्वामिसमन्तभद्रकृत मूल और आचार्य प्रभाचन्द्रकृत संस्कृतटीका, साथ ही लगभग २०० पृष्टकी विस्तृत भृमिका (हिन्दीमें) है, जिसमें स्वामी समन्तभद्रका जीवनचरित और मूल तथा टीकायनथकी निष्पक्ष तथा मार्मिक समालोचना की गई है। भूमिकालेखक बाबू जुगलिकशोरजी मुख्तार हैं जो इतिहासके विशेषज्ञ हैं। सम्पूर्ण यन्थकी पृष्टसंख्या २४०। मू० २)

२५ पंचसंग्रह—माथुरसंघके आचार्य श्रीअभितगितस्तिकृत । इसमें गोम्मटसारका सम्पूर्ण विषय संस्कृतमें श्रीकबद्ध लिखा गया है । प्राकृत नहीं जाननेवालों के लिए बहुत उपयोगी है । पृष्ठसंख्या २४० । मू० ॥८) २६ लाटीसंहिता—पण्डित राजमल्लजीकृत श्रावकाचारका अपूर्व ग्रन्थ । पृष्ठसंख्या १३२ । मू० ॥) २० पुरुदेवचम्पू—कविवर्य अर्हहासकृत । प० जिनदासशास्त्रीकृत टिप्पणसहित । मू० ॥) २८ जैन-शिलालखसंग्रह-श्रवणबेलगोल (जैनबद्दा)के तमाम शिलालखांका अपूर्व संग्रह, इसका सम्पादन बाबू हीरालालजी जैन, एम०ए०,एलएल०बी०ने किया है । प्रत्येक लेखका सारांश हिन्दीमें दे दिया गया है । मू०२) २९-३०-३१ पद्मचित—(पग्नपुराण) आचार्य रविषेणकृत विशाल कथाग्रन्थ । मूल्य ५॥) नोट—नं० २, ५, ७, ९, १०, ११, १२, १३ के ग्रन्थ अब नहीं मिलते हैं ।

नाथुराम प्रेमी, मन्त्री, माणिकचन्द-जैन-प्रन्थमाला, हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

एकत्रिंशत्तमः सर्गः।

अथ हम्येत के सुमः प्रभावत्या सहान्यदा । सूर्य केण हतः सौरिर्जुबुधे स चिरेण खे ॥ १ ॥ जघान मुष्टिघातेन विद्विषं चामुचत् स खात्। गादावयोः पपातायं ऋदे देहसुखावहे ॥ २ ॥ तत्र कुंडपुरे लेमे कन्यां पद्मर्थस्य सः । माल्यकौशलयोगेन कलाकौशलशालिनीं ॥ ३ ॥ ततोऽपि नीलकंठेन नीत्वा मुक्तोऽपतद् यदुः। चंपामरसि संप्राप्तस्तस्यां सोऽमात्यदेहजां ॥४॥ जलकीडारतम्तत्र स हतः सूर्पकारिणा । विमुक्तश्च पपातासौ भागीरथ्थां मनोरथी ॥ ५ ॥ प्यटन्नटवीं तत्र म्लेच्छराजेन वीक्षितः । परिणीय सुतां तस्य जराख्यां तत्र चावसत् ॥ ६ ॥ जरत्कुमारमुत्पाद्य तस्यामुचतिकमः । अवंतिसुंदरीं प्राप शूरसेनां च शंसितां ॥ ७ ॥ पुरुषान्वेषिणीमन्यां कन्यां जीवद्यशःश्रुति । उपयम्यापराश्रासावरिष्टपुरमाययौ । ८॥ राजा तत्र तदा धीरो रुधिरो युधिरोधनः । तस्य मित्रा महादेवी देवीव द्युतिसंपदा ॥ ९ ॥ ज्यष्ठो हिरण्यनाभाष्यस्तनयो नयवित्तयोः । रणशौंडो महासत्त्वः शस्त्रशास्त्रेकृतग्रहः ॥ १०॥ कलापारमिता रूपयोवनोद्यधारिणी । तनया रोहिणीनाम्ना रोहिणीव यशस्विनी ॥ ११ ॥

स्वयंवरविधौ तस्याः संगताः सकलाः नृपाः । जरासंधं पुरोधाय समुद्रविजयादयः ॥ १२ ॥ तत्र चित्रमणिस्तंभधारितेषु यथाक्रमं । ते मंचेषु समासीना नृपा भूषितविग्रहाः ॥ १३ ॥ वसुदेवोऽपि तत्रैव भ्रात्रलक्षितवेषभृत् । तस्थौ पाणविकांतस्थौ गृहीतपणवोऽग्रणीः ॥ १४ ॥ ततः स्वयंवरांतर्भभागं सौभाग्यभूमिका । प्रविष्टा रोहिणी कन्या रोहिणीवातिरूपिणी ॥ १५॥ तदा च सर्वभूपालैर्वलिरेरलमाङ्करैः । साऽलोकि युगपन्नेत्रैरर्चयद्भिरिवांबुजैः ॥ १६ ॥ तद्रस्पश्रवणाद् येषां परा प्रतिरभूतपुरा । सा रूपदर्शनात्तेषां महत्त्वमगमत्परं ॥ १७ ॥ श्रुतितूलतनो वृद्धो योऽनुरागतनूनपात् । दर्नेधनदीप्तस्य तस्य वृद्धिः किम्रुच्यतां ॥ १८ ॥ शंखतूर्यरवस्यांते ततो धात्री पवित्रवाक् । धृतप्रसाधनां कन्यां मान्यामाहाभितो नृपान् ॥१९॥ आतपत्रमिदं यस्य चंद्रमंडलपांडुरं । त्रिखंडजयतो लब्धं यशःस्वमिव शोभते ॥ २०॥ यस्य चाज्ञाकराः सर्वे भूचरास्तु नभश्वराः । वसुंधरेश्वरः सोऽयं जरासंधोऽवतिष्ठते ॥ २१ ॥ वृणीष्य रोहिणी वांतं नृपं त्वल्लाभलोभतः । रोहिणीसंगम्रिक्तत्वा क्षिति चंद्रमिवागतं ॥२२॥ तिसमन्तरागिणीं बुद्धा रोहिणीं साह सान्त्रिका। जरासंधमुतास्त्रवेते हणीष्येषु हृदि स्थितं ॥२३॥ धात्री चेतोविद्चे तां मथुरानाथमग्रतः । उग्रसेननृषं पश्य रोचते यदि ते सुते ॥ २४ ॥

लब्धधीः साह शौर्यादीन पश्य सौर्यपूराधिपान् । मालामारोपयामीषामेकस्य रुचितस्य ते ॥२५॥ इत्युक्त तेषु चेतोऽस्या बभार गुरुगौरवं । ततोऽदर्शयदेषास्यै पांडुं विदुरमप्यतः ॥ २६ ॥ दमधोषं यशोधो । दत्तवक्त्रं सुविक्रमं । शूल्यं शल्यमिवारीणां तथ्यं शत्रुंजयं नृपं ॥ २७ ॥ चंद्राभं चंद्रवत्कांतं मुख्यं कालमुखं ततः । पौंडूं च पुंडरीकाक्षं मत्स्यं मात्सर्यवर्जितं ॥ २८ ॥ संजयं च जये सक्तं सोमदत्तं नृषोत्तमं । तत्पुत्रं भातृभिर्युक्तं भूरिश्रवसमाश्रयं ॥ २९ ॥ सुनुनां इग्रुमता इत्यंतं कपिलं विपुलेक्षणं । तथा पद्मरथं भूपं सोमकं सोमसौम्यकं ॥ ३० ॥ देवकं देवनाथामं श्रीदेवं श्रीववृश्चितं । प्रदर्श तान् नृपानित्यं वंशस्थानादिशंसिनी ॥ ३१ ॥ अन्यानिप च कन्याये धात्री सा न्यायविज्ञगो। एतावंतो नृपा बाले ग्रुख्याः किमिदमास्यते॥३२॥ कुरु कन्ये गुणं कंठे चित्तस्थस्येह कस्यचित्। त्वत्सौभाग्यगुणाकृष्टराजकस्यास्य संनिधौ ॥३३॥ त्वं प्रकाशय सौभाग्यं कस्यचिचित्तहारिणः। योग्यभर्तृपरिप्राप्तिचित्तचितास्तिनद्रयोः॥ ३४॥ वृतयोग्यवरा पित्रोध्रेग्धे कुरु सुखासिकां।

एवमुक्ताऽवदत्कन्यां साधु मातरुदीरितं । किंतु त्वद्वितिष्वेषु न मनो रज्यते कवित् ॥ ३५ ॥ दर्शनानंतरं यत्र स्नहोऽभिव्यज्यते हृदि । पौनरुक्तयं भवेद्वाच्यं तत्राप्यत्राप्यनर्थता ॥ ३६ ॥

न रागो न च विद्वेषो न मोहो न च शून्यता । मुनेरिव ममामीषु जातोपेक्षा कुतोऽप्यहो ॥३७॥ यद्यमीभ्यः परः कोऽपि विधिना मे विधिप्सितः। वरस्तं दर्शयत्वद्य विधिरेव जगद्गुरुः॥३८॥ तद्वचोऽनंतरं इन्या शुश्राव पणवध्वनि । श्रव्यं श्रवणमार्गेण गत्वा चेतोऽतिकर्षिणं ॥ ३९ ॥ इतः पत्रय बरारोहे ! त्वन्मनोहरणक्षमं । राजहंसिमिति स्पष्टं बभाण पणवः स हि ॥ ४० ॥ परावृत्य ततः कन्या प्रयंती सा व्यलोकतः। राजलक्षणसंयुक्तं वसुदेवं वसूपमं ॥ ४१ ॥ अन्योन्यदृष्टिसंपातिनशातशरसंपदा । मनो मनसिजश्रके ततो जर्जरितं तयोः ॥ ४२ ॥ आसाद्य सा ततस्तस्य भूषणस्यनहारिणी । कंठे कंठगुणं चक्रे स्तनचक्रेण संनता ॥ ४३ ॥ मंचस्थस्योपकंठेऽस्य समासीना व्यराजत । रोहिणी हारिणी तारा रोहिणीव कलावतः ॥४४॥ नवसंगमसंजातसाध्वसेन सकंपना । कन्या सा स्वांगसंगेन तस्यांगसुखमाहरत् ॥ ४५ ॥ तं स्वयंवरमालाक्य केचिद्चुरिमं नृपाः । जातोतुरूपयोर्थोगो रत्नकांचनयोरिव ॥ ४६ ॥ अहो नैपुण्यमेतस्याः कन्याया यदयं नृपः । कोऽपि गूढकुलः श्रीमान् प्रधानपुरुषो वृतः ॥४७॥ मात्सर्योपहतास्त्वन्ये जगुः पाणिवकं वरं । कुर्वत्या पत्यतात्यंतमन्यायः कन्यया कृतः॥ ४८॥ पराभृतिमिमां राज्ञां नैव युक्तमुपेक्षितुं । सर्वदातिप्रसंगः स्यादेवं सति महीतले ॥ ४९॥

कुलीनानां समाजेऽस्मिन् परस्यावसरोऽस्य कः । वक्तु वा वक्तुकामश्रेत्कुलीनः कुलमात्मनः॥५०॥ न चेदेवं करोत्येप को अपि नीचान्वयोद्भवः। कुड्यतां राजपुत्रस्य कन्याप्यस्त्विह कस्यचित्॥५१॥ दसुदेवस्ततो धीरः प्रोवाच क्षुभितान् नृपान्। श्रूयतां क्षत्रियद्देशैः साधुभिश्र वचो मम ॥ ५२॥ स्वयंवरगता कन्या वृणीते रुचिरं वरं । कुलीनमकुलीनं वा न क्रमोऽस्ति स्वयंवरे ॥ ५२ ॥ अक्षांतिस्तत्र नो युक्ता पितुभ्रोतुर्निजस्य वा । खयंवरगतिज्ञस्य परस्येह च कस्यचित् ॥ ५४ ॥ कश्चिन्महाकुलीनोऽपि दुर्भगः सुभगोऽपरः । कुलसोमाग्ययोर्नेह प्रतिबंधोऽस्ति कश्चन ॥ ५५॥ तदत्र यदि सौभाग्यमविज्ञातस्य मेऽनया । अभिन्यक्तं न वक्तन्यं भवद्भिरिह किंचन ॥ ५६ ॥ अथ पौरुषद्र्पेण कश्चिदत्र न शाम्यति । शमयामि तमाकर्णकृष्टमुक्तैः शिलीमुखैः ॥ ५७ ॥ तच्छ्रत्वाऽऽशु जरासंधः कुद्धः प्राह नृपान् नृपाः । गृह्यतामयग्रुद्वृत्ता रुधिरश्च सुपुत्रकः ॥५८॥ क्षुमिताः पूर्वमेवाऽऽसन् द्विगुणं चिकिवाक्यतः । खलप्रकृतयां भूषाः सन्नद्धाः यादुमुद्यताः ॥५९॥ साधुप्रकृतयः केचित्तत्र क्षत्रियपुंगवाः । तस्थुः पापनिवृत्तेच्छाः पृथक् स्वबलसंगताः ॥६०॥ पक्षास्तु रुधिरस्येके प्रतिपक्षविभित्सया । सन्नद्य सहसा प्राप्ताः रुधिरारुणवीक्षणाः ॥ ६१ ॥ रथं हिरण्यनामः स्वं तस्थावारोप्य रोहिणीं । समस्तबलसंयुक्तो रुधिरोऽपि वरं वरं ॥६२॥

रुधिरो मधुरैर्वाक्यैर्निजयोधानबोधयत् । यूयं महारथो युद्धे कुरुध्वं युक्तमात्मनः ॥६३॥ वरेण श्रज्ञारोऽवाचि पूज्य ! मे स्यंदनं द्वतं । समर्पय महानेकशस्त्रास्त्रपरिपूरितं ॥६४॥ कांदिशीकान् करोम्यद्य यद्दुतं क्षत्रियानमृन् । संख्येऽप्रख्यातवंशस्य सहंतां मे शरानमी ॥६५॥ इत्यक्त रुधिरोऽतापि पुरुषांतरवीक्षणात् । आढाकय दृढास्त्राद्यं यावनाश्वमहारथं ॥६६॥ खेटो द्धिमुखः शारि शूरो रथवरं स्थितः । मनोरथ इव प्राप्तस्तदा दिव्यास्त्रभासुरः ॥६७॥ प्रणतश्च स तं प्राह रथमारोह मे दुतं । सार्थिस्तव युद्धेः हं जिह शत्रुकदंबकं ॥६८॥ आहरोह रथं शौरिस्तस्य तुष्टः परिष्कृतः । चापी च कवची चित्रशरसंघातसंकुलं ॥६९॥ द्विसहस्ररथं सैन्यं षट्सहस्रमदद्विपं । चतुर्दशसहस्राश्चं लक्षात्मकपदातिकं ॥७०॥ रोधिरं युधि सान्निध्यं शोरेराश्च तदाश्रितं । शत्रुसैन्यविनाशाय कृतनिश्चयमाबभौ ॥७१॥ चतुरंगेण तेनाशु बलेन बलशालिना । अदृष्टपारमध्यं च शोरिः शुबलोद्धि ॥७२॥ संपातश्र तयोजीतः सैनयोश्रतुरंगयोः । समुद्रघोषयोः शंखतूर्योदिरवरौद्रयोः ॥७३॥ हस्त्यश्वरथपादातमौचित्येन यथायथं । हस्त्यश्वरथपादातमभ्येत्यायुघ्यदाहवे ॥७४॥ नीरंभ्रशरजालेन नभोंरंभ्रीपधायिना । न सहस्रकरोऽदर्शि रणेऽन्यत्रैव कथैव का ॥७५॥

असिचकगदाघातरक्तधारांधकारिते । निरुद्धः पादसंचारो रणे तेजोनिधेरपि ॥७६॥ पतिद्विभैत्तमातंगैः पर्वतेरिव सर्वतः ! नर्रक्षे रथेर्घोषः शीर्यमाणैर्महानभूत् ॥७७॥ अथ सेनामुखं खिन्नं चिरं कृतरणं निजं । शौरिहिरण्यनाभश्च साधारियतुमुद्यतौ ॥७८॥ तौ दृष्टिम्ष्ट्रिसंधानप्रयोगानभिलक्षितौ । शनैश्छाद्यितं लग्नौ परं योधानितस्ततः ॥७९॥ न नागों न रथो नाश्चों न नरो वा महाहवे। यो न जर्जरितस्ताभ्यां ग्रुंचद्भचां निश्चितान् शरान् ॥८०॥ द्विद्प्रयुक्तशरासारं वायव्यास्त्रेण सोऽिकरत् । शौरिर्माहेंद्रवाणेन निचकर्त्त धनुंष्यपि ॥८१॥ छत्राणि शशिशुभ्राणि शत्रृणां स यशांसि च । सुतुंगान्मूर्धजान्मान्यान् शरपातैरपातयत् ॥८२॥ युध्यमान तथा तस्मिन् वीरे वीरभयानके । हिरण्यनाभवीरेण रणे पौंडुः पुरस्कृतः ॥८३॥ कुमारयोस्तयोस्तत्र सुमहारथवर्त्तिनोः । शरैर्युद्धमभूद्रौदं यथा सिंहिकशोरयोः ॥८४॥ अपातयदु ध्वजं छत्रं रोधिरिः सार्राथं रिपोः । रथस्य तुरगान् वेगादध्यक्षांश्र शरैः शितैः ॥८५॥ ततश्रंडरुषा पौंड्रो वज्रदंडिनभेः शरैः। कृतानुरूपमस्यारेः स चकार तदेव हि ॥८६॥ ततो हिरण्यनाभोऽपि विभेद कवचं द्विषः । केतुं छत्रं च वाणौषै रथमारथिवाजिनः ॥८७॥ विरथीकृत्य पौड़ोऽपि तमाशु शितिसायकैः। सद्यः प्राणहरं तस्य संघत्ते यावदाशुगं ॥८८॥

वसुदेवोऽर्द्धचंद्रेण ताविच्छत्त्वाऽस्य तद्धनुः । चक्रे हिरण्यनामं च त्वरयाऽश्वरथे स्थिरे ॥८९॥ छाद्यमाने तथा पौंडे शौरिणा शरवर्षिणा । ववृषुः शरसंघातानेकीभूय बहुद्विषः ॥९०॥ शरैः शरान् निवार्याऽसो विभेद निशितैः शरैः । शत्रुं शत्रुवितीर्णोचैः साधुकारः पदे पदे ॥९१॥ अथ साधुन्पेस्तत्र न्यायविद्धिरितीरितं । न दृष्ट्यमिदं युद्धमेकस्य बहुभिः सह ॥९२॥ ततो जगौ जरासंघो धर्मयुद्धदिदक्षया । अनेन सह कन्यार्थमेकैको युध्यतामिति ॥९३॥ ततः शत्रुंजयो लग्नः शौरिणा योद्धमुद्यतः । श्रेपास्तु प्रेक्षका जाता क्षत्रियाः क्षत्रमत्सराः ॥९४॥ शरान् शत्रुंजयोत्धिप्तान् शौरिः प्रक्षिप्य दूरतः । तं ध्वस्तरथसन्नाहं विह्नलीकृत्य मुक्तवान् ॥९५॥ दत्तवकत्रस्ततो दत्तचिरयुद्धो मटाद्धतः। विरथीकृत्य निर्मुक्तो निःसारीकृतपौरुषः ॥९६॥ रिपुं कालग्रुखं प्राप्तं रणे कालमिवोद्धतं । प्राणशेषमक्षौ कृत्वा विससर्जीर्जितो यदुः ॥९७॥ शल्यं रथेन संप्राप्तं तीक्ष्णसायकमोचकं । ज्ञंभणास्त्रेण रोद्रेण बवंधांधकवृष्णिजः ॥९८॥ समुद्रविजयं प्राह जरासंधस्ततो द्वतं । त्वं हरास्य रणे दर्पे पार्थिवास्त्रविशारदः ॥९९॥ अपि न्यायविदुत्तस्थौ स राजा राजशासनात्। युद्धं प्रायोऽनुवर्शते प्रभुं न्यायविदोऽपि हि॥१००॥ समुद्रविजयादेशात्पुनः सार्थिना रथः । द्धावोचैध्वेजच्छत्रो वसुदेवं रथं प्रति ॥१०१॥

दृष्ट्या ज्येष्ठरथं दूरात् कनीयान् सार्थि जगा। ज्यायांगं मम जानीहि समुद्रविजयं त्विमं॥१०२॥ मंदमत्र गुरौ वाह्यो रथो दिधमुख ! त्वया । सापेक्षं हि मया योध्यमनेन गुरुणा रणे ।। १०३ ॥ यथोदिष्टं ततस्तेन रथः सार्थिना रणे । नोदितोऽपि ययौ मंदः स्यंदनं गुर्विधिष्ठितं ॥१०४॥ निजसारथिमाजिस्थः समुद्रविजयो जगौ । भद्र ! योधिममं दृष्टा सस्नेहं मे मनः कुतः ॥१०५॥ दक्षिणाक्षिभुजास्पंदो बंधुसंबंधगंधनः । युधि बध्यस्य सान्निध्ये वद संबध्यते कथं ॥१०६॥ सुनिमित्तविसंवादो नानुभूतश्च जातुचित् । विमद्धदेशकालस्वात्संवादोऽपि न युज्यते ॥१०७॥ इत्युक्ते सोऽवदत् स्वामिन्नभ्यमित्रमितस्य ते । अवद्यं बंधुसंबंधो जितजेयसैय जायते ॥ १०८ ॥ परे राजन्नजय्यस्य राजलोकस्य सन्निधा । परस्य विजये पूजां राजराजादवाप्स्यसि ॥१०९॥ सोऽभिनंदिततद्वाच्यः कार्म्वकी तं सकार्म्यकं । शरधेः शरमुद्भत्य जगादोद्भतसायकं ॥११०॥ भो धीर ! ते यथादृष्टं मूधे धनुषि काँशलं । तथा निवहणं तस्य त्वं कुरुष्व ममाग्रतः॥१११॥ शोधशैल ! तबोत्तंगमानशंगमनावृतं । आवृणोमि शरेमेंचैः समुद्रविजयस्त्वहं ॥११२॥ कुमारः स्वरभेदेन जगो किं नो बहुदितः । आवयोरिह राजेंद्र ! रणे व्यक्तिभीविष्यति ॥११३॥

१ ' जितये यस्य जायंत १ इति क.ग पुस्तकयोः ।

सम्बद्धविजयस्त्वं चेन्संग्रामविजयस्त्वहं । न चेत्प्रत्येषि तित्क्षप्रं क्षिप संघाय सायकं ॥११४॥ इत्युक्ते मुक्तमाध्यस्थो वैशाखस्थानमास्थितः। संधाय श्ररमाकृष्य विव्याध क्रोधतो नृषः॥११५॥ प्रतिक्षिप्तेन स क्षिप्रपाशुगेन तमाशुगं । दुगदेव च चिच्छेद वैशाखस्थानमंडितः ॥११६॥ मुक्तान्मुक्तान्नुपेणासाविषुनिषुभिराहवे । प्रत्युनमुक्तिराविश्विप्रं दूरादेव निराकरोत् ॥११७॥ वायव्यवारुणाद्येस्तौ दिव्यास्त्रेरस्रकोविदौ । युयुधातं नृदेवानां साधुकारैःस्तुतौ चिरं ॥११८॥ इयेष्ठो मुमोच यान्वाणान् योद्धमारियवाजिनां।तान् कनिष्ठोऽच्छिनद्बाणेवैनतेय इवोरगान्॥११९॥ एकैकं स त्रिधा छित्त्वा क्षुरप्रं स्रात्योजितं । युवा विव्याध तस्यास्त्र रथसारथिवाजिनः ॥१२०॥ इष्ट्रास्त्रकोशलं तस्य वर्शस्यनीश्वराः । शिरष्कंपांगुलिस्फोटसाधुवादविधायिनः ॥१२१॥ ज्यायानज्ञातसंबंधः पुनः संधाय सायकं। दिव्यमस्रसहस्राणां महस्रमपुचद् रुषा ॥१२२॥ अस्त्रं ब्रह्मशिरः शीघ्रमस्त्रच्छाद्नमप्यसौ । युवा क्षिप्त्वाऽच्छिनद्रौद्रं ज्यायसा क्षिप्तसायकं॥१२३॥ परं कौशलमस्त्रेषु वसुदेवस्य यद्रणे। चिच्छेदास्त्राणि चित्राणि ररक्ष च निजाग्रजं॥१२४॥ इत्थं कृतरणक्रीडः कनीयान् ज्यायसे ततः। प्रजिघाय घनस्नेहः स्वनामांकं निजं शरं॥१२५॥

१ 'शनैः ? इति ख पुस्तके ।

अनुकूलमिषुं राजा तमादायेत्यवाचयत्। अज्ञातो निर्गतो योऽसौ महाराज! तवानुजः ॥१२६॥ सोऽयं वर्षशतेऽतीते संप्राप्तः स्वजनांतिकं। पादप्रणाममद्यार्थं! वसुदेवः करोति ते ॥१२७॥ आनुस्नेहसमुद्रेकात्समुद्रविजयस्ततः। क्षिप्तचापो रथाचूर्णमुत्तीर्याप निजानुजं ॥१२८॥ उत्तीर्णः स्यंदनादाशु वसुदेवोऽपि दूरतः । प्रणतः पादयोस्तेन दोभ्यीमालिंग्य चोद्भतः ॥१२९॥ आक्षिष्य कदतोस्रीत्रोः साधुलोचनयोस्तयोः। प्राप्याक्षुभ्यादयः सर्वे कंठलग्रास्ततोऽरुदन्॥१३०॥ श्वसुरास्तस्य यावंतः सपुत्रास्तत्रसंगताः । बांधवाश्वापरे लग्ना रुख्द् रणरंगगाः ॥१३१॥ जरासंघादयस्तुष्टा दृष्टा भ्रातृसमागमं । शशंसू रोहिणीं कन्यां तद्भातृपितृबांधवाः ॥१३२॥ यथास्वं शिबिरस्थानं दिनांते ते ययुर्नृषाः । वसुदेवकथाशक्तो निशा निन्युर्दिनान्यपि ॥१३३॥ त्ततिथौ प्रशस्तायां रोहिणीचंद्रसंग्रमे। रोहिणीमुपयेमेऽसौ समुद्रविजयानुजः ॥ १३४॥ हृष्ट्या विवादमुर्वीशास्तुष्टिषुष्टिसमन्विताः । वर्षं तस्थुर्जरासंधसभुद्रावेजयादयः ॥१३५॥ कृतसाहायकः संख्ये वसुदेवः स पूजितः । आपृच्छ्य प्रययौ प्रीतो निजं दिधमुखः पदं ॥१३६॥ वरो नवबधुहारिवकांभाजमधुव्रतः। न सस्मार स्मराशक्तः पूर्वभुक्तबधुलताः ॥१३७॥

प्रादुर्भृतसमस्तभूतलमहाभूपाललोकैः समं
संभूयाद्भुतविक्रमैकशरणप्राणे रणपांगणे ॥
प्रारब्धा अध्याद्भुतिक्षित्रभूजजय्यो न यद्दोःसखः
शोरिः शोर्यगिरिर्जिनोक्ततपसस्तप्तस्य तत्प्राभवं ॥ १३८॥
इति " अखिनोमिपुराणसंग्रहे " हरिवज्ञे जिनसेनाचार्यकृतो रोहिणीस्वयंवर
भादृसमागमवर्णनो नाम एकिविंदाः सर्गः।

द्वात्रिंशः सर्गः ।

अथ सा रोहिणी मत्री विचित्रे शयने उन्यदा। प्रसप्ता चतुरः स्वप्नान् ददर्श शुभस्रचिनः ॥ १॥ रुद्रं चंद्रं समच्छायं गजेंद्रं मंद्रगर्जितं। समुद्रं सांद्रनिर्घोषं महींद्रोचे महोमिकं॥ २॥ चंद्रं चंद्रमुखी पूर्णं दृष्ट्वा पूर्णमनोरथा। कुंदशुभ्रं मृगेंद्रं सा ददर्शास्यत्रवेशिनं॥ ३॥ विबुद्धा च प्रभाते तान् विबुद्धां बुजलोचना। पत्ये न्यवेदयत्सो उस्या इति स्वप्नफलं जगौ॥ ४॥ उत्पत्स्यते सुतः क्षित्रं धीरो उलंघ्यः शशिष्रभः। एकवीरो भुवो भक्ती प्रिये! ते जनताप्रियः॥ ५॥

इति पत्या समादिष्टं थुत्वा स्वप्नफलं शुभं । हारिणी रोहिणी हृष्टा शिश्रिये श्रियमैंदवीं ॥ ६॥ च्युत्वा कल्पान्महाशुक्रान्महासामानिकः सुरः । गर्भेऽभूदिह रोहिण्या धरण्या इव सन्मणिः ॥७॥ ततः पूर्णेषु मासेषु सुखं संपूर्णदोहला । साऽसूत सुतमृक्षेषु शुभेषु शशिसंनिभं ॥ ८॥ तस्य जन्मोत्सवं दृष्टा जरासंधपुरःसराः । यथास्थानं ययुः शीताः पार्थिवाः कृतपूजनाः ॥ ९ ॥ अभिरामः स रामाख्यां प्रख्याप्य पृथिवीतले । वर्द्धते वर्द्धयन् प्रीतिं पित्रोर्बेधुजनस्य च ॥ १०॥ श्रीमंडपस्थितान सर्वानेकदा रौधिरास्पदे । समुद्रविजयाद्यांस्तान् वसुदेवहितोद्यतान् ॥ ११ ॥ खावतीणीभिनंद्येका दिच्या विद्याधरी श्रिता। वसुदेविमतः प्राह सुखासनकृतासना ॥ १२ ॥ देव! वेगवती पत्नी बालचंद्रा च मे सुता। पादयोस्तव संपत्य बांछित प्रियदर्शनं ॥ १३॥ कुमारी त्वद्रतप्राणा बालचंद्राऽवतिष्ठते । गत्वा तां त्वं विवाह्याऽऽशु कुरु तिचतिर्वृतिं ॥१४॥ तदाऽऽकर्ण्य वचस्तेन दृष्टिज्येष्ठे समर्पिता । अभिप्रायिता तेन लघ्वेहीति विसर्जिताः ॥ १५॥ तमादाय गता साऽपि पुरं गगनबल्लमं । समुद्रविजयाद्याश्च ययुः शौर्यपुरं नृपाः ॥ १६ ॥ भार्या वेगवतीं दृष्ट्वा शोरिर्गगनब्छमे । बालचंद्रामुवाहाऽत्र पूर्णचंद्रसमाननां ॥ १७॥ नवबध्वा तया सार्द्र वगवत्या च हृद्यया । रममाणोऽवसत्तत्र दिनानि कतिचित्सुखी ॥ १८ ॥ ताभ्यां जिगमिषोस्तस्य शीघं शौर्यपुरं पुरं । चक्रे वनवती देवी विमानं रत्नभास्वरं ॥ १९ ॥ पिता कांचनदंष्ट्रोऽथ परिवारं ददौ परं । समस्तं बालचंद्राया वेगवत्याश्च सोऽग्रजः ॥ २० ॥ कामगेन विमानेन सोऽनेन वनितासखः । अरिजयपुरं गत्वा विद्युद्वेगं निरीक्ष्यत ॥ २१ ॥ प्रियां मदनवर्गा तामनादृष्णि च देहजं । आदायाऽऽञ्ज विमानेन तेनैव वियद्द्ययाँ ॥ २२ ॥ पुरं गंधसमृद्धं द्राक् श्रीसमृद्धमवाष्य सः । सुतां गांधारराजस्य पश्यति स्म प्रभावती ॥ २३ ॥ समारोप्य विमाने तां परिवारसमन्त्रितां। प्राप्तः प्राप्तमहाहर्षः सहसाऽसितपर्वतं ॥ २४ ॥ सिंहदंष्ट्रात्मजां दृष्ट्रा स नीलयशसं प्रियां । तत्रारमत्तया चित्तं प्रवियुक्तं समेतया ॥ २५ ॥ तामप्यादाय संप्राप्तः किन्नरोद्गीतमत्र च । नीलोत्पलदलक्यामां कामं व्यामाममानयत् ॥ २६॥ इयामामादाय संप्राप्तः श्रावस्तीमनयत्ततः । प्रियंगुसुंदरीं शौरिस्तां च बंधुमतीं प्रियां ॥ २७ ॥ महापुरात्समादाय सोमिश्रियमसौ प्रियां । इलावर्धनतो निन्ये मान्यां रत्नावती च तां ॥ २८॥ नगरे भद्रिलाभिष्वये गृहीत्वा चारुहासिनीं । पौंडुं संस्थाप्य तत्रैव गत्वा जयपुरं ततः ॥ २९ ॥ अश्वसेनामुपादाय गत्वा शालगुहं पुरं । पद्मावतीं समादाय वेदसामपुरं ययौ ॥ ३० ॥ कपिलं तत्र पुत्रं स्वमभिषिच्य ततोऽपि च । गृहीत्वा कपिलां प्रापदचलग्राममत्र च ॥ ३१ ॥

मित्रिश्रयं प्रमुद्यागात्रगरं तिलवस्तुकं । कन्या पंचशतं ग्राही पुरं गिरितटं गतः ॥ ३२ ॥ ततः सोमश्रिया युक्तश्रंपां प्राप महापुरीं । अता आत्यसुतां निन्ये सह गंधर्वसेनया ॥ ३३ ॥ पुरे विजयखेटे च सूनुमद्भरदृष्टिकं । दृष्टा विजयसेनां स निन्ये कुलपुरं ततः ॥ ३४ ॥ पद्मिश्रयमुपादाय तथैवावंतिसुंदरीं । सूरसेनां सपुत्रां च जरां जीवयशोन्वितां ॥ ३५ ॥ गृहीत्वाऽन्याः स्वभार्याः स वसुदेवः ससंमदः। आययौ प्रमदं प्राप्तो विमानेनाञ्चगामिना ॥३६॥ आससाद विमानं तचाहसंगीतसंगतं । आशु शौर्यपुरं सूर्यविमानमिव भास्वरं ॥ ३७ ॥ ततो धनवती देवी समुद्रविजयं स्वयं। प्राग् दृष्टचा व्वर्धयनुष्टचा वसुदेवागमाप्तया ॥ ३८॥ कारियत्वा ततः पारैः पुरशोभां नृपा ग्रुदा । निर्ययो बंधुभिः सार्द्धं तस्याभिमुखमाद्दतैः ॥३९॥ सोऽवतीर्य विमानाग्रादग्रजान् गुरुबांधवान् । प्रणनाम प्रियायुक्तः प्रणतः प्रणयात् परैः ॥४०॥ देव्यः शिवादयो नम्रं सयोषं साञ्चलोचनाः । तमाश्चिष्याशिषो भूयः खेऽविश्लेषफला ददुः ॥४१॥ सन्मानितयथायोगजनताजनितादरः । स रेमे रोहिणीशोऽसिन् बंधुसिंधुहितोदयः ॥ ४२ ॥ समुद्रविजयं दृष्टा वसुदेवं च देवता । ययौ वेगवती प्रीता निजं स्थानं हितोद्यता ॥ ४३ ॥

लोकः शौर्यपुरोद्धवोऽपि च तदा शौर्याजितं निर्जितः स्माभृचक्रमुद्दारचारुचिर्तं विद्याधरीयस्त्रमं । देवाभं वसुदेवमासविभवं दृष्ट्यातितुष्टोऽगदीद् धर्मस्येष जिनोदितस्य महिमा पूर्वाजितस्येत्यसौ ॥ ४४ ॥ इति "अग्टिनेमिपुराणसंग्रहे" हरिबंशे जिनसेनाचार्यकृतौ सक्रहवंधुवधूसमागमवर्णनो नाम द्वात्रिंशः सर्गः।

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ।

अथ स प्राधितः प्राज्येः पार्थिवः पार्थिवान्सजः । शास्त्रापदेशमातन्त्रसास्ते सूर्यपुरे यदुः ॥१॥ दृष्ट्वा कंसस्य काशल्यं वसुदेवो जगा तकं । वरं हृणीप्व तेनोक्तं तिष्ठत्वार्य ! तवांति । ॥२॥ जातु कंसादिभिः शिष्यधनुर्वेदिवचक्षणेः । गतो राजगृहं शौरिजरासंधिददृक्षया ॥३॥ अश्रापीद् घोषणां राज्ञः पुरे राजकराजित । मावधानस्य लोकस्य समाकण्यं यतस्तदा ॥४॥ यः सिंहरथमुद्वृत्तं तं सिंहपुरवासिनं । सत्यसिंहरथास्त्रदमास्द्वपुरुषोरुषं ॥ ५ ॥

१ ख ग पुस्तकयोनीयम् श्लोकोऽत्र, किंतु एकादशश्लोकार्धस्यानन्तरं ।

जीवग्राहं गृहीत्वाऽसौ दर्शयिष्यति मेऽग्रतः । स एव पुरुषो लोके शूरः शूरतरोऽपि च ॥६॥ तस्य मानधनस्यांते पीतशत्रुयशोंऽबुधेः । आनुषंगिकमप्येतत्फलमन्यसुदुर्छभं ॥७॥ जीवद्यशसमाक्रांतविश्रांतयशसं गुणैः । सुतामीप्सितदेशेन सह दास्यामि सुंदरीं ॥८॥ श्रुत्वा तां घोषणां श्रव्यां वीरैकरसभावितः । कंसेनाग्राहयद्वीरः पताकां यदुनंदनः ॥ ९ ॥ गत्वाऽसौ स समारुह्य विद्यासिंहमयं रथं । सिंहशुंखलमञ्छैत्सीत् शरेस्ते हरयोप्यगुः ॥१०॥ शत्रुमुत्पत्य कंसस्तं वर्षथ गुरुशासनात् । दर्शितो वसुदेवेन जरासंधाय सोप्यरिः ॥११॥ दृष्ट्या च तेन तुष्टेन सुतोपनयनं प्रति । वसुदेवः समादिष्टः कंसेनारेप्रदं जगौ ॥१२॥ पृष्टः कंसो नृषेणारूयत् खजातिमिति भूषते। मम रंजोदरी माता कौशांब्यां शीधुकारिणी ॥१३॥ कंसवाक्यमिति श्रुत्वा ततो राजेत्यचितयत्। आकृतिः कथयत्यस्य नायं सीधुकरीसुतः ॥१४॥ आनीनयन्त्रपं मंख्रु कौशांब्यास्तां निजैस्ततः । प्राप्ता रंजोदरी त्वात्तामंजूषा नाममुद्रिका ॥१५॥ पृष्टा पूर्वीपरं राज्ञा व्यजिज्ञपदिति प्रभो । यमुनायाः प्रवाहेऽयं लब्धो मंजूषया सह ॥१६॥ संवर्द्धितः शिश्र राजन् मया कारुण्ययुक्तया । उपालंभसहस्राणां भूयो भाजनभीतया ॥१७॥ स्वभावाश्वंडरुंडोयमभेकान् दुर्भगोऽर्भकः । रमयन शिरस्ताडाद्विना क्रीडति पुण्यवान् ॥१८॥

गृहं सीधगृहीत्यर्थं वेदयानां बालिकाः श्रिताः। पाणिनाऽऽकृष्य वेणीस्ताः सुखलीकृत्य ग्रुंचित।।१९।। लोकोपालंभतो भीत्या मयकाऽयं निराकृतः। कृतवान् शस्त्रशिक्षार्थौ शिष्यतां किल कस्यचित्।।२०॥ कंसमंजुषिका होषा माता तिष्ठति नाहकं । तदुणौरस्य दोपैर्वा न स्पृश्ये स्पृश्यतामियं ॥२१॥ इत्युक्ते दिशितायां च तया तस्यां व्यलोकत । तन्नाममुद्रिकां राजा ततो वाचयति सम सः ॥२२॥ गर्भस्थोऽपि सुतोऽत्युग्रः पद्मावत्युग्रसेनयोः । जीवताद्वरमात्मीयैः कर्मभिः कृतरक्षणः ॥२३॥ वाचियत्वेति विज्ञाय राजा स्वस्रीयमान्मनः । हृष्टः कन्यां ददौ तस्मै संपन्नगुणसंपदां ॥२४॥ सद्यो जातं पिता नद्यां पुक्तवानिति स कुधा । वरीत्वा मथुरां लब्ध्वा सर्वसाधनसंगतः ॥२५॥ कंसः कालिंद्सेनाया सुतया सह निर्घृणः । गत्वा युद्धे विनिर्जित्य बबंध पितरं द्वतं ॥२६॥ महोग्रो भन्नसंचारमुग्रसेनं निगृद्य सः । अतिष्ठिपत् कनिष्ठाशः स्वपुरद्वारगोचरे ॥२०॥ वसुदेवोपकारेण हुतः प्रत्युपकारधीः। न वेत्ति किंकरोमीति किंकरत्वपुपागतः॥२८॥ अभ्यर्थ्य गुरुमानीय मथुरां पृथुभिक्ततः । स्वसारं प्रददौ तस्मै देवकीं गुरुदक्षिणां ॥२९॥ आस्ते कंसोपरोधेन मथुरायां ततो यदुः । प्रदीव्य दिव्यदीप्त्याऽसो देवक्या हारिवाक्यया ॥३०॥ सूरसेनमहाराष्ट्रराजधानीं द्विवंतपः । शशास मथुरां कंसो जरासंधातिबल्लभः ॥३१॥

जातुचिन्युनिवेलायामतिग्रुक्तकमागतं । कंसज्येष्ठं मुनि नत्वा पुरः स्थित्वा साविश्रमं ॥३२॥ हसंती नर्मभावेन जगी जीवद्यशा इति । आनंदवस्त्रमेतत्ते देवक्याः स्वसुरीक्ष्यतां ॥३३॥ तस्या निर्वधिचित्राया प्रमत्ताया निवृत्तये । वचोगुप्तिमसौ भित्त्वा संसारस्थितिविज्जगौ ॥३४॥ अहो क्रीडनशैलायास्तवेयमतिमूढता । शोकस्थाने प्रपन्नासि यदानंदमनिंदिनि ॥ ३५ ॥ भविता यो हि देवक्या गर्भेऽबञ्यमसौ शिशुः । पत्युः पितुश्च ते मृत्युरितीयं भवितव्यता ॥३६॥ ततो भीतमतिर्भुक्त्वा मुनिं साश्रुनिरीक्षणा । गत्वा न्यवेदयत्पत्ये सत्यं हि यतिभाषितं ॥३७॥ श्रुत्वा कंसोऽपि शंकावानाशु गत्वा पदानतः । वसुदेवं वरं वत्रे तीत्रधीः सत्यवाग्त्रतं ॥३८॥ स्वामिन्! वरप्रसादो मे दातच्यो भवता ध्रुवं। प्रसृतिसमये वासो देवक्या मद्गृहेऽस्त्विति॥३९॥ सोऽप्यविज्ञातवृत्तांतो दत्तवान् वरमस्तधीः । नापायः शंक्यते कश्चित्सोद्रस्य गृहे स्वसुः॥४०॥ पश्चाद्विदितवृत्तांतः पश्चात्तापहतांतरः । सहकारवनांतस्थमतिमुक्तकमाप्तवान् ॥ ४१ ॥ देवक्या सह वंदित्वा चारणश्रमणं स तं । दत्ताशिषमुपासृत्य पप्रच्छ मनसि स्थितं ॥४२॥ भगवस्त्र कंसोऽयं कृतेनान्यत्र जन्मनि । पितुरेव रिपुर्जातः कर्मणा केन दुर्मतिः ॥ ४३ ॥ कथं वा मम पुत्रोऽस्य कंसस्य भविता विभो । हिंसकः पापचित्तस्य वद वांछामि वेदितुं ॥४४॥

इति पृष्टो मुनिः प्राह स दीप्रावधिलोचनः । संशयच्छेदिनी यस्मात्प्रवृत्तिर्दिव्यचक्षुषः ॥ ४५ ॥ आकर्णयस्व देवानांत्रिय! सर्वजनित्रयः । कथयामि यथात्रश्चं वस्तु जिज्ञासितं नृप ॥ ४६ ॥ मथुरायामिहैवासीदुग्रसेने तु राजनि । प्राक् पंचाग्नितपोनिष्ठो वसिष्ठो नाम तापसः ॥ ४७॥ एकपादस्थितश्रासावृध्ववाहुर्वृहज्जटः । यमुनायास्तरे सोऽज्ञः तपस्तपति तापसः ॥ ४८ ॥ जलार्थं तत्र लोकानां घटदासीभिः सा तथा । भणिता जिनदासस्य चेटिकाऽहितबुद्धिभिः॥४९॥ त्रियंगुलतिके त्वस्य प्रणामं कुरु सत्त्वरं । सा चावादीन्न मे मक्तिरस्योपरि करोमि कि ॥ ५०॥ ततो हठान्नामिताभिः सा जगौ धीवरस्य हे । पातिताहं पद्दंद्रे श्रवणाद्वष्टो मूढधीः॥ ५१ ॥ गता राजसमीपेऽसौ जगावाक्रोशितोध्यहं । श्रेष्टिना जिनदत्तेन प्रभोऽहं कारणाद्विना ॥ ५२ ॥ राज्ञाऽऽनाय्य पृष्टोऽसौ जिनदत्तो बभाण तं। अस्य मे दर्शनं नास्ति किं शाष्यमब्रवीन्ध्रानिः॥५३॥ शापितश्चास्य दास्याऽहं पृष्टा आनाय्य तेन सा । कथं न नमसे पापे मुनिन्निदयसि कुधा ॥५४॥ तयोक्तं न मुनिस्त्वेष धीवरोऽस्ति प्रभो कुधीः। जटाभारस्य नो अस्य शुद्धिः कुत्रापि दृश्यते॥५५॥ शोधिते बहवो मतस्याः सुक्ष्मास्तेभ्यश्च निर्गताः। लिज्जतो हिसतो लोकैर्मृषावादी त्वसौ सुनिः।५६॥ यदा परीक्षितो राज्ञा तदा कोपं विधाय सैः। प्रकाशितनिजाज्ञानो मथुराया विनिर्गतः ॥५७॥ बाराणसीं समासाद्य समासादितनिश्रयः । गत्वा बाह्यश्र गंगायाः संगमे करुते तपः ॥ ५८ ॥ वीरभद्रगुरुश्वागात सपंचशतशिष्यकः । तद्देशं तत्र चैकेन नवप्रव्रजितेन सः ॥ ५९॥ प्रशंसितो विश्वष्ठोऽयमहो घोरतपा इति । वारितः स तपः कीद्रगज्ञानस्येति सूरिणा ॥ ६० ॥ विशिष्ठेन किमज्ञोऽहमित्युक्तो गुरुरब्रवीत् । त्वं षड्जीवनिकायानां पीडनादज्ञ इत्यसौ ॥६१॥ पंचामितपसि प्रायो नियोगो दहनस्य हि । दह्यंते तेन चावश्यं पंचैकविकलेंद्रियाः ॥ ६२ ॥ पृथिव्यपतेजसां वायोः प्राणिनां च वनस्पतेः। प्रघाते ज्ञानहीनस्य कुतः स्यात् प्राणिसंयमः॥६३॥ विरागस्यापि मिथ्याद्यज्ञानचारित्रमानिनः । संज्ञानपूर्वको जंतोः कुतश्रेंद्रियसंयमः ॥ ६४ ॥ केवलं कायसंतापं भजमानस्य मानिनः । सम्यग्संयमहीनस्य तापस्यं मुक्तये कुतः ॥ ६५ ॥ जैन एव हि सन्मार्गे संयमस्तप एव च । दर्शनं चापि चारित्रं ज्ञानं चाशेषभासनं ॥ ६६ ॥ अवेहि तापसात्मीयं पितरं व्यालतां गतं । ज्वालाधूमावलीव्याप्ते दह्यमानमिहेंधने ॥ ६७॥

१ श्रेष्ठिनो जिनद्त्तस्य भृत्ययाऽज्ञान इत्यसौ । हेतोः कृतोऽप्यधिक्षिप्तः श्रियंगुलतिकारूयया ॥ जुद्धो राजानमद्राक्षीद् राज्ञा चापि परीक्षित: ॥ इति ख घ पुस्तकयोः ।

इत्युक्ते तापसः काष्ठं कुठारेण विपाट्य सः । ददर्श दंदशूकं तं दह्यमानं तदाकुलं ॥ ६८ ॥ कृततापसधर्मस्य ब्रह्मारूयस्वपितुर्गति । कुत्सिता भवगम्यासावज्ञत्वं चापि चात्मनः ॥ ६९ ॥ ज्ञात्वा च जैनधर्मस्य ज्ञानपूर्वकतां तथा। वीरभद्रगुरोरंते विश्वष्ठोऽधिष्ठितस्तपः ॥ ७० ॥ एको लाभांतरायस्य कर्मणः परिपाकतः। तपस्यतामभूत् साधुः स भिक्षालब्धिवर्जितः॥७१॥ स पर्युपासनाहेतोरागमागमनाय च । शिवगुप्तयतेर्यत्नात् गुरुणापि समर्पितः ॥ ७२ ॥ संतप्तस्य स षण्मासान् वीरदत्ते न्ययोजयत्। तथा सोऽपि सुमत्याक्ये षण्मासान् सोऽप्यपालयत्।७३। यतिधर्मविधानज्ञः परीषसहस्ततः । बभूवैकविहारी स विशिष्टो विदितः क्षितौ ॥ ७४ ॥ मथुरायामथ संप्राप्तो विहरन् स महातपाः । पुज्यते च प्रजापालप्रजाभिग्रेरुवत्तया ॥ ७५ ॥ धृतातपनयोगं तं मुदा पर्वतमस्तके । सप्तैत्योचुस्तपोवश्याः किं कुर्मस्तेऽथ देवताः ॥ ७६ ॥ कर्तव्यं मम नास्तीति स निषिध्य तपोधनः । व्यसर्जयिद तद्वव्या गताश्च वनदेवताः ॥ ७७ ॥ मासोपवासिने तस्मै निस्पृहाय तपस्विने । पारणास्वन्नदानाय स्पृह्यंत्यखिलाः प्रजाः ॥ ७८ ॥ उग्रसेनोऽन्यदा दातुं पारणां तमयाचत । न्यवारयत्तदा दातृन् मथुरावासिनोऽखिलान् ॥ ७९ ॥ पारणासु नृपस्तस्य विसस्मार तिसृष्विप । दृताग्निद्धिरदक्षोभव्यासंगेन प्रमादवान् ॥ ८० ॥

अटित्वा मथुरां सर्वामलाभे श्रमपीडितः । श्रमणोंऽते विश्रशाम नगरद्वारि सोऽन्यदा ॥ ८१ ॥ तं दृष्ट्वा केन्चित्र्योक्तो हा कष्टं भूभृता कृतं। भिक्षां स्वयं न दत्ते उसमे परानिष निषिद्धवान्।।८२॥ तदाऽऽकण्यं रुपा तेन ध्यातास्ताः पूर्वदेवताः। कार्यं कुर्यात मेऽन्यस्मिन् जन्मनीति विनिर्ययौ।।८३।। निकारायोग्रसेनस्य प्रकृतोग्रानिदानतः । स मिथ्यात्विमतो मृत्वा पद्मावत्युद्रेऽवसत् ॥ ८४ ॥ तस्मिन् गर्भस्थित देवीमेकांते कृशविग्रहां । नृपः पप्रच्छ तां कांते दौहृद्यं ते किमित्यसौ ॥८५॥ नाथावाच्यमाचित्यं च गर्भदोषेण चितितं । इत्युक्ते स त्वयाऽवश्यं वाच्यमित्यवद्त्रूपः ॥ ८६ ॥ साऽस्य निर्वधतो वाचा दुःखगद्गद्याऽगदीत्। विपाद्य जठरं पातुं रुधिरं तव मे स्पृहा ॥८७॥ सचिवोपायतस्तस्या दौहृदे विहिते ततः । अस्त तनयं देवी भ्रकुटीकुटिलाननं ॥ ८८ ॥ गर्भप्रभृतिरीद्रं तं कंसमंजूषिकाकृतं । देव्यमाचयदेकांते प्रवाहे यामुने भयात् ॥ ८९ ॥ अवीवधदसौ लब्ध्वा कौशांव्यां सीधुकारिणी । कृतकंसाभिधं शेषं तथापि विदितं नृप ॥ ९० ॥ निदानदोषदुष्टोऽयं कृतवान् पितृनिग्रहं । उग्रसेननृपं चापि मोचियष्यति ते सुतः ॥९१॥ नृषोक्तः कंससंबंधः पितृबंधनिबंधनः । विच्या ते पुत्रसंबंधं श्रुणु संधाय मानसं ॥९२॥ देवक्याः सप्तमः सुनुः शंखचक्रगदासिभृत्। निहत्यं कंसपूर्वारीन् निःशेषां भोक्ष्यति क्षिति ॥९३॥

चरमोत्तमदेहास्तु श्रेषाः पडपि सूनवः । न तेषामपि मृत्युः स्यादाधिन्याधिमतस्त्यज ॥९४॥ रामभद्रसमेतानां तेषां जन्मांतराणि ते । भणामि श्रणु सस्त्रीकश्चित्तप्रीतिकराण्यहं ॥९५॥ सूरसेननूपे पाति मथुरां भानुरित्यभूत् । इभ्यो द्वादशकोटीशो यमुना तस्य भामिनी ॥९६॥ सुभानुभीनुकीर्तिश्र भानुषेणस्तथा परः । गूरश्र सूरदेवश्र गूरदत्तस्तथैव च ॥९७॥ शूरसेनश्च सप्तेते यमुनाभानुसूनवः । अभिरामाः स्वभावेन तेऽन्योऽन्यानुगतास्तदा ॥९८॥ कालिंदी तिलका कांता श्रीकांता सुंद्री द्यतिः। चंद्रकांता च तत्कांता क्रमेण कुलबालिकाः ॥९९॥ भानुः प्राव्रजदंते इसी गुरोरभयनंदिनः । तथा यमुनदत्तापि जिनदत्तार्थिकांतिके ॥१००॥ द्युतवेश्याप्रसंगेन विनाश्य द्रविणं पितुः । चौर्यार्थं भ्रातरः सर्वे गतास्तूज्जियनीं पुरीं ॥१०१॥ कनीयांसं महाकाले संतत्यर्थं निधाय ते । प्राविशन् निशि निःशंकाः पुरीं षडिप चेतरे ॥१०२॥ कमलायास्तदा भर्ता राजाऽत्र वृषभध्वजः । वप्रश्रीवल्लभस्तस्य दृष्टमुष्टिर्भटोत्तमः ॥१०३॥ स वज्रमुष्टये मंगीं स्वांगजायांगजार्त्तये । राज्ञा विमलचंद्रेण विमलाजामदापयत् ॥१०४॥ सातिबल्लिभका तस्य बल्लकीवांगवर्तिनी । श्वश्रुश्रुश्रूषया मंगी संगता नानुवर्त्तते । १०५॥ अंतःकछिषणी साऽस्याः सत्तापायचितनी । उपायं चितयंत्यास्ते छद्मना तद्वियोजने ॥१०६॥

सा वसंतोत्सवे रंतुं वनं प्रमदपूर्वकं । द्राङ् मामन्वेहि मंगीति राज्ञा मा प्रागतेंऽगजे।।१०७॥ माल्यदानापदेशेन तामादिष्टां वधूं कुधीः । संदष्टां दंदगूकेन धूपिनेन घटोदरे ॥१०८॥ मुर्चिछतां विषयेगेन श्वश्रभृत्यैरजीहरत् । इमशानं तन्महाकालं कालस्यापि भयंकरं ॥१०९॥ सं रात्री गृहमागत्य ज्ञात्वा वृत्तांतमाविशत् । महाकालं महास्नेहादन्वेष्टुं स्वित्रयां प्रियः ॥११०॥ खडुदीप्रकरः सोऽयं तच्छ्मशानमशंकितः । रात्रिप्रतिमयाऽपश्यद् वरधर्ममुनिं स्थितं ॥१११॥ त्रि:परीत्य स तं नत्वा जगो ते पादपूजनं । कुर्वे पञ्चसहस्रेण मुने ! मंगीं लभे यदि ॥११२॥ उत्तवेति प्रगतो लब्ध्वा स तामानीय मानिनीं । महाम्रुनिपदस्पर्शानिर्विषां विद्धे वधुं ॥११३॥ मुनिपादोपकंठेऽसौ तावत्तिष्ठेत्युदीर्य तां । सुदर्शनं सरो यातः पद्मानामानिनीषया ।।११४॥ सूरसेनस्तमाद्र्य महास्नेहं त्रियां प्रति । स जिज्ञासुर्मनस्तस्या रूपी रूपमद्र्ययत् ॥११५॥ गृढधीः कृतसल्लापस्तया सकृतमंत्रणः । तस्य दर्शनमात्रेण जाताऽसौ कामविह्नला ॥११६॥ तमाग्रयात्रवीद् देव ! मामिच्छ कृपयान्वितः । स बभाण करोम्येवं कथं भर्तरि जीवति ॥११७॥ बिभेम्यतः प्रियेऽवक्यं वीर्यान्वितभटादहं। त्वं सा कुर्वीर्भयं नाथ! सा तं प्राह सुरक्तधीः ॥११८॥ असिना घातयाम्येनं तेनाभ्युपगतं यदा । तत्र मुद्धेषुनुस्तस्थौ तत्कृत्यं तद्दिदृक्षया ॥११९॥

आगत्याभ्यच्यं साध्वंही नमताऽस्य शिरस्यसिः। मुक्तस्तया निरुद्धो द्राक् श्रूरसेनेन तेन सः॥१२०॥ अंतर्हितवपुर्यातः सूरसेनां विरक्तधीः । ततो इनु मायया मंगी तस्य स्पराण शंकिता ॥१२१॥ स्वदोषच्छादनायासौ पपात धरणीतले। भन्नी पृष्टा प्रिये किंतु केनचिद् भीषिताऽत्र हि ॥१२२॥ न किंचिद्पि चास्त्यत्र तां प्रबोध्य मयातुरां । वज्रमुष्टिर्मुनिं नत्वा सकांतः स्वगृहं गतः ॥१२३॥ चौरास्ततः समागत्य चौर्याछुब्धधनं तदा । विभज्य समभागेन स्वं गृहाणेति तं जगुः ॥१२४॥ अनिच्छन् शूरसेनोऽपि जगौ दारार्थमर्थिनः । घटंतेऽनर्थकार्यं ते वज्रमुष्टिस्त्रियः समाः ॥१२५॥ दृष्टा श्रुत्वा च वृत्तांतं पर् किनष्टाः विरागिणः। प्रात्रजन् वर्धमाते ज्येष्ठेभ्योऽप्यनयद् धनं ॥१२६॥ सप्तसु श्रुतवात्तीसु निष्कांतास्वथ तास्विप । तस्यैव स गुरारंते सुभानुः प्राव्रजत्सुधीः ॥१२७॥ मुनीन् कालांतरेणामूनागतान् वीक्ष्य सरिणा । दीक्षाहेतुमसौ पृष्टा बज्रमुष्टिरदीक्षत ॥१२८॥ आर्थिकास्तास्तथा पृष्ट्या जिनदत्तापुरःसराः। मंगी संस्मृतवृत्तांता प्रवत्राज दृढवता ॥१२९॥ भृतघोरतपोभाराः सर्वेऽप्याराध्य तेऽभवन् । सीधर्मे चार्णवायुष्कास्त्रायस्त्रिशःसुरोत्तमाः ॥१३०॥ पूर्विस्मिन् धातकीखंडे भारते रौप्यपर्वते । च्युत्वा दक्षिणश्रेण्यां नित्यालोकपुरोत्तमे ॥१३१॥ चित्रचूलमनोहर्यो ज्येष्ठचित्रांगदोंऽगजः । यज्ञे त्रिद्वंदगर्भास्त क्रमेणैव तथोत्तरे ॥१३२॥

कांतौ गरुडसेनो द्वौ गरुडध्वजवाहनौ । चूलौ मणिहिमादी च व्योमानंदचरौ वरौ ॥१३३॥ अभिरूपतमाः सर्वे भूरिविद्योद्यताः स्थिताः । चित्रचूलसुता मुर्धि ते चूलामणयो नृणां ॥१३४॥ राजा मेघपुरे चैव सर्वश्रीशो धनंजयः । धनश्रीरिति विख्यातो तस्य कन्यातिरूपिणी ॥१३५॥ स्वयंवरमगुस्तस्या विश्वे विद्याधरात्मजाः । तत्रात्ममैथुनं बत्रे कन्याऽसौ हरिवाहनं ॥१३६॥ वयं स्वयंवरव्याजात्स्वविवाहाय मायया । समाहृता इति कुद्धास्तित्वित्रे गगनायनाः ॥१३७॥ परस्परबर्ध चक्कस्ते तत्कन्यार्थिनस्ततः । चित्रचूलसुता निद्यं दृष्टा क्षत्रवर्धं तकं ॥१३८॥ पापहेतुं विनिद्याक्षविषयान् विषमानमी । भूतानंदिजनस्यांते प्रवेदरे ॥१३९॥ सप्ताप्याराध्य माहेंद्रे सप्ताब्ध्युपमजीविताः । सामानिकसुरा भूत्वा सुखं बुभुजिरे चिरं ॥१४०॥ ततश्चयुत्वाऽग्रजोऽत्रैव भारते हास्तिनाह्यये । नगरे श्रेष्टिनः शंखो बंधुमत्यामभूतसुतः ॥१४१॥ इतरे गंगदेवस्य तत्पुरेशस्य भूषतेः । नंदना नंदयशसो द्वंद्वभूतास्तु जिल्लरे । १४२॥ गंगश्च गंगदत्तश्च गंगरक्षतकस्तथा । नंदश्चापि सुनंदश्च नंदिषेणश्च सुंदरः ॥१४३॥ सप्तमस्तु सुतो देव्या गर्भे दौर्भाग्यदम्धया। त्यक्तः संवर्धितश्वासौ धार्व्या रेवतिकाख्यया ॥१४४॥ शंखो जातोऽन्यदारऽदाय तं निर्नामकनामकं । हृद्यं मनोहरोद्यानं पौरलोकसमाकुलं ॥१४५॥

वयर्ख्निज्ञः सर्गः।

भ्रंजानानाह राजन्याँस्तत्र राजसुतैः सह । भोक्तुं नाहूयते कस्मादयं निर्नामकोऽनुजः ॥१४६॥ आहृतस्तैरसौ भोक्तुमासीनः सौदरैः सह । राज्ञामागतया मात्रा कोपात्पादेन ताडितः ॥१४७॥ धिग् मद्धेतारयं दुःखं निर्नामा प्राप्तवानिति । दुःखी शंखस्तमादाय गत्वा राजादिभिर्वने ॥१४८॥ द्वमवेणिवमेकाते दृष्टा नत्वा स पृष्टबान्। निर्नामकस्य जन्मानि सावधिः सोऽभ्यधानम्रनिः॥१४९॥ आसीचित्ररथो राजा नगरे गिरिपूर्वके । कामिनी गुणिनी यस्य कांता कनकमालिनी ॥१५०॥ मांसिप्रयस्य तस्यासीत्सूदोऽमृतरसायनः । राज्ञा च मांसपाकज्ञो दश्रग्रामेश्वरः कृतः ॥ १५१ ॥ मांसदोषं नृपः श्रुत्वा सुधर्मास्त्रिशतेर्नृषेः । क्षिप्त्वा मेघरथे लक्ष्मीमदीक्षिष्ट मुमुक्षया ॥ १५२॥ नवराजेन सूदोऽपि श्रावकेन सता ततः । निर्मदीकृत्य मास्पाको ग्राममात्रपतिः कृतः ॥१५३॥ सूदेन कुपितेनासौ मुनिर्मासनिषेधनः । कट्टालांबुविषाहारं दत्त्वा प्राणैवियोजितः ॥ १५४ ॥ उर्जयंतिगरौ पृत्वा स्वयोगादूर्जितादभूत् । द्वात्रिश्चदाब्धतुल्यायुः सोऽहमिंद्रोऽपराजिते ॥१५५॥ सूपकारो मृतः प्राप पृथिवीं बालुकाप्रभां । त्रिसमुद्रोपमं कालं नारकं दुःखमन्वभूत् ॥ १५६ ॥ ततश्रोद्दर्य पर्यटच तिर्यग्गतिमहाटवीं । सोंऽगी मलयराष्ट्रांतःपलाश्रग्रामवित्तेनोः ॥ १५७॥ कुटुंबिनोर्जडप्रायोर्थक्षिलायक्षदत्तयोः । यक्षस्थावरजो नाम्ना सूनुर्यक्षलिकोऽमवत् ॥ १५८॥

स आत्रा वार्यमाणोऽपि पर्यटन् शकटं शठः । उपरिष्टात्ततोत्राहेरवाहयदनिष्टकृत् ॥ १५९ ॥ भग्नभोगा भुजंगी तु म्रियमाणातिदुःखतः । अकामनिर्जरायोगात् मानुष्यगतिमार्जयत् ॥१६०॥ मृत्वा श्वेतांविकापुर्या वासवस्य महीपतेः । जाता वसुंधरी गर्भे देवी नंदयशास्त्रियं ॥१६ १॥ सोऽयं यक्षलिको नाम्ना निर्नामा मुनिमारणात्। निर्द्यत्वाच पूर्वत्र मात्रा विद्वेषतां गतः ॥१६२॥ श्रुत्वा तद्द्विशतक्षत्रे राजा संसारभीरुधीः । देवनंदे श्रियं न्यस्य तस्यांते दीक्षितो मुनेः॥१६३॥ राजपुत्राश्च ते सर्वे श्रेष्ठी शंखश्च दीक्षितः । सुनिर्मलं तपश्चकुर्भवचक्रनिवृत्तये ॥ १६४ ॥ राज्ञी चापि सधात्रीका बंधुमत्या सहाश्रिता। प्रत्रज्यां सुत्रतार्थीते सुत्रतत्रातभूषितां ॥ १६५ ॥ कुर्विनिर्नामकस्तीत्रं सिंहिनिः क्रीडितं तपः । निदानमकरोद्न्यजनने जनकांतिकं ॥ १६६ ॥ धात्री मानुष्यकं प्राप्ता पुरे भद्रिलसाह्ये । सुदृष्टिश्रेष्ठिनो भायो वर्तते ह्यलकाभिधा ॥ १६७ ॥ गंगाद्या देवकींगर्भे षडिप द्वंद्वभाविनः । उत्पत्स्यंते ऋमेणकविक्रमैकमहार्णवाः ॥ १६८ ॥ हारिणा स्वर्गिणा धात्रीं सूत्रामादेशकारिणा। प्राप्स्यंते यातमात्रेण तत्राप्स्यंति च यौवनं॥१६९॥ नृपदत्तोऽग्रजस्तेषां देवपालस्तथाऽपरः । तृतीयोऽनीकदत्तसतु तुरीयोऽनीकपालकः ॥ १७०॥ शत्रुव्राजितशत्रुस्ताविति नामभिरीरिताः । रूपेण सद्दशाः सर्वे भविष्यंति तवात्मजाः ॥ १७१ ॥

चतुर्स्त्रिशः सर्गः।

हरिवंशशांकस्य जिनस्य त्रिजगद्गुरोः । शिष्यतां ते करिष्यंति गमिष्यंति च निर्वृति॥१७२॥ आगत्य देवकी गर्भे निर्नामा देवकीसुतः । उत्पद्य भविता वीरो वासुदेवोऽत्र भारते ॥१७३॥ श्रुत्वा कंसभवांतरं तदुद्यं संचित्य पुण्योदयात् सोपेक्षांतरिमत्रतासुपगतोऽप्यत्राभवत्कालवित् ॥

आकर्ण्याष्ट्रसुतप्रियासुचरितं चासुत्र चेहात्र च

प्राप्तः सम्मदमुत्रतं जिनमतश्रीशंसनो यादवः ॥ १७४ ॥

इति "अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे" इरिवंशे जिनसेनाचार्यकृती कंसीपाख्यानबलदेववासुदेवदेवकीतनयानगार

चारित्रवर्णनो नाम त्रयास्त्रिंशः सर्गः।

चतुस्त्रिंशः सर्गः ।

स्ववंशभाविनं श्रुत्वा जिनेद्रं देवकीप्रियः । हृष्टः श्रेणिक ! नत्वेति पृष्टवानितमुक्तकं ॥१॥ कथं नाथ ! जिनो भावी हरिवंशविशेषकः । चरितं श्रोतुमिच्छामि तस्येत्युक्तेऽवदनमुनिः ॥२॥ द्वीपेऽत्रैव सुपद्मायां शीतोदायास्त्वपाक्तदे । अभूत् सिंहपुरे भूभृदर्दद्दासो महाईतः ॥३॥

जायाऽस्य जिनदत्ताऽसौ कृतोरुजिनपूजना । लेभे श्रीभपृगेंद्रार्कचंद्रसुस्वप्नदृक् सुतं ॥ ४ ॥ अपराजित इत्याख्यां स परैरपराजितः । पितृभ्यां लंभितो द्यावापृथिव्योः प्रथितां ततः ॥५॥ पुत्रीं चक्रभृतस्तत्र पवित्रगुणमालिनीं । कन्यां श्रीतिमतीं मान्यामुपयेमे स यौवने ॥६॥ तमन्योऽन्यातिशयन्यो मानिन्यो गुणमंडनााः । कन्याश्चारीरमद्भन्याः सहस्रगणनाः पति ॥७॥ राजा मनोहरोद्याने वंद्यं देवैविंवंदिषुः । अन्येद्युः ससुतो यातो जिनं विमलवाहनं ॥८॥ प्रवत्राज नुपोऽस्यांते पंचराजशतान्वितः । बभ्रेऽपराजितो राज्यं सम्यक्त्वं चैव निर्मलं ॥९॥ जिनेंद्रिपतृनिर्वाणं गंधमादनपर्वते। श्रुत्वा कृत्वाऽष्ट्रमं भक्तं कृतनिर्वाणभक्तिकः ॥ १० ॥ जिनाचौ चैत्यगेहाचौ समर्च्य धनदापितां। आसीनो जातु जाय।भ्यो धर्म स प्रौषधोऽबुधत्।।११॥ काले तत्र मुनी व्योम्नश्चारणाववतेरतुः । नत्वा क्षितौ सुखासीनौ पत्रच्छेति कृतांजिलः ॥१२॥ तोषः साधुषु मे नाथौ ! जैनस्याकृत्रिमो युवां। अपूर्वो वीक्ष्य किं जातः सहजस्नेहवरर्मनः ॥१३॥ अस्ति तत्पूर्वसंबंधः म्नेहाधिक्यप्रबोधनः । राजिकत्याह तत्राद्यः स्रवित्रव गिराषृतं ॥१४॥ पाश्चात्यपुष्करार्द्धस्य विदेहस्यापरस्य हि । रौप्याद्रेरुत्तरश्रेण्यामस्ति गण्यपुरं पुरं ।।१५॥ सूर्याभिवतु (नु) रस्यासासीत्सूर्याभ इति भूपतिः। धारिणी घारिणीवार्या गृहिणी तस्य हाहिणी।१६।

पुत्रास्त्रयस्तयोश्चितामनश्रपलपूर्वकाः । गत्यंता वेगवंतस्ते स्नेहवंतः सुपौरुषाः ॥ १७॥ तत्रैवारिंजयो राजा पुरेऽरिंजयसंज्ञके । कन्याऽस्याजितसेनायां जाता प्रीतिमती वरा ॥ १८ ॥ सिद्धविद्या प्रसिद्धाऽसी स्त्रैणगर्हणकारिणी । गुरुं प्राह वरं देहि पितरेकमभीप्सितं ॥ १९ ॥ कन्याकृताविद्वे स वृणीष्व वरमीष्मितं । तपसोऽन्यमितीदं च श्रुत्वाऽह प्रीतिमत्यपि ॥ २० ॥ तपो वरप्रसादो मे पितर्यदि न दीयते । गतियुद्धे विजेत्रेऽहं देयत्येष वरोऽस्तु मे ॥ २१ ॥ तथाऽस्त्वित्यभिधायासावाजुहाव नभश्वरं । स्वयंवरे स्वकन्याया गतियुद्धजिगीषया ॥ २२ ॥ विश्वान् विद्याधरान् प्राप्तान् प्राह कन्यापिता ततः। गतियुद्धे समर्थोऽस्या ददातुर्दुहितुर्ममः २३॥ मेरुं प्रदक्षिणीकृत्य कृत्वा जिनवरार्चनं । प्राप्तस्येह द्वयाः पूर्वमेकस्य विजयो मतः ॥ २४॥ जीयेत येन कन्येयं गतियुद्धेऽतिवेगिना । परिणेया तेन नीरेण मन्मनोरथपूरिणा ॥ २५ ॥ श्रुत्वेति खेचरास्तस्थुर्ज्ञात्वा विद्याधिकाममूं । विद्यावेगोद्यता योद्भुमुत्तस्थुर्धारिणीसुताः ॥२६॥ ततः परिकरं बद्ध्वा चेतसा च समं तदा । करमास्फाल्य लोकेन मुक्ता माध्यस्थमीयुषा।।२७॥ अहंयवो दधावुस्ते सार्द्धमर्द्धपथं पथा । मारुतां मेरुमुद्दिश्य हरंतो मरुतां रयं ॥ २८ ॥ अतिक्रम्य तथा कन्या परीत्य सुरपर्वतं । भद्रशालवनेऽभ्यच्ये जिनाचीः प्राङ् न्यवर्तत ॥२९॥

वेगश्रमागतस्वेदलवमुक्ताफलार्चिता । प्राप्य नत्या ददौ वित्रे सिद्धशेषां प्रमोदिने ॥ ३० ॥ ततो लब्धजया पित्रा मुक्ता मुक्तैहिकस्पृहा। विवृत्यंते प्रवत्राज त्रतत्रातविभूषिता ॥ ३१॥ गतियुद्धे जितास्तं वितागत्यादयस्तथा। दीक्षां दमनरस्यांते त्रयोऽपि भ्रातरो द्धुः ॥३२॥ अंते माहेंद्रकरुपांते प्राप्तसप्ताब्धिजीविनः । सामानिकास्त्रयोऽप्यत्र दिव्यं बुभुजिरे सुखं ॥ ३३ ॥ प्रच्युत्य पुष्कलावस्यामुदक्श्रेण्यां ततो नृषः । मध्यमावरजी जातौ पुरे गगनवछमे ॥ ३४ ॥ सुतौ गगनसुंदर्या गगनेंदोः क्रमेण तौ । प्रथमोऽमितवेगारूयोऽमिततेजास्ततोऽनुजः ॥ ३५ ॥ दीक्षित्वा पुंडरीकिण्यां स्वयंप्रभाजिनांतिके । श्रुत्वा पूर्वभवांस्तस्मात्तावावामिह पार्थिव ॥३६॥ पूर्व प्रच्युत्य माहेंद्रात्प्रजातमपराजितं । ज्यायांसं दृष्टुमायातौ त्वां चिंतागतिपूर्वकं ॥ ३७ ॥ अरिष्टनिमनामाईन भविता भरतावना । हरिवंशमहावंशे त्विमतः पंचमे भवे ॥ ३८ ॥ आयुर्मासावशेषं ते सांप्रतं पथ्यमात्मनः । क्रियतामिति तावुत्तवा तमापृच्छच गतौ यती ॥३९॥ श्रवणीयं वचः श्रुत्वा चारणश्रमणस्य सः । प्रहृष्टोऽपि चिरं दृध्यौ तपः कालव्यतिक्रमं ॥ ४०॥ अष्टाहं प्रविधायासौ जिनेंद्रमहिमां ततः । प्रीतिंकरे श्रियं न्यस्य शरीरादिषु निस्पृहः ॥४१॥

१ निर्वृत्तिनामिकार्यिकासमीपे ।

स द्वाविंशत्यहोरात्री प्रायोपगमनांचितौ । आराध्यापाच्युतेंद्रत्वं द्वाविंशत्यिकीवितः ॥ ४२ ॥ च्युत्वा गजपुरे जज्ञे जिनेंद्रमतभावितः । श्रीचंद्रश्रीमतीसूनुः सुप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः ॥ ४३ ॥ सुप्रतिष्ठं प्रतिष्ठाय राज्ये श्रीचंद्रचंद्रमाः । सुमंदिरगुरोरंते दीक्षित्वा मोक्षमाप्तवान् ॥ ४४ ॥ श्रीचंद्रात्मजराजोऽसौ दानं मासोपवासिने । यशोधराय दत्त्वाऽऽप वसुधारादिपंचकं ॥ ४५ ॥ कार्तिक्यामन्यदा रात्रावष्ट्रस्तीशतवेष्टितः । तिष्ठन्पतनमुल्काया दृष्टा लक्ष्मीं सुदृष्ट्ये ॥४६॥ सुनंदासूनवे दत्वा सुमंदिरमहागुरोः । सुप्रतिष्ठोऽप्यदीक्षिष्ठ दृष्ट्रोल्कासदृशं श्रियं ॥ ४७ ॥ चतुःसहस्रसंख्याताः सहस्रकिरणौजसः । प्रातिष्ठंत तपस्युग्रे सुप्रतिष्ठेन पार्थिवाः ॥४८॥ ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्यविवृद्धिमान् । अध्येष्ट सों उगपूर्वाणि सरहस्यान्यतंद्रितः ॥ ४९ ॥ तपोविधिविशेषैः स सर्वतोभद्रपूर्वकैः । वपुर्विभूषयांचक्रे सिंहनिःक्रीडितोत्तरैः ॥५०॥ श्रवणादिष पापद्मानुपवासमहाविधीन् । शृणु यादव ! ते विच्म समाधाय मनः क्षणं ॥५१॥ एकादिषूपवासेषु पंचांतेषु यथाक्रमं । अंतयोः कृतयोरादौ शेषमंगसमुद्भवे ॥५२॥ कल्पितश्रेत्रस्त्रोऽयं प्रस्तारः पंचभंगकः । सर्वतोऽप्युवासाश्र गण्याः पंचदशाऽत्र हि ॥५३॥ पंचिमग्रिणितास्ते स्यः संख्यया पंचसप्ततिः । ताडिताः पंचिमः पंच पारणाः पंचित्रिक्षिः ॥५४॥ सर्वतोभद्रनामायम्भप्रवासविधः कृतः । विधवे सर्वतोभद्रं निर्वाणाभ्युद्योद्द्यं ॥५५॥
पंचादिषु नवांतेषु भद्रोत्तरवसंतकः । विधिन्तत्रोपवासास्तु पंचित्रशासमं परं ॥५६॥
सप्तिष्वेकपूर्वेषु प्रस्तारं सप्तभंगके । आद्ययोः कृत्योरंते सर्वभंगेष्वनुक्रमं ॥५७॥
अष्टाविश्वतिरिष्टास्ते सर्वतः सप्तपारणाः । स महासर्वतोभद्रः सर्वतोभद्रसाधनः ॥५८॥
पंचाद्या यत्र रूपांता द्वचाद्यास्ते चतुरंतकाः। आद्या रूपांतकाः स त्रिलोकसारः स्पृतो विधिः॥५९।

| १ सर्वतोभद्रयं | ब्रोऽयम् | | | | | | | | | | |
|----------------|----------|---|---|---|---|------------|---------|---------|----------|------------|----------|
| पारणा | 8 | 8 | ¥ | 8 | 8 | २ वसंतभद्र | ? | 8 | 3 | Ş | 8 |
| उपवास | 8 | P | 3 | 8 | 4 | | 4 | • | U | 6 | 9 |
| पा. | 8 | 8 | 8 | 8 | 8 | | | | | | |
| उ. | 8 | 4 | 8 | 2 | Ę | ३-१,२,३,१ | ४, ५, ६ | ة إ قار | 1, 8, 4, | £, 10, | १,२ |
| पा. | 8 | 8 | 8 | 8 | Š | ५, ६, ७, १ | 1, 2, 3 | , 414 | , १, २, | ₹, ¥, | ې چ وړلا |
| उ∙ | २ | Ś | R | 4 | 8 | २, ३, ४, ' | • | | • | | |
| q 1. | ? | 8 | 8 | 8 | 8 | ह, ७, १, | २, ३, ४ | ,416 | षाम स | प्तर्पक्तय | :, एके |
| उ. | 4 | 8 | २ | 3 | 8 | कांकरूप | सवपा | रणार्यक | पश्च मह | सर्वतीभ | द्रे । |
| पा. | 8 | 8 | 8 | 8 | 8 | | | | | | |
| ₹, | ३ | 8 | ધ | 8 | २ | } | | | | | |

प्रस्तारश्चास्य विन्यस्य त्रिलोकाकृतिरत्र तु । धारणा पारणाश्चापि त्रिंशदेकादशक्रमात् ॥६०॥ फलमस्य विधैः श्रेष्ठं कोष्ठवीजादिबुद्धयः । त्रिलोकसारभूतं च त्रिलोकशिखरे सुखं ॥६१॥ क्रमेणाद्यंतमध्येषु यः पंचैकोपवासकः । वज्रमध्यो विधिः स स्याद् गण्याः पारणधारणाः॥६२॥ शकचिक्रगणेशत्वं समनःपर्ययोऽवधिः। प्रज्ञाश्रमणतो मोक्षो वज्रमध्यविधेः फलं ॥६३॥ द्वचाद्यास्ते यत्र पंचांता द्वचंताश्च चतुरादयः । विधिमृदंगमध्ये। वं मृदंगाकृतिरिष्यते ॥६४॥ क्षीरश्रावित्वमक्षीणमहानसगुणादिकाः । लब्धयो विधिरंते च फलं निर्वाणमस्य च ॥६५॥ पंचादयो द्विपर्यंताः पंचांता द्वयादयः परे । विधिम्रीरजमध्योऽस्य फलं चानंतरं श्रुतं ॥६६॥ चतुर्थकानि यत्र स्युश्रतुर्विंशतिरेव सा । एकावली फलं तस्याः सुखमकावलीस्थितं ॥६७॥ यत्र षष्ठोपवासाः स्युश्रत्वारिंशत्तथाष्ट च । द्विकावलीयमुद्गीता लोकद्विकसुखावली ॥६८॥ एकाद्या यत्र पंचांता एकांताश्रतुरादिकाः। मुक्तावलीयमाच्याता ख्याता मुक्तावली यथा॥६९॥ नांतरीयकमेतस्या लोकालंकरणं फलं । मुक्तालयपरिप्राप्तिरंते चात्यंतिकं फलं ॥ ७० ॥ पंचांता यत्र चैकाद्याः पंचाद्येकांतिका पुनः । रत्नावलीयमस्याश्र फलं रत्नावलीगुणाः ॥७१॥

रूपांतराख्यं च दशावसाना रूपांतराः षोडश यत्र चाग्रे। रूपोनकास्तत्परमंतरूपाः मुक्तावलीयं खलु रत्नपूर्वो।। ७२।। द्विश्वत्यशीतिश्रत्वरुत्तराः स्युरत्रोपवासाः परिगण्यमानाः ।
 एकोनषष्टिश्च हि भुक्तिकालाः फलं तु रत्नत्रयसारलिधः ॥ ७३ ॥
एको द्वौ च नव त्रिकाण्यपि ततश्रकादिभिः पोडश
 प्राज्ञैस्तद्वणिताश्रतुस्त्रिकयुतं त्रिंशत्त्रिकाण्येव तु ।
स्वपांतान्यपि पोडशप्रभृतयो रंध्रं द्विकं त्र्येककं
 यत्रेषा कनकौवली प्रकुरुते लौकांतिकत्वं फलं ॥ ७४ ॥
द्विष्टे संकलिते हि पोडशगते त्रिष्टात्मकोचिश्रतुः पंचाशत् त्रिकयोज्ययोजितचतुःशत्याश्रतुस्त्रिशता ।
द्विष्टेकादश पोडशान्वितचतुःस्त्याश्रतुःस्त्रिशतः पोडशान्वितचतुःस्त्रिश्चाहिनैः शासनै—

र्वर्षं द्वादशवासरैरिभहिताः पंचेह मासा विधौ ॥ ७५ ॥

१ एकः द्वौ, नववारं त्रयः, एकः द्वौ त्रयः इत्यादि षोहशपर्यताः, ततः चतुस्त्रिशद्वारं उपवासत्रिकं (तेला) ततः षोडश पश्चद्दश इत्यायेकपर्यताः, ततः नववारं उपवासत्रिकं ततो द्वावेकश्च इति कनकावली । २ कनकावली समयः एको वर्षः पंच भासाः द्वादशदिनानि ।

प्कद्वित्रिचतुर्द्धिकानि सिहतैस्ते पोडशैकादिमि—
विज्ञेयानि शतां चतुर्द्धिकयुतं त्रिशद्द्धिकान्यादरात् ।

प्कांताः खलु पोडशादय इह ह्यष्टो द्विकान्यव तु

त्रिद्वयेकोऽपि च यत्र ते प्रकथिता रत्नावलीयं परा ॥ ७६ ॥

प्रदंचाशद्द्विकोत्थे द्विकपरिगुणिते मिश्रिते पोडशोत्थ—

द्वासप्तत्या द्विशत्याशनिरसनगणी गण्यते मिश्रितेस्मिन्

अष्टाशीत्या शताहरिह मवति विधी कालसंख्याप्यहोभि—

द्वाविशत्या त्रिरत्नद्युतिकृतिसुकृते वर्षमेकं त्रिमास्या ॥ ७७ ॥

द्वी द्वी त्वेकादयः शस्ताः पंचपर्यवसानकाः । हीते ह्युभयतः पष्टिःसिहनिष्क्रीडिते विधी ॥७८॥

१ रत्नावली समयः एको वर्षः त्रयो मासाः द्वाविंशतिदिनानि ।

२ जघन्यसिंहनिष्की डितावीधः—

त एव चाष्टपर्यता नवं च शिखराः पुनः । मध्यमेष्यपवासाः स्युश्चिपंचाशं शतं स्फुटं ॥ ७९ ॥ पूर्वे पंचदशांतास्तु शिखरे षोडशाधिकाः । उत्कृष्टे तत्र ते वद्याः षण्णवत्या चतुःशती ॥ ८० ॥ पंचानां संकलिते चतुर्शुणो षष्टिरेवमष्टानां। नविभिमिश्चितमध्यः पंचदशानां च षोडशिमः ॥८१॥ विश्वतिश्च त्रयस्त्रिश्चरेकषष्टिश्च पारणाः । जघन्यमध्यमोत्कृष्टसिंहनिष्क्रीडितं क्रमात् ॥ ८२ ॥ वक्षसंहननोऽनंतवीर्थसिंह इवाभयः । अणिमादिगुणः सिद्धचेत्फलेनास्य नरोऽचिरात् ॥ ८३ ॥ प्रतिदिधमुखं चत्वारस्ते निरस्तमनोमलाः प्रतिरितकरं चाष्टौ यत्र ह्यपोषितवासराः । प्रतिदिशमथो षष्ठं कार्यं तथांजनकान्प्रति व्रतिविधरयं श्रष्टो नंदीश्वरो जिनचिककृत् ॥ ८४ ॥

१ मध्यमंसिंहनिःध्की डितविधिः — सर्वे १५३ उपवासाः ।

१, २, ६, २, २, ४, ३, ५, ४, ६, ५, ७, ६, ८, ७, ९, १०, ९, १०, १०, १०, १२, ११,१३,१२, १४,१३,१४,१४,१४,१६,१५,१६,१४,१४,१३,१४,१२,१२,१२,१२,१०,११,९,१०,८, ९, ७, ८, ६, ७, ५,६,४,५,३,४,२,३,१,२,१, सर्वे ४९६ उपवासाः।

चतुर्स्त्रिशः सर्भः।

मेरुषु प्रतिवनं तु पष्टतः प्रत्यगारमुदिता चतुर्थकान्। मेरुपंक्तिंविधिरेष मेरुषु प्रापिष्यति महाभिषेचनं ॥ ८५॥ चतुश्रत्यान्वितषष्ठकेन त्रिषष्ठितावेष्टनभागषष्ठे विधानपंक्तिविधिरस्य कर्ता विमानपंक्तीश्वरँभावकर्ता ॥ ८६ ॥ रूपमादिराधि यत्र पंच ते त्रिस्ततो भवविरूपमप्यतः शातकुंभविधिरेष संभवे शांतकुभसुखँदस्तृतीयके ॥ ८७ ॥ एकादयः प्रणीता विधयोऽमी शातकुंभपर्यताः । पंचनवषोडशांता भवंत्यपि प्रथममध्यमोतकृष्टाः ॥ ८८॥ यथोक्तमेषां हि तपोविधीनां विधीरसक्ता उपवाससंख्या यथात्मशक्तिस्वहितपवृत्तेश्रतुर्थपष्टाष्टमतोऽपि पूर्याः ॥ ८९ ॥ योऽमावस्योपवासी प्रतिपदिकवलाहारमात्रः पुरस्ता-

१-८० उपवासाः २० षष्टानि । २-६५७ दिनेषु समाप्यते अत्र ३१६ स्थानानि । ३-४५ उपवासाः १७ पारणाः । ४-१५३ उपवासाः ३३ पारणाः । ५-४९६ उपवासाः ६१ पारणाः ।

त्तद्वृद्धचा पौर्णमास्याम्रपवसनयुतोद्धासयन् ग्रासमग्रे सामावस्योपवासः स भजति तपसश्रंडगत्यानुपूर्व्या चार्च्या चंद्रायंणस्य प्रविततयशसः कर्तृणः कर्तृभावं ॥ ९० ॥ प्रागुपोष्य कवलस्य भोजनं सप्तमांतमपि सैकवृद्धिकं। सप्तकृत्व इति यत्र तु क्रिया सप्तसप्तमतपोविधिस्त्वसौ ॥ ९१ ॥ अष्टाष्टमनवनवमौ द्शद्शमैकाद्शो विधयः। द्वात्रिंशद्वात्रिंशद्विध्यंता एवमात्मका बोध्याः ॥ ९२ ॥ एकद्वित्रिचतुःपंचषर्सप्ता भुक्तिपिंडकाः। प्रत्येकं सप्तमं ता स्युः सप्तसप्तमके अथवा ॥ ९३ ॥ अष्टांतादिषु विज्ञेयः शेषेश्वपि विधिस्त्वयं।

१ — अमावस्यामुपवासः प्रतिपदि एककवलाहारः एवं क्रमेण चतुर्दश्याम् चतुर्दशकवलाहारः तत उपवासः कृष्णप्रातिपदि चतुर्दशकवलाहारः एवमूनक्रमेण पुनरमावस्यायामुपवासः । २ प्रथमिदने उपवासः पुनरेकैकवृद्धिक्रमेण अष्टमिदवसे सप्तकवलाहारः पुनहीनिक्रमेणोपवासः एवं सप्तवारं कर्तव्यं ।

क्रमेणैकोपवासादिकवलक्रमसंज्ञकः ॥ ९४ ॥ आचाम्लवर्धमाने भवंति सौवीरयुक्तयस्त्वेकाद्याः। सोपोषिता दशांता दशादयश्रापि रूपांताः ॥ ९५ ॥ निर्विकृतिं पूर्वार्धः सैकस्थानस्तु पश्चिमार्धस्य । आचाम्लवर्षमानाः ऋमेण विधयो विधयास्ते ॥ ९६ ॥ अष्टाविंशतिरिष्टसाधनयतौ चैकादशांगेषु ते द्वाविष्टौ परिकर्मणोऽष्टसहिताशीतिस्तु सृत्रस्य हि एको चाद्यत्यागकेवलकृतौ द्विःसप्तपूर्वेष्वमी षट्पंचावधिचूलिके श्रुतिवधौ द्वौ तौ मनःपैर्यये ॥ ९७ ॥ प्रत्येकमष्टावुपवासभेदा निक्शंकिताद्यष्टगुणव्यपेक्षाः। त्रिदर्शनानामपि ते विधयास्तपोविधौ दर्शनश्चिद्धिसंज्ञे ॥ ९८ ॥ द्वावेकः पुनरेक एव हि परे पंचैक एकः क्रमात्

१- १५८ उपवासस्थानानि । २-२४ उपवासस्थानानि ।

षोदा बाह्यतपस्यमी क्रमगताः पुण्योपवासाः पृथक् अंतस्थे दश्च साधिकश्च नवभिक्षिशदश व्याहता पंच द्वौ पुनरेक एव च तपःशुद्धौ विधया विधौ ॥ ९९ ॥

चतुर्दश्चस्विहंसार्थं जीवस्थानेषु भाविता । त्रियोगनवकोटिघ्ना ते षृद्धिंशं शतं स्फुटं ॥१००॥ भीष्सास्वपक्षपेशून्यकोधलोभात्मशंसनैः । द्वासप्ततिन्वघनैस्ते पर्गनद्दिन्वतेरिति ॥ १०१ ॥ ग्रामारण्यखलेकांतरन्यत्रोपध्यभुक्तकः । संपृष्टग्रहणैः प्राग्वद्द्वासप्ततिरमी मता ॥ १०२ ॥ नृदेवचित्रतिर्यक्स्त्रीरूपैः पंचेदियाहतैः । नविद्राः ब्रह्मचर्यैःस्युःशॅतं तेऽशितिमिश्रितं ॥ १०३ ॥

चतुष्कषाया नव नोकषाया मिथ्यात्वमेते द्विचतुःपदे च।

क्षेत्रं च धान्यं च हि कुप्यभांदेधनं च यानं शयनाशनं च ॥ १०४ ॥ अंतर्बिहिर्भेदपरिग्रहास्ते रंध्रेश्रृतुर्विश्रृतिराह्तास्तु ।

ते द्वे शते षोडशसंयुते स्युर्महात्रते स्यादुपवासभेदाः ॥ १०५ ॥

षष्ठे दंशीपवासाः स्युरिनच्छा नव कोटिभिः । प्रत्येकं नव विज्ञेया त्रिगुप्तिसमितित्रिके ॥१०६॥

१-७८ उपवासाः १२ पारणाः । २ अहिंसावतोपवासाः १४×९=१२६ । ३-७२ उपवासाः । ४-७२ उपवासाः । ४-१८० ।

चतुर्स्त्रिशः सर्गः।

भावोपमाध्यवहारप्रतीत्यसंभावनासुभाषायां।जनपदसंवृतिनामस्थापनारूपा दश नवध्नाः॥ षट्चत्वारिंशहोषानेषणासिमतौ मतान् । नवध्नान्निध्नितुं कार्यास्तावंत उपवासकाः ॥ १०८ ॥ त्रयोदश्विधस्यैव चरित्रस्य विशुद्धये । विधौ चरित्रशुद्धौ स्युरुपवासाः प्रकीर्तिताः ॥ १०९ ॥ निर्विकृतिपश्चिमाद्वारैकस्थानं तथोपवासश्च। आचाम्ल-मुक्तमेकं तपोविधिस्त्वेककल्याणः ॥११०॥ पंचकृत्वः कृतावश्या पंचकल्याण उच्यते। चतुर्विंशतिसंख्यान् सा कार्यस्तीर्थकरान् प्रति॥१११॥ तुर्यव्रतोपवासैस्तु शीलकल्याणको विधिः । पंचिविश्वतिसंख्यैस्तैभीवनाविधिरिष्यते ॥११२॥ पंचविंदातिकरयाणभावानविधिरत्र तैः । तावद्भिरेव बोद्धर्यो विद्वद्भिरुपणितः ॥११३॥ सम्यक्तविनयज्ञानशीलसत्वश्रुतश्रुताः । समित्येकांतगुप्तीनां भावना धर्मशुक्रगाः ॥११४॥ स क्रेशेच्छानिरोधस्य संवरस्य च भावना । प्रसुप्तयो संवेगकारणाद्वेगभावनाः ॥११५॥ भोगसंसारनिर्वेदमुक्तिवैराग्यमोक्षजाः। मैत्र्युपेक्षा प्रमाद्गंताः ख्याताः कल्याणभावनाः ॥११६॥ प्रतीत्य सप्तभूमीनां जघन्यपरमायुषां । चतुर्दशोपवासास्तु विधेया विधिवद्बुधैः ॥११७॥ तिर्यग्गतावपर्याप्तपर्याप्तानां नृणां गतौ । प्रत्येकमपि चत्वारः प्रश्नमाते प्रबुद्धयन् ॥११८॥ द्वाविंशतिरतस्तुर्ध्वमच्युतांतेष्वमी ततः। ग्रैवेयकेषु कर्तच्या अष्टादश नवस्वपि ॥११९॥

द्वौ नवानुदिशेष्वेतौ द्वौवानुत्तरपंचके । अष्टाषष्टिरमी सर्वे स्युर्दुःखहरणे विधौ ॥१२०॥ नामतस्त्रिनवत्वादीरुत्तरप्रकृतीः प्रति । ते चत्वारिंशदृष्टाभिः कर्मक्षयविधौ स तं ॥१२१॥

कल्याणातिविशेषैः प्रतिकार्यैः प्रातिहार्यकारणागः ।

जिनगुणसंपत्तिस्तः पंचचतुर्स्तिशदष्टवोडशभिः ॥ १२२ ॥

द्रात्रिंशता चतुःषष्ट्या ह्यष्टोत्तरशतेन तैः।

दिव्यलक्षणपंक्तिःस्यादिव्यातिमहतः पराः ॥ १२३ ॥

स्यात्परस्परकल्याणाश्रतुर्विशतिवारतः ।

अदौ षष्ठोपवासःस्यात्समाप्तावष्टमस्तथा ॥ १२४ ॥

विधीनामिह सर्वेषामेषा हि च प्रदर्शना।

एकश्रतुर्थकाभिष्यो द्वौ पष्ठं तु त्रयोष्ट्रमः। दशमाद्यास्तथा वेद्या षण्मास्यंतोपवासकाः॥ १२५॥

पंचदशीपर्यंता उपवासाः प्रतिपदादि तिथिषु कार्या।

बहुभेदा विश्लेया जिनमार्गे सर्वसौख्यसंपनाः ॥ १२६ ॥

भाद्रपदशुक्लपक्षे सप्तम्यामप्त्रनंतफलसुखदः।
परिनिर्वाणारूयाविधिः प्रतिवर्षसुपोषणीयस्तु ॥ १२७ ॥
एकादश्यां प्रातिहार्यप्रसिद्धिः तुल्यां तुल्येः संफलत्यस्य चैव ।
पूकादश्यां कृष्णजायामशीतिः षद् पूर्वाशं सविधने ह्यनंतं ॥ १२८ ॥

शुद्धस्य मार्गशीर्षस्य तृतीयस्यामनंतकृत् । विमानपंक्तिवैराज्यः चतुध्यां षष्ठतो विधिः ॥१२९॥ एतेषु विधयः कार्या यथाश्चक्ति श्ररीरिभिः । स्वर्गापवर्गसौरूयस्य पारंपर्येण हेतवः ॥१३०॥ इत्युक्तविधिकर्त्तासौ सुप्रतिष्ठो यतिस्तदा । वर्षथ तीर्थकुन्नाम शुद्धैः षोडशकारणैः ॥१३१॥

निशंकाद्यष्टगुणा जिनकथिते मोक्षसत्वथे श्रद्धा ।

दर्शनविद्युद्धिराद्यस्तीर्थकरप्रकृतिकृद्धेतुः ॥ १३२ ॥

ज्ञानादिषु तद्वतसु च महादरो यः कषायित्रिनवृत्त्या ।

तीर्थकरनामहेतुः स विनयसंपन्नताभिष्यः ॥१३३॥

शीलवतरक्षायां कायमनोवचनवृत्तिरनवद्या ।

वेद्यो मार्गोद्यक्तैः स ग्रुद्धशीलवतेश्वनतिचारः ॥ १३४ ॥

अज्ञाननिवृशिकले प्रस्यक्षयरोक्षलक्षणज्ञाने । नित्यमभियुक्ततोक्तस्तज्ज्ञैर्ज्ञानोपयोगस्तु ॥ १३५ ॥ जन्मजरामरणामयमानसशारीरदुः खसंभारात् । संसाराज्जीकस्वं संबेगो विषयतृर्छेदी ॥ १३६ ॥ आहारामयदानं तद्दिनभवदुःखनुद्यथायोगं। संसारदुःखहरणं ज्ञानमहादानिमध्यते स्यागः ॥ १३७॥ अनिगृहितवीर्यस्य हि विशारारुशरीरमशुचिर्मृतकामं । संयोजयतः कार्ये तपोऽपि मार्गानुगावेदाः ॥ १३८ ॥ मांडागारहुताञ्चापशमनवैज्ञातविघ्रमनुपद्य । संघारणं हि तपसः संधिनां स्यात्समाधिरिह ॥ १३९ ॥ गुणवत्साधुजनानां क्षुघातृषाच्याधिजनितदुः सस्य । व्यपहरणे व्यापारो वैय्याष्ट्रस्यं वसुद्रव्यैः ॥ १४० ॥ अईत्सु योनुरागो यथाचार्ये बहुशुते यम ।

प्रवचनविनयश्वासौ चातुर्विध्यं भजति भक्तिः ॥ १४१ ॥ आवश्यकित्रयाणां षण्णां काले प्रवर्तनं क्रियते। तासां साऽपरिहाणिर्ज्ञेया सामायिकादीनां ॥ १४२ ॥ सावद्ययोगविरहं सामायिकमेकभागगं चित्तं। गुणकीर्तिस्त्रिथेकृतां चतुरादिविंशतिस्तवकः ॥ १४३ ॥ द्वचासनया सुविशुद्धा द्वादशवर्ता प्रवृत्तिषु प्राज्ञैः। सशिरश्रतुरानितका प्रकीर्तिता वंदना वंद्या ॥ १४४ ॥ द्रव्ये क्षेत्रे काले भावे च कृतप्रमादानिरहणं। वाकायमनःशुद्धचा प्रणीयते तु प्रतिक्रमणं ॥ १४५ ॥ आगंतुकदोषाणां प्रत्याख्यानं तु वर्ण्यते यो ज्ञैः। कायोत्सर्गः कालो मितकायं निर्ममत्वं तु ॥ १४६ ॥ परमतभेदसमर्थज्ञानतपोजिनमहामहैर्जगति । मार्गप्रभावना स्यात्प्रकाशनं मोक्षमार्गस्य ॥ १४७ ॥

चतुर्स्त्रिशः सर्गः।

धनोरिव निजवत्से सौत्सुक्यधियः सधर्माण स्नेहः। प्रवचनवत्सलता स्यात्सस्नेहःप्रवचने यम्मात् ॥१४८॥ तीर्थकरनामकर्मणि पोडश तत्कारणान्यमृन्यनिशं। व्यस्तानि समस्तानि च भवंति सद्घाव्यमानानि ॥१४९॥ त्रैलोक्यामनकंपसक्तसुबृहत्पुण्यप्रकृत्यात्मकः । पत्याख्याय सं सुप्रतिष्ठसुमुनिर्भक्तं ततो मासिकं ॥ अ(राध्याथ चतुर्विधां बुधनुतामाराधनां शुद्धधी-द्वीत्रिशज्जलिधिस्थितिः पुरुसुखं स्वर्गं जयंतं स्थितः ॥ १५० ॥ मुक्त्वा संसृतिसारसौच्यमतुलं तत्राहमिद्रोचितं । सज्ज्ञानत्रयदृष्ट्रनेत्रसकलत्रद्योक्यनेत्रस्थितिः ॥ च्युत्वातो भविता समुद्रविजय।देव्यां शिवायां शिवो । नेमीशो हरिवंशशैलतिलको द्वाविंशसंख्यो जिनः ॥१५१॥ इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनेसनाचार्यकृतौ महोपवासविधिवर्णनो नाम चतुस्त्रिंशः सर्गः ।

पंचत्रिंशः सर्गः ।

अरिष्टनेमेश्वरितं निशम्य यदुः परं श्रेणिक संप्रहृष्टः। प्रणम्य भावादतिम्रक्तिकपि जगाम कांतासहितो निशांते ॥ १ ॥ यथा पुरा तो मथुरासुपुर्या यथेष्टमाऋडिनयातिसक्तौ । सुदंपती तस्थतुरिष्टभोगौ सशंककंसेन समर्च्यमानौ ॥ २ ॥ वभार गर्भ युगलात्मकं सा सुदेवकी कंसभयस्य हेतुं। सहायभावो हि विपक्षयोगान्महाभयस्योपनिपातहेतुः ॥ ३ ॥ अथ प्रस्तौ सुतयुग्ममस्याः सुरेण संक्रामितमिद्रवाक्यात् । सुनैगमेतिश्रुतिना सुभद्रं सुभद्रिलोद्भूतपुरोक्तथात्र्याः ॥ ४ ॥ प्रजातमात्रं खलु दैवयोगात् सुदृष्टिजायाव्यसपुत्रयुग्मं।

स देवकीसूतिगृहे निधाय जगाम देवो निजदेवलोकं ॥ ५ ॥

१ मृत ।

प्रविष्य कंस स्वसृद्धतिगेहं निरीक्ष्य निर्जीवितजीवयुग्मं । त्रगृद्यपादेषु निपादरौद्रः शिलातले ताडितवान् सशंकः ॥ ६ ॥ क्रमेण स द्वंद्रयुगं प्रयातं निनाय देवोऽप्यलकां सुकामां। पुनश्च कंमोप्यमुविष्रयुक्तमताङयत्पूर्ववदेव पापी ॥ ७ ॥ षडायविष्ना वसुदेवपुत्रा स्वपुण्यरक्ष्यास्त्वलकातिहृद्या । पुरोक्तसंज्ञासुखलालितास्ते शनैरवर्धत ततोऽतिरूपाः ॥ ८ ॥ प्रवर्धमानेष्वय तत्र तेषु सुदृष्टिसुत्रावकभूतिवृद्धिः। अपूर्वनानाविधवस्तुलाभैस्तदात्यशेतापरभूपभूमिः ॥ ९ ॥ इतोऽपि देवक्यपि भर्तृवाक्यादपाकृतापत्यवियोगदुःखा । शनैः प्रपेदे प्रतिपत्कलेव दिनोत्तरैः पूर्ववदेव कांति ॥ १० ॥ अथैकदा चंद्रशिते निशांत निशांतकांते शयने शयाना । ददशे सप्तोदयशंसिनः सा पदार्थकान् स्वप्न इमानिशांते ॥ ११ ॥ प्रदीप्तमुद्यंतिमनं तमोंऽतं समंतकांतं शिक्षनं प्रपूर्ण ।

श्चियं सदिग्रागमहाभिषेकां विमानमाकाशतलान्नमच ॥ १२ ॥ उवलद्बृहज्ज्वालहुताशमुचैः सुरध्यजं रत्नमरीचिचंक्र । मृगाधिपं चाननमाविशंतं निशाम्य सौम्या बुबुधे सकंपा ॥ १३ ॥ अपूर्वसुस्वप्नविलोकनात्सा सविस्मयाहृष्टतन्रुहा तान्। जगो प्रभाते कृतमंग्लांगा समेत्य पत्येऽभिद्धे स विद्वान् ॥ १४ ॥ प्रतापविध्वस्तरिषुः सुतस्ते प्रियोऽतिसौभाग्ययुतोऽभिषेकी । दिवावतीर्यातिरुचिस्थिरोऽभीभविष्यति क्षिप्रमिनो जगत्याः ॥ १५ ॥ निशम्य सा स्वप्नफलं स्वभर्तस्तथास्त्विति प्रीतमितः प्रपद्य। व्यवस्थिता गर्भमधत्त चाशु जगद्धितं द्योरिव तापशांत्ये ॥ १६ ॥ यथा यथासौ परिवर्धतेऽस्या प्रवर्धमानांगमनःसुखायाः । तथा तथावर्धत भूतधात्र्यां जनस्य सर्वस्य च सौमनस्यं ॥ १७॥ ररक्ष गर्भ प्रसवव्यपेक्षः स्वसुः स संक्षोभगतस्तु कंसः।

१ इनः स्वामी।

दिनानि मासानसमंजसात्मा गुणानपेक्ष्यो गणयन्नलक्ष्यः ॥ १८ ॥ अथोदयादिश्रमणे तु पक्षे ह्यधेक्षिजो भाद्रपदस्य शुक्ते। पवित्रयन् द्वादशिकां तिथि तामलक्षितः सप्तम एव मासे ॥ १९॥ स शंखचकादिसुलक्षितांगः स्फुरन्महानीलमणिप्रकाशः। स देवकीस्तिगृहं स्वदीप्त्या प्रदीपवान् द्योतयतिस्म कृष्णः ॥ २० ॥ स्वपक्षगेहेषु तदाऽऽविरासन् स्वतो निमिन्तानि शुभावहानि । विपक्षगेहेषु भयावहानि प्रभावतस्तस्य नरोत्तमस्य ॥ २१ ॥ तदा च सप्ताहमहातिवर्षे प्रवर्तमाने निशि जातमात्रं। हली खिवत्रा विद्वतातपत्रं हिं गृहीत्वा गृहतो निरैद्द्राक् ॥ २२ ॥ अलक्षितः कंसभटैः प्रसुप्तैः प्रसुप्तपौरे समये पुरस्य । स गोपुरद्वारकपाटसंधिं विपाट्य विष्णुक्रमयुग्मसंगात ॥ २३ ॥ पयःकणे घाणपुटं प्रविष्टे शिशोस्तिडिद्वातगभीरनादे । श्चते चिरंजीव जयत्वविष्टनस्त्विमत्यनुश्रत्य तदोपरिष्टात् ॥ २४ ॥

वियोग्रसेनेन नृपेण दत्तां वियाशिषं तोषयुतोऽगदीतं । रहस्यरक्षा कियतां प्रतीक्ष् विद्यक्तिरस्मात्तव दैवकेयात् ॥ २५ ॥ प्रवर्धतां भ्रात्शरीरजायाः सुतोयमज्ञातमरेरितीष्टं। तदौग्रसेनीमभिवंद्य वाचममू विनिर्जग्मतुराशु पुर्याः ॥ २६ ॥ ज्वलद्विषाणो वृषभः पुरस्तात्प्रदीपयन्मार्गमगात्स तूर्णे । महानुभावाद्यमुना हरेद्रीक् बभूव विच्छिन्नमहाप्रवाहा ॥ २७ ॥ धुनीं समुत्तीर्थ ततोऽभिगम्य वनं च वृंदावनमत्र गोष्ठे । सुनंदगोपं सयशोदमाप्तं क्रमागतं तौ निशि दृष्टवंतौ ॥ २८ ॥ समर्घ ताभ्यामहरस्यभेदं प्रवर्द्धनीयं निजपुत्रबुद्धचा । शिशुं विशालेक्षणमीक्षणानां महामृतं कांतिमयं स्रवंतं ॥ २९ ॥ ततश्च तत्कालभवां यशोदाशरीरजां विश्वसनाय शत्रोः। अरं समादाय समेत्य देव्यै प्रदाय तौ तस्थतुरप्रलक्षौ ॥ ३० ॥ स्वसुः प्रसूर्ति प्रति विइकंसः प्रस्त्यगारं निष्टणः प्रविश्य ।

विलोक्य बालाममलाममुष्याः पतिः कदाचित्र्यभवेदरिर्मे ॥ ३१ ॥ विचित्य शंकाकुलितस्तदेति निरस्तकोपोऽपि स दीर्घदर्शी । स्वयं समादाय करेण तस्या प्रनुद्य नामां चिपिटींचकार ॥ ३२ ॥ स देवकीमानसतापकारी सुतांतदशी किल निर्वृतातमा । अतिष्ठदंतर्हितरौद्रभावः सुखेन तावत्कतिचिद्दिनानि ॥ ३३ ॥ ततो वजस्थः कृतजातकमी स्तनंधयोसौ कृतकृष्णनामा। प्रवर्धते नंदयशोदयोस्तु प्रवर्धयन् प्रीतिमभूतपूर्वा ॥ ३४ ॥ गदासिचक्रांकुशशंखपद्मप्रशस्तरेखारुणपाणिपादः । स गोपगोपीजनमानसानि सकाममुत्तानशयो जहार ॥ ३५ ॥ सुरूपमिंदीवरवर्णशोभं स्तनप्रदानव्यपदेशगोप्यः। अहं यवः पूर्णपयोधरास्तमतृप्तनेत्राः पपुरेकतानं ॥ ३६ ॥ इतः कदाचिद्रहणेन कंसो निमित्तविश्वेन हितैषिणोक्तः। न्पैधते ते रिप्रुरत्र कश्चित्पुरे वने वा परिमृग्यतां सः ॥ ३७ ॥

ततोऽष्टमाख्यानशनं तपोऽसौ चकार कंसो रिपुनाशबुद्धया ।
पुराभ्युपेतार्थसमर्थनाय सुदेवताः प्रोचुरुपेत्य तास्तं ॥ ३८ ॥
पुरा तपः साधितदेवतास्ता इमा वयं ते वद वस्तु कृत्यं ।
विहाय शीरायुधचक्रपाणी क्षणेन कः कंसरिपुर्निरस्यः ॥ ३९ ॥
जगावसौ कोऽपि ममास्ति वैरी प्रवर्धमानः कचिद्प्यलक्ष्यः ।
तमाशु यूयं परिमृग्य मृत्योर्भुखे कुरुष्वं करुणानपेक्षाः ॥ ४० ॥
इतीरितं ताः प्रतिपद्य याता प्रदृश्य चैकोप्रशक्कंतरूपा ।

प्रनुद्य हंत्री हरिणात्ततुंडा प्रचंडनादा प्रणनाश भीता ॥ ४१ ॥ कुपूतना पूतनभूतमृतिः प्रपाययंती सिवषस्तनौ तं ।

स देवताधिष्ठितिनिष्ठुरास्यो व्यरीरटच्चूचुकभूषणेन ॥ ४२ ॥ स्वपित्रिपीदकुरसा प्रसर्पन् पदं ददन् सस्खिलतं प्रधावन् । कलाभिलापो नवनीतमद्यन्नजीगमज्जिष्णुरहार्दिनानि ॥ ४३ ॥

अतः शरीरामपरां पिशाचीं स चापतंतीं घनपादघाती । विभीवभंजांजनशैलशोभी पृथूदयस्तां पृथुकोऽपि कोपि ॥ ४४ ॥ यशोदया दामगुणन जातु यदच्छयोदूखलबद्धपादः। निपीडयंतो रिपुदेवतांगो न्यपातयत्तो जमलौर्जुनौ सः ॥ ४५ ॥ स नंदगोपेन यशोदया च सुदृष्टशक्तिः शुभशेशवादी । स विस्मिताभ्यामभिनंद्यमानो बालः स दश्यो ववृधे वनांते ॥ ४६ ॥ स गोपति दप्तमशेषघोषितस्ततो दृष्टग्रदग्रघोषं । महार्णवं वा प्रतिपूर्णयंतं जघान कंठोद्रलनात्सुकंठः ॥ ४७ ॥ क्देवपाषाणमयातिवर्षेरनाकुलो व्याकुलगोकुलाय। दधार गोवर्धनमूर्ध्वमुचैः स भूधरं भूधरणोरुदोभ्या ॥ ४८ ॥ अमानुषं कृष्णविचेष्टितं तत्सकर्णमाकर्ण्य बलेन वर्ण्यं।

कृतोपवासव्यपदेशतोगाद्त्रजं सवित्री सुतदर्शनाय ॥ ४९ ॥

१-अनः इति ख पुस्तके । ' एनः ' वा भवितुमहिति । २-जमलार्जुनवृक्षरूपौ देवौ ।

सुकंठगोपालकैलोपगीतं सुतारघंटाध्विन गोधनाढ्यं।

महीश्रपादे वनरंश्रमागा पुरंश्विरध्यास परां घृति सा ॥ ५० ॥

किचिचितं स्निग्धसुकृष्णवर्णैः किचिच सोद्यद्रलभद्रशुक्रैः।

गवां गणवींक्ष्य वनं जहपे भवत्यपत्यप्रतिमं हि दृष्ट्यं॥ ५१ ॥

तृणांबुत्रप्ताःस्तनलग्नवत्सा प्रदृद्धमानाश्च परा घटोशीः।

दद्रशे गा गोष्ठगतास्तदेषा प्रवृत्तरोमांचसुखाभिरामाः॥ ५२ ॥

सवत्सधेनुध्वनयोऽतिधीरा रवाश्च गोपीदिधिमंथनोत्थाः।

मनोभिजव्हे हरिमातुरुचैर्गभीरनादा न हरंति किं वा॥ ५३ ॥

ततोऽभिनंदी हृदि नंदगोपो यशोदयोत्पेत्य यशोविश्चद्धां।

स देवकीं खामिनिकां निकायैमनस्विनीं भक्तियुतो ननाम ॥ ५४ ॥ सुपीतवासोयुगलं वसानं वनेवतंसीकृतवाहिंवहैं।

अखंडनीलोत्पलग्रंडमालं सुकंठिकाभूषितकंबुकंठं ॥ ५५ ॥

१- कुलोपगीतं ' इति क पुस्तके।

सुवर्णकर्णाभरणोज्ज्वलामं सुबंधुजीवालिकमुचमौलिं। हिरण्यरोचिर्वलयः प्रकोष्ठं सुपादगोपालकसानुवंशे ॥ ५६ ॥ यशोदयानीय यशोदयाद्यं प्रणामितं पुत्रमसौ सवित्री। सुगोपवेषं निकटे निषण्णं परामृशंती चिरमाछलोके ॥ ५७॥ जगौ च देवी विपिनेऽपि वासस्तवेदशापत्यदशो यशोदे। यशस्विनि श्लाघ्यतमो जगत्यां न राज्यलाभोऽभिमतोऽनपत्यः ॥ ५८ ॥ जगाद गोपी भवती यथाह तथैव मे स्वामिनि सत्यमेतत्। तथैव संतोषविशेषदोषी प्रियाशिषा जीवतु नित्यभूत्यः ॥ ५९ ॥ इहांतरे सा सुतद्र्यनेन सुनिर्भरप्रस्तुतसुस्तनौ तौ। शशाक नो संवरितुं क्षरंतौ न संवृतिः स्यात्सति चित्तभेदे ॥ ६० ॥

रिपोर्भयात्पुत्र वियोजितोऽसि न दुष्टबुद्धचेति विश्वद्धिमंतः । स्तनक्षरत्क्षीरिनभेन राज्ञी प्रदर्शयंतीव तदा रराज ॥ ६१ ॥ प्रकाशभीरुः सहसा ततोसौ हलायुधः क्षीरघटेन दक्षः ।

तदाभ्यषिचत्स्वयमंचितास्थां न मुद्यति प्राप्तकृतौ कृती हि ।। ६२ ।। ततो हरिषेक्षणलब्धसौख्या हली समानीय समाप्तकार्यो । प्रवेक्य साध्वीं मथुरां पुनस्तं न्यवेद्यद्वृत्तमपि स्वपित्रे ॥ ६३ ॥ कलागुणान प्रत्यहमेत्य दक्षमशिक्षयत्केशवमाशु शीरी। स्थिरोपदेशे प्रणते न शिष्ये गुरूपदेशाः क्षपयंति कालं ॥ ६४ ॥ स बालभावातसुकुमारभावस्तर्थेवमुद्धिन्नकुचाः कुमारः। सुयौवनोन्माद्भराः सुराशैररीरमत्केलिषु गोपकन्याः ॥ ६५ ॥ करांगुलिस्पर्शसुखं स रासेष्वजीजनद्रोपवधूजनस्य । सुनिर्विकारोऽपि महानुभावो सुमुद्रिकानद्भमणिर्यथार्घः ॥ ६६ ॥ यथा हरें। भूरिजनानुरागो जगाम वृद्धिं हृदि वृद्धिस्ची। तथास्य तेने विरहानुरागो विहारकाले विरहातुरस्य ॥ ६७ ॥ द्विषं तमन्वेष्टुमितः प्रविष्टः स शंकया कंसरिपुः कदाचित् । त्रजं निजैरात्रजदच्युतोऽस्मात्पुरोभ्युपायाद्गमितो जनन्याः ॥ ६८ ॥

स नाटवीं स्पष्टकृतादृहासां कुराक्षसीं रूक्षनिरीक्षणास्यां। अधोक्षजो वीक्ष्य विवृद्धकायां श्ररीरयष्टचां विकृतां जधान ॥ ६९ ॥ स्रशाल्मलीखंडसुमंडपस्य सुदुर्भरास्तंभतिः परेषां। तम्रिदेक्षपंतं त्वदयं विदित्वा न्यवर्तयत्सा जननी विशंका ॥ ७० ॥ निवृत्त्य कंसः पुरघोषणां स्वैरघोषयद्वविदुक्तकारी । गवेषणार्थं द्विषतो निजस्य स पापशापाभिमुखः सुखार्था ॥ ७१ ॥ भुजंगश्चयामिह सिंहवाहशरासनं चाप्याजितं जयंतं । सपांचजनयाञ्जमथारुहेद्यः करोत्यधिज्यं परिपूरयेच्य ॥ ७२ ॥ ददाति तस्मै पुरुषोत्तमाय पराजिताशेषपराक्रमाय । अलभ्यलामं समभीष्टमिष्टः प्रहृष्टकंसः स रुषांतैरज्ञः ॥ ७३ ॥ इति प्रवृत्तिश्रवणात्प्रवृत्तास्ततस्तदारोहणपूर्विकासु । क्रियास निस्तर्जितवृत्तयश्च महीक्षितो जग्गुरतो विलक्षाः॥ ७४ ॥

१ पुरुषांतरज्ञः इति ख पुस्तके।

अथानयद्भानुरुपेंद्रमर्थी सहोदरोऽसौ खळु कंसवध्वाः। तदीयसामध्येमुदीक्ष्य जातु प्रजाततोषो मथुरापुरी तां ॥ ७५ ॥ महाहिशय्यामिह सज्जितांतं व्यलोक्य चेंद्रस्य पदे स पृष्टा । समारुहद्भीषणभोगिभोगां स्वभावशय्यामिव शौरिराशु ॥ ७६ ॥ धनुस्ततोधिज्यमसौ व्यथत्त भुजंगमोद्रीणीविकीणेधूमं । अपूरयच्छं खमखेदमाशाः प्रपूरयंतं निखिला निनादैः ॥ ७७ ॥ जनस्तदालोक्य तदातिलोकं तदीयमाहात्म्यमुदीयमानं । अघोषयत्क्षुब्धसमुद्रघोषो महानहो कोप्ययमित्यशेषः ॥ ७८ ॥ कुकंसशंकां वहताग्रजेन निजेन नीत्या प्रहितो हरिस्तु । महानुकूलो व्रजमात्मनीनैः सहाव्रजतीव्रगुणानुरागैः ॥ ७९ ॥ गर्भाधानातपूर्वमर्वाक् प्रसूतेरावद्धांतवैरभावोऽपि श्रुतः। मत्तः कुर्यातिक ह्युदात्तस्य पुंसो जैनाद्धमीत्पूर्वजनमप्रयातात् ॥ ८० ॥

इति ''अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे'' हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ कृष्णबालकीदावर्णनो नाम पंचिस्रंशः सर्गः ।

पद्त्रिंशः सर्गः ।

अथ विरुवद्लिज्यासृहवाणासनायां कलरवकलहंसीशंखश्याश्रितायां। रिपुशिखिमदपक्षक्षोदपक्षोदयायां शरिद हरिनवश्रीलीलयाध्यासितायां ॥ १ ॥ घननिवहविघाताद्यौरभाचंद्रहासा विघाटतघनपंका मेदिनी कासहासा । कतिपयदिनभाविष्रीढकंसाभिघातप्रकटितहरिहासाकारविद्योततीव ॥ २ ॥ विपुलपुलिनकेन व्याजतः स्वच्छनद्यः सहजजलसरस्यः पुंडरीकापदेशात् । सितकुसुमनिभेन स्वैवनांतैश्व शैला हरियश इव शुभ्रं द्राग्दधाना विरेजुः ॥ ३ ॥ फलकुचगुरुभाराऋांतिराक्रांतसस्यप्रचुररुचिरकासात्कंचुकोद्धासमाना । प्रमद्वशविकासिन्युर्वरा सर्वतोऽभाद्भिनवहरिकंठाश्लेषणोत्कंठितेव ॥ ४ ॥ प्रसवभरविभूतिव्यग्रताव्यग्रगर्भग्रहणसमयहृष्यद्वोत्रृषोद्धोषघोषाः । शरिद हृदयतोषं तोषयंतिसम विष्णोः प्रसममिह रिपूणां पेषणं घोषयंतः ॥ ५ ॥ विदितहरिसमीहश्रापि कंसस्तदानीं पुनरपि तदपाये पापधीर्गीपवर्गे। कमलहरणहेतोई गेम त्यंगभाजां हृदमपि विषमाहिष्राहिणोद्यामुनं सः ॥ ६ ॥

निजभुजबलकाली हेलयेवावगाह्य हृदमपि कुपितोत्थं कालियाहिं महोग्रं। फिणमिणिकिरणौघोद्गीर्णविह्निस्फुलिंगव्यतिकरमितकृष्णं मंक्षु कृष्णो ममर्द ॥ ७॥ तटरुहविटपाग्रन्यग्रगोपप्रणादस्फुटहलधरधीरध्वानसंहृष्टभेदः। भुजनिहत्युजंगः संसमुच्छित्य पद्मानुपत्रहमटतिस्म द्राक् मरुत्वानिवासौ ॥ ८ ॥ प्रविलसद्तिभास्वत्पीतवासा बलेन प्रमद्भरवशेन प्रोह्णसन्मेचकेन। सरभसमुपगृढश्चोद्वृतोऽभाद्भजाभ्यामशितशितशितशिलाग्रेणेव सोब्दःसविद्युत् ॥ ९ ॥ निहितकमलभारान् गोपकैरग्रतोरिः परगुणमसहिष्णुः सोष्णग्रुच्छुस्य दृष्ट्या । समभणदिति शीघ्रं नंदगोपात्मजाद्याः सरभसमिह गोपामस्रयुद्धाय संतु ॥ १० ॥ इति विहितमहाक्षे मल्लयुद्धाय मल्लानितकिठनकिनष्ठज्येष्ठमध्यप्ररूढान् । द्वततरप्रुपकंठे स्वस्य चक्रे सचक्रक्रकचिनिशतिचत्तःकर्तुकामस्तदानीं ॥ ११ ॥ चरितमिद्मकालक्षेपि विज्ञाय शत्रोः स्थिरमतिवसुदेवश्राप्यनावृष्टियुक्तः। ज्ञपितुमपि सर्वं ज्येष्ठवर्गं सः वार्तामगमयदिह शीघं सन्निधानाय तस्य ॥ १२ ॥ विदित्तरिषुविचेष्टास्ते नवज्येष्टमुख्या रथतुरगपदातिप्रोन्मदेभैः स्वसैन्यैः।

सरभसमभिजग्मुर्भूतलं भूषयंतः शठहृदयमकस्मात्यम्मयं दारयंतः ॥ १३ ॥ चिरवियुतकनीयोदर्शनच्याजतस्तान्पृथुतरमथुरां तामागतान् यादवेंद्रान्। अभिमुखमपशंको वेत्य कंसः सशंको निभृतकृतनतिः प्रावेशयत्सानुजान् सः॥ १४॥ पुरपुरुगृहशोभादर्शनाच्नप्तवेत्रास्तद्धिपतिनियुक्ता वासकास्ते यथेष्टं । प्रतिदिनम्परसेव्या दानमानप्रणामैः प्रणयामित्र बहंतस्तस्थुरंतर्विदाहाः ॥ १५॥ हलधृदवधृतार्थो मल्लयुद्धाभिलापं वृपलवधिवशेषोदंतविज्ञो विधित्सः। अतिनिपुणमतिस्तां सिन्निधा तस्य धीरो वदति लघु यशोदां स्नानमाकल्पयेति॥ १६॥ चिरयसि किमिति त्वं विस्मृतात्मीयदेहे न सकुद्सकुदुक्ता न स्वभावं जहासि । न हि शुचिशुभशुक्तयुत्पादितोदारमुक्तामणिगतिभूतवेला चापलं खं जहाति ॥ १७ ॥ इति सह चिरवासेप्युक्तपूर्वा न जातु द्यतिचिकतभया सा साश्चनेत्रा निरुक्तिः। द्भतत्रमुपकरूप स्नानमन्त्रप्ति द्वयं प्रकृतमकृत यत्नं स्नातुमेतौ नदीं तौ ॥ १८॥ अवददिति बलस्तं कृष्णमेकांतवर्ती किमिति मुखमिदं ते दीर्घनिश्वाससास्रं। हिमहतरुचिपद्मच्छायमच्छायमद्य प्रथयति पृथुमंतस्तापमाचक्ष्व हेतुं ॥ १९ ॥

षद्रञ्जिशः सर्गः ।

प्रणयसाहितिसित्थं प्रश्नितः प्राह कृष्णः प्रहसितमुखपद्यं पद्ममालोक्य वाक्यं । शृणु वचनमिहार्य त्वं मदीयं प्रसिद्धं स्फुटवद्नविकाराङ्घक्षितं चित्तदुःखं ॥ २० ॥ श्वतगुरुरसि विद्वान् वेत्सि लोकानुवृत्तिं त्वमुपदिशसि मार्गं चार्य वर्षे पुरस्य । तदिह भण सुपूज्यां युज्यते मे यशोदामतिपरुषवचोभिस्ते तिरस्कर्तुमद्य ॥ २१ ॥ इति सुविहितमन्युं गंगदत्तं गदंतं हृषिततनुरुहोसौ गाढमाश्चिष्य दोभ्यौ । अवदद्विरलश्रुपातसंसूचितांतःकरणविशद्वृत्तिः सर्ववृत्तांतमस्मै ॥ २२ ॥ मुनिवचनमवंध्यं तज्जरासंधजायाः पदुमदवशवृत्तेईतुतो वृत्तमादौ । निधनमपि च पण्णां देवकीगर्भजानां अभितहृदयकंसापादितं कोपहेतुं ॥ २३ ॥ प्रसवसमयतोऽवीग्गोकुले लीनवृत्ति रिपुविहितमनेकापायमप्यत्र बाल्यात् । प्रभृति सकलमग्रे मल्लसंग्रामग्रुग्रं विरचितमवधार्य द्विड्वधेऽधत्त चित्तं ॥ २४॥ हरिरिति हरिवंशं राहिणेयादशेषं पितृजनगुरुबंधुं भातृवर्गं विदित्वा । प्रमद्पुरुमुवाहश्रीमुखांमोजलक्ष्मीहिरिरिव गुरुभूभृद्भूरिरक्षासनाथः ॥ २५ ॥ हितसहजतयोत्थरनेहसंपृक्तभावौ सुसरिति यमुनायां तौ महामीनलीलौ ।

षद्रत्रिंशः सर्गः ।

जलविहरणदक्षौ स्नानमासेव्य सेव्यौ निजसदनमगातामन्वितौ गोपवर्गैः ॥ २६ ॥ शुभपरिमलसद्यस्तापहैयंगवीनं स्फुटसुरससुसूपव्यंजनक्षीरदध्नः। विरचितमणिभूमौ हेमपान्यां सहेतौ मृदुविशदसुसिक्धं शालिभक्तं हि शुक्तवा ॥ २७ ॥ सुमृदुसुरभिगंध्युद्वर्तितास्यस्वपाणी स्वकरिकसलयौ तौ दिग्धदिच्यानुलिप्तौ । पिलतहरितपूर्गैलादितांबुलरागप्रविततमुखरागाद्धासमानाधरोष्ठौ ॥ २८ ॥ विविधकरणदक्षौ मछविद्यानवद्यौ कृतचलनसुवेषौ नीलपीतांबराभ्यां। बृहदुरिस विधायोदारसिंदूरधूलीरिमनववनमालामालतीमुंडमालौ ॥ २९॥ स्थिरमनसि विधाय ध्वंसनं कंसशत्रोश्रलचरणनिघातैर्धारिणीं क्षोभयंतौ । समभरमतिघोरैर्मछवेषः सवर्गः पुरमभि मथुरां तौ चेलतुर्गोपवर्गैः ॥ ३० ॥ अभिपतदुरगेंद्रं रासमं दूरसंतं पथि हि पुरनिवेशे विध्नयंतं बृहध्वं। विश्वतवद्नरंश्रं चापतंतं दुरंतं कुतुरगमवधीत्तं केशवः केशिनं सः ॥ ३१ ॥ नगरमभिविशंतौ वारितौ वारणेद्रावविरतमदलेखामंडितापांडुगंडौ । युगपदरिनियोगादापतंतौ विदित्वा तुतुषतुरिव दृष्ट्रा युद्धरंगादिमङ्कौ ॥ ३२ ॥

सललितमभितस्थौ चंपकं शीरपाणिः फणिरिपुरपि नागं तत्र पादाभराख्यं। अभवद्भिनवं तद्विस्मयापादिपुंसां नरवरकरिमछद्वंद्वयोर्द्वेद्वयुद्धं ॥ ३३ ॥ दृढपद्हतिगाढाक्रांति चोत्पाटयंतौ कुटिलितकररुद्धादंतिदंतानभातां। पृथुभुजबललीलोत्पाद्यमानारवाद्ये क्षितिभृदुरगचेष्टप्रौढवंशांकुरान्वा ॥ ३४ ॥ अद्यमथसमूलोन्मूलितोल्लासिताभास्वरद्नैपरिघातैर्घोरनिर्घोषघोषैः। विरसविरटितेमौ तौ निहत्य प्रविष्टौ पुरमुख्रववेला क्ष्वेडिता स्फोटगोपैः ॥ ३५ ॥ कमलकिसलयोद्यत्तोरणद्वारशोभां नृपजनपदशुंभचकवालालयालि । भुजिशिखरनिष्टृष्टज्येष्टमल्लांसकूटौ विशदमविशतां तौ तां महारंगभूमिं ॥ ३६ ॥ स्वचरणभुजदंडाकुंचिताकारशोभान्यभिनयदृढदृष्टिक्षेपरम्याणि रेजुः। चलितचलनवस्त्रप्रांतकांतानि रंगे हरिहलधरहेलावल्गितास्फोटितानि ॥ ३७ ॥ रिपुरयमिह कंसोऽयं जरासंघलोकः सलिलधिविजैयाद्यास्ते दशामी सपुत्राः। सहलसहरिचकालोकिनो लांगलीत्थं पतिपुरुषमशेषं संज्ञयादशयत्तान् ॥ ३८ ॥

१ 'वदन ' इति क पुस्तके । २ समुद्रविजय ।

बहुजनपदराजपाज्यलोकावलोके क्षुभितसकलमल्लास्फोटवल्गाभिरामे । ऋमसहितमिहान्ये तावदादेशभाजो वनमहिषविद्या मल्लयुद्धं प्रचकुः ॥ ३९ ॥ अथ गिरिगुरुभित्तिच्युदवक्षोविभाग-स्फुटदृदभुजयंत्रोत्पीडितो दृप्तमळं। हरिमभि खलकंसो युक्तचाणुरमल्लं विषमितविषदृष्ट्या पृष्ठतो मुष्टिकं च ॥ ४० ॥ खरनखरकठोरौ मुष्टिवंधौ विधाय प्रकटितपदसिंहाकारसंस्थानभेदौ । स्थिरचरणनिवेशौ शौरिचाणूरमल्लावनिभृतमभिलग्नौ मुष्टिसंघट्टयुद्धे ॥ ४१ ॥ कुलिशकठिनमुष्टिं मुष्टिकं पृष्टतस्तं समपतितसकामं राममङ्घः सलीलं। अलमलिम तावत्तिष्ठ तिष्ठेति साशीः शिरसि करतलेनाकम्य चके गतासुं ॥ ४२ ॥ हरिरपि हरिशक्तिः शक्तचाणूरकं तं द्विगुणितमुरसि स्वे हारिहुंकारगर्भः। व्यतनुत्रभुजयंत्राकांतनीरंधनियद्भहरुकिधरधारोद्गारमुद्गीर्णजीवं ॥ ४३ ॥ दशशतहरिहस्तिप्रोद्धलौ साधिषुभावितिहठहतमल्लौ वीक्ष्य तौ शीरिकृष्णौ। प्रचलितवति कंसे शालनिस्त्रिशहस्ते व्यचलदिखलरंगांभोधिरुचुंगनादः ॥ ४४ ॥ अभिपतदारिहस्तात्खर्गमाञ्चिष्य कोशेष्त्रातिदृढमातिगृह्याहृत्य भूमौ सरोषं ।

विहितपरुषपादाकर्षणस्तं शिलायां तदुचितमिति मत्वा स्फाल्य हत्वा जहास ॥ ४५ ॥ धुमितमभिपतंतं कंससैन्यं च रामः कुटिलभृकुटिमंचस्तंभमुत्पाद्य कोपात् । कुलिशसदृश्यातैः सर्वतो गर्वदृत्तैरकृत कुत्तविरावं कांदिशीकं क्षणेन ॥ ४६ ॥ यदुषु विषमदृष्टिष्वेककालं बलैःस्वैश्वलितजल्धिनादैरुत्थितेषुद्धतेषु । श्वभितमपि समस्तं कंसकार्ये नियुक्तं व्यनशद्वशमत्तं तज्जरासंघसैन्यं ॥ ४७ ॥ रथमथ चतुरस्रं तावनावृष्टियुक्तौ सपदि समभिरुदौ मल्लनेपध्ययुक्तौ । सदनमगमतां तत्पैतृकं यादवौँचैर्जलिधविजयपूर्वैः पूर्णमुर्वीभृदीशैः ॥ ४८ ॥ कमयुतमवनत्या पूजियत्वा दशाईप्रभृतिगुरूजनान् तौ तत्र दत्ताशिषौ तैः। चिरविरइजमंतस्तापमस्तं सयोगप्रथमसिललधारासंगतौ निन्यतुस्तं ॥ ४९ ॥ वसुनिभवसुदेवो देवकी चात्मजस्य प्रशमितरिषुवहेवीक्ष्य विश्रव्धमास्यं। सुखमतुलमगातामेकनासा च कन्या भुवि सुतसहजानां संप्रयोगः सुखाय ॥ ५० ॥ गतनिगलकलंकः कंसशंकाविम्रक्तश्चिरविरहकुशांगं राज्यलक्ष्मीकलत्रं। यदुनिवहनियोगादुग्रसेनस्तदानीमभजत मथुरायां कंसमाथिप्रदत्तं ॥ ५१ ॥

स्वजननिजवधूनां क्रंदनाद्यैः सभावे श्रितवति लघु कंसेप्यंगसंस्कारमंत्यं । यदुषु कुपितचित्ताः प्राप्य जीवद्यशायां स्वकपितुरुपकंठे वाष्पसंरुद्धकंठा ॥ ५२ ॥ अथ गगनसमुद्रे मोद्रंगत्तरंगे त्वरितगतिरन्नामुद्रहन्मीनलीलां। खचरनृपतिद्तोऽलोकि लोकैः समस्तैः स्फुरितमणिविभूषो माथुरैरुन्मुखाब्जैः ॥ ५३ ॥ तनुविशददुकूलश्रंदनाद्रीकृतांगः स्फुट इव कलहंसो मानसस्थानसेवी। सुरसरितमिनाप्तो माथुरी सोऽथ रथ्यां दिशि दिशि धृतशोभां संचरद्राजहंसैः ॥ ५४ ॥ परिषदमथ दत्तद्वारपालप्रवेशो यदुभिरवहितात्मा भूषितां संप्रविश्य । कृतविनतिनिषण्णो विष्णुमूचेऽरिजिष्णुं प्रभुमवसरवेदी यादवानां समक्षं ॥ ५५ ॥ शृणु विनुतमराजा राजताद्रौ सुकेतुर्निमिवनिमकुलश्रीवैजयंतीसुकेतुः। अधिवसति रथं यो नूपुरं चक्रवालं पुरिमह नयदक्षो दक्षिणश्रेण्यधिष्ठं ॥ ५६ ॥ जलजरायनचापैस्त्वां परीक्ष्यामुनाहं तव निकटमिहाशु प्रेषितः प्रेमपूर्व । भज वरदृष्टतस्त्वं सत्यभामावरत्वं खचरभुवनभूत्ये सर्वकल्याणमूलं ॥ ५७ ॥ सकलयदुमनोइं दूतवाक्यं निशम्य प्रतिवचनपुरेंद्रोऽदादिति प्रीतचित्तः ।

खगधनपतिस्रष्टा रत्नशैले मिय द्राक् निपततु वसुधारा सत्यभामाभिधाना ॥ ५८ ॥ प्रतिविहितसुपूजः खेचरेंद्रस्य द्तः प्रमुद्तिमतिरित्वा स्वास्पदं स्वामिनेऽसौ । वरगुण जुतिपूर्वं सर्वकार्यस्य सिद्धिं समभणदिति तेषां तोषणे सिप्रयाय ॥ ५९॥ भूवि हरबलदेवौ आतरौ आजमानौ प्रतिहतपरतेजोरूपकांती विदित्वा। निजवचनहरास्यात्खेचरेंद्रः सुकेतुः खचरप-रतिमालश्रागतौ कन्यकाभ्यां ॥ ६० ॥ रतिमिव रतिमालो रूपतो रेवतीं स्वां दृहितरमतिकांतां देहजां ज्यायसेऽदात्। अतिमुदितसुकेतुः सत्यभामां प्रभायाः स्वयमुपपदवस्या गर्भजां केशवाय ॥ ६१ ॥ क्रचकलशकलत्रोदारभारातिखिन्नाः शिथिलवसनकांचीकेशपासोत्तरीयाः। ननृतुरिह विवाहे नृपुरारावरम्याः क्षितिचरखचराणां योषितः शोचिवेषाः ॥ ६२ ॥ मथमनववधुको नीलपीतांबरो तो विविधमाणिविभूपाज्योतिरुद्धासितांगौ । यदुनृपतिपरीतौ वीक्ष्य पुत्रावतोषीद्यदुयुवितसमग्रा रोहिणी देवकी च ॥ ६३ ॥ प्रथममदनरंगे शार्ङ्गिः सत्यभामा हृदयमहरदिष्टा रेवती शीरपाणेः। गुणितगुणकलानां सुप्रयोगौ तयोस्तावुचितकरणकाले न स्खलंति प्रगल्भाः ॥ ६४ ॥ हरिवंशपुराणं ।

अथ सक्छशभावा सा जरासंधराजं जलनिधिमिव वेला व्याकुला क्षोभयंती। अतिवितततमाला नीलकेशाप्यरोदीद्यदुकुलकृतदोषं कंसयोषिद्रदंती ॥ ६५ ॥ त्विय सकलधरित्रीं शासित ध्वस्तनाथा कथमहम्पयाता तात वैधव्यदुःखं । इदमपि खुल सोढं वैरनिर्यातनार्थं मद्मुदितयद्गां रक्तपंकैः शिरोभिः ॥ ६६ ॥ द्रितृरिति विलापप्रायमाकर्ण्य वाक्यं नरपतिरुद्वोचन्मुंच बालेऽतिशोकं। जगति हि भवितव्यं भाविनो दैवयोगाद्गाणितपरवीर्यं दैवमत्र प्रधानं ॥ ६७ ॥ पशुरिप निरपायं निर्गमोपायमार्गं विमृशति वधशंकः क्षेत्रमादौ विविक्षः। स्फुटमिद्मपि वृत्तं विस्मृतं मर्तुकापैस्तव पतिमतिमत्तैयदिवैर्मारयद्भिः ॥ ६८ ॥ तव पदशरणाशाकंटका यद्यपि स्युः सहबलकुलशाखास्ते तथाप्याशु वत्से । श्रुतिपथमतिमत्ताः संति मन्क्रोधवर्षद्वदहनशिखाभिर्भिस्मता ध्वस्तसंज्ञाः ॥ ६९ ॥ त्रियवचनपयोभिर्देहजाक्रोधविह प्रतितमुपशमय्य धुब्धकोपानलः सः। यवननिधनकालं कालकल्पं तनूजं यदुजनिधनहेतोरादिदेशाशु राजा ॥ ७० ॥ चलजलिधसमानेनाभ्यमित्रं बलेन द्विपचतुरतुरंगस्यंदनाद्येन गत्वा।

स लघु दश च सप्त व्युग्रयुद्धानि युद्धा यदुमिरतुलमालावर्तशैले ननाश ॥ ७१ ॥ पुनरिप जितजेयं भ्रातरं मागधो द्वागजितमपरपूर्वं प्राहिणोत्प्राणतुल्यं । प्रलयशिखिशिखालीघस्मरः स स्वयोगात्स्वबलपवननुन्नो द्विद्जगद्ग्रासलोलः ॥ ७२ ॥ तुमुलरणशतानि त्रीणि संप्रीणितास्ते यदुमिरीरषु चत्वारिशतं षट् च युद्धा । श्रमनुद्दिष वीरशे वीरशय्यां यशस्वी हरिश्रसमुखपीतप्राणसारोऽध्यशेत ॥ ७३ ॥ प्रमदमथ वहंतः संततं संवैहंतो हरिरिपुमथुरायां माथुरैः पौरलोकैः । हरिहलधरवीरावार्यवीर्यावलेपप्रतिहतरिपुशंका शौरयो रेमिरेऽमी ॥ ७४ ॥

शमयति रिपुलोकोदारदावावलेपं जनयति जनबंधुर्बंधुलोकप्रहर्षे । जिनमतघनचर्यावारिधाराततिर्भूवलयफलसमृद्धिः श्रीयशोमालिनीयं ॥ ७५ ॥

इति अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ कंसापराजितवधवर्णनो नाम षट्त्रिशः सर्गः।

१ ' वंशहेतोः ' इति ख पुस्तके ।

सप्तत्रिंशः सर्गः ।

अथात्र यद्वृत्तमतीव पावनं पुरैव तु श्रेणिक लोकहर्षणं । दशाहिमुख्यस्य सुसौर्यवासिनः शृणु प्रवक्ष्येऽवहितस्तदद्भुतं ॥ १ ॥ जिनस्य नेमेस्निदिवावतारतः पुरैव षण्मासपुरस्सराः सुरैः। प्रवर्तिता तज्जननावीधर्गृहे हिरण्यवृष्टिः पुरुहृतशासनात् ॥ २ ॥ तया पतंत्या वसुधारयार्धभाक् त्रिकोटिसंख्यापरिमाणया जगत्। प्रतर्पितं प्रत्यहमर्थि सर्वतः क पात्रभेदोऽस्ति धनप्रवर्षिणां ॥ ३ ॥ दिशां मुखेभ्यः समितास्तदाश्रिताः दिशां कुमार्यः परिचर्यया शिवां । दिशां च चक्रस्य जयं जगत्त्रये दिशंत्यपत्येन जिनेन जिष्णुना ॥ ४ ॥ समेत्य पत्यातिशयप्रदर्शनादतीव संहृष्टमतिः शिवान्यदा ! दद्शे सा स्वम इमात्रिशांतरे प्रशंसितान स्वप्नवरान् हि पोड्य ॥ ५ ॥ समंततोऽश्रांतमदांबुनिर्झरः प्रतिष्वनिन्याप्तदिगिद्रपो द्विपः ।

हरिवंशपुराणं । तया तमालासितभूंगझंकृतिरलोकि कैलाश इवाचलोचेलः ॥ ६ ॥ मुर्श्रगमुत्तुंगककुत्स्वनत्खुरं प्रलंबसास्नायतबालधींक्षणं । सितं घनोद्रिकितधीरमंबिका-महोक्षमाक्षिप्रियमैक्षत क्षणं ॥ ७ ॥ विलंबितक्ष्माभृतमग्रशैलगं मृंगांकलेखांकुशदंष्ट्रमायतं । दिगंतविश्रांत निनादमाविशत्-शरत्पयोदाभिमभारिमैक्षत ॥ ८ ॥ महेमकुंभाभकुचामिभैः शुभैः कृताभिषेकां कुटगंधवारिभिः। कैरश्रितांभोजपुटां ददर्श सा विकासिपद्मासनवार्तिनीं श्रियं ॥ ९ ॥

स्रजी प्रलंबे विमलांबरे वरे रजीरुणीभृतपडं घिमंडले। भुजे निजे वा कुसुमातिकोमले सजागरे वावहिता व्यलोकत ॥ १० ॥ निरस्य नेशं निशितैरुपागतं करैस्तमोजालमलं निशाकरं।

निरिभिते च्योम्नि प्रपञ्यतिसम सा स्थिरादृहासं रजनीवरिस्तयाः ॥ ११ ॥ दिनं दिनं दृश्यमुखं दिवाकरं सुसाध्यसिंदूरपरागपिंजरं।

१ चळाचळ: इति ख ग पुस्तकयोः । २ करोद्धृताम्भोजपुटां इति ख पुस्तके ।

पुरंदराशासु पुरंत्रिनंदनं चिरं घृतं दृष्टिसुखं ददर्श सा ॥ १२ ॥ तिडचलांगं सरसीवरांगनाविलोलसङ्घोचनयुग्ममायतं । परस्परस्नेहभरं तयारमद् व्यलेकि सन्मत्स्ययुगं विमत्सरं ॥ १३ ॥ सुसौरभांभोभरकुंभयुग्मकं पुखावहितांभोरुहमंबुजेक्षणा । सुशातकुंभात्मकमभ्यलोकत स्वभावसोद्यतकुचकुंभसिन्भं।। १४॥ शुभांबुपूर्ण जलपुष्पराजितं सुराजहंसादिविहंगसंगतं। महासरोऽद्शि ततो मनोहरं मनो निजं वा शुचिनिर्मलं तया ॥ १५ ॥ प्रवृणितोत्तंगतरंगभंगुरं प्रवालमुक्तामणिपुष्पशोभितं । महार्णवं फेनिलमुद्धतं भ्रमद्भिभीषणग्राहगृहं निरैक्षत ॥ १६ ॥ नखाग्रदंष्ट्रादढदष्टिभासुरज्वलत्सटाटोपमृगेंद्रधारितं । मणिप्रभारंजितदिग्वधूमुखं ददर्श सिंहासनमासनं श्रियः ॥ १७ ॥ विचित्रभक्तिद्विजकोटिसंचलं सुवैजयंतीभुजमालयानटत्। प्रलंबमुक्तामणिमालिकोज्ज्वलं विमानमालोकि तया नमस्तले ॥ १८ ॥ फणामणिद्योतविभिन्नभूतमः फणींद्रकन्याकलगीतसंकुलं। ज्वलन्मणि प्रैक्षि भुवः समुद्रतं फणींद्रभास्वद्भवनं महत्तया ॥ १९॥ सपद्मरागोज्ज्वलवज्जपूर्वकं प्रकृष्टमाणिक्यमहाशिखाकुलं। व्यलोकतेंद्रायुधरुद्धदिङ्गुखं सुरत्नराशिं गगनस्पृशं शुभा ॥ २० ॥ शिखाकरालं शिखिनं मुखं दिशां प्रकाशयंतं शुचि रोचिषां निशि। दद्श संदर्शितसौम्यविग्रहं सविग्रहा श्रीरिव तोषपोषिणी ॥ २१ ॥ अनंतरं स्वप्नगणस्य कंपयन् सुरासनान्याविश्वदंविकाननं । सितेमरूपो भगवान् दिवश्युतः प्रकाशयन् कार्तिकशुक्कषष्ठिकं ॥ २२ ॥ प्रनः प्रनर्जागरणेन सांतराननंतरायानिति तान्विलोक्य सा । विनिद्रनेत्रा जयगीतमंगलैरनालमा तल्पतलं ततोऽत्यजत् ॥ २३ ॥ प्रभातकाले कृतमंगलांगिका कुत्रूहलादेत्य पतिं प्रणामिनी । क्रमेण तान् स्वप्नवरान्न्यवेदयत् प्रसन्नधीरित्यगदीत्स तत्फलं ॥ २४ ॥

प्रिये यदुत्पत्तिमियं वदत्यहर्दिनं पतंती वसुवृष्टिरद्भुता। सुदिक्कुमार्यो भवतीमुपासते यदर्थमास्थात्स हि सोद्य तीर्थकृत् ॥ २५ ॥ किमत्र ते स्वप्नफलं निगद्यते वरोरु यत्तीर्थकरप्रसूरिस । प्रपत्स्यते सोऽपि महान महीयसां जगत्त्रये यत्तदवैहि कथ्यते ॥ २६ ॥ अनेकपोऽनेकपलोकनादलं विलंबितानेकपविभ्रमो गतैः। जगत्त्रये ते तनयस्तनुद्दि प्रकाममेकाधिपतित्वमेष्यति ॥ २७ ॥ अलंकरिष्यत्यकलंकधीः कुलं जगत्त्रयं चात्र जगदूरुर्गुणैः। गवां कुलं वा वृषभो वृषेक्षणाद्वृषेक्षणः स्कंधपृतिः सुतस्तव ॥ २८ ॥ महावलेपानिखलाननेकपान्करिष्यते सिंहवदु ज्झितोन्मदान् । अनंतवीर्यः स हि सिंहदर्शनात् महैकधीरोंऽततपोवनेश्वरः ॥ २९ ॥ यदैक्षि लक्ष्मीरभिषेकिणी ततः प्रसृतमात्रस्य गिरींद्रमस्तके । सुरासुरेंद्रेर्दियितेऽभिषिच्यते गिरिस्थिरः श्वीरसमुद्रवारिभिः ॥ ३० ॥ स्जोः सुगंधायतयोः प्रदर्शनाज्जगत्रयन्यापियज्ञाः सुगंधिमाक् ।

निरंतरं लोकमलोकमप्यसावनंतदुःज्ञानदृशा तनिष्यति ॥ ३१ ॥ स चंद्रसंदर्शनतः सुदर्शने महोदयाचंद्रिकया सुदर्शनः । जिनेंद्रचंद्रो जगतां तमोंऽतकृत्रिरंतराह्लादकरो भविष्यति ॥ ३२ ॥ समस्ततेजस्विजनस्य भूयसा निजेन तेजांमि विजित्य तेजसा । जगंति तेजोनिधिरर्कदर्शनात्करिष्यति ध्वस्ततमांसि ते सुतः ॥ ३३ ॥ सुखं कृतक्रीडझषद्वयेक्षणादवाष्य सौरूयं विषयोपयोगजं। अनंतमंते सुखमाप्स्यति ध्रुवं शिवालयेऽसौ शिवदेवि ! नंदनः ॥ ३४ ॥ सुपूर्णकुंभद्वयदर्शनात्ततो गृहं प्रपूर्णं निधिभिभविष्यति । जगन्धदापूर्णमनोरथस्य हि प्रभावतस्तस्य शरीरजस्य ते ॥ ३५ ॥ विचित्रपुष्पांबुजखंडदर्शनादशेषसह्रक्षणलक्षितः सुतः। विदाहितृष्णातृषितान्वितृष्णधीरिहैंच निर्वाणमयान् करिष्यति ॥ ३६॥ महासमुद्रस्य महामृतात्मनः समुद्रगंभीरमतिविछोकनात् । श्रुतांबुधिनीतिमहासरिद्धितं स पायिष्यत्युपदेशकृज्जनान् ॥ ३७ ॥

सुरत्नसिंहासनद्र्भनेन स स्फुरन्मणिद्योविशिरीटपाणिभिः। परीतमारोक्ष्यति देवदानवैः परार्घ्यसिंहासनमृर्ध्वशासनः ॥ ३८॥ विमाननाथोऽमरनाथकोटिभिः प्रपूजितांघिः सुविमानदर्शनात् । विमानसाधिः महतो महोदयो विमानमुख्यादवतीर्णवानिह ॥ ३९ ॥ भवेतु भेत्ता भवपंजरस्य स फणींद्रनिर्यद्भवनावलोकनात्। सुतोन्वितश्रापि मतिश्रुताविषप्रधाननेत्रत्रितयेन जायते ॥ ४० ॥ बहुप्रकारस्फुरदंशुरंजितं द्युरत्नराशिप्रविलोकनात्सुतं । प्रतीहि नानागुणरत्नराशिना अधिष्यमाणं शरणाश्रिताश्रयं ॥ ४१ ॥ शिखावलीलीढनभस्तलोज्वलात्प्रदक्षिणावर्तविधूमवीन्हतः । निरीक्षिताद्ध्यानमहाहुताशनः स कर्मकक्षं सकलं प्रथक्ष्यति ॥ ४२ ॥ किरीटसत्कुंडलपूर्वभूषणाः प्रभावतस्तस्य मदीयशासनं । अलंकरिष्यत्यनुकूलसेवकाः सुरेश्वराः प्राकृतपार्थिवा इव ॥ ४३ ॥

श्रथात्मधिम्मळ्ळसिक्वजस्यः समेखळानूपुरमंजुशिजिताः ।

प्रसाधनादावनुभावतोस्य ते सुरेंद्रसुंद्ये उपासनोद्यताः ॥ ४४ ॥
जिनष्यमाणेन जिनेंद्रभानुना प्रतीहि तेनात्र पित्रकर्मणा ।
स्ववंशमात्मानिममं च मां जगत्पितितितं भूषितसुद्धतं तथा ॥ ४५ ॥
निशम्य सा स्वप्नफलं पतीरितं प्रतुष्टिचत्ता सुतमंकवर्तिनं ।
विचित्य चके जिनपूजनादिकाः क्रियाः प्रशस्ता जनतामनोहराः ॥ ४६ ॥
जिनोद्धवे स्थप्नफल।नुकर्तिनं पित्रसुस्तोत्रमिदं दिने दिने ।
प्रभातसंध्यासमय पठन् जनः स्मरंश्च शृष्यन् श्रयते जिनश्चियं ॥ ४७ ॥
इत्यादिनोमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य क्रतौ स्वप्नफलकथनो नाम सप्तित्रंशः सर्गः ।

अष्टत्रिंदाः सर्गः ।

जिनंद्रिपतरौ ततो धनपतिः सुरेंद्राज्ञया स्वभक्तिभरतोऽपि च स्वयसुदेत्य तीर्थोदकैः । शुभैः समभिषिच्य तौ सुरिभपारिजातोद्भवैः सुगंधवरभूषणैर्भुवनदुर्रुभैः प्रार्चयद् ॥ १ ॥

पुरैव परिशोधित विदितदिक्कुमारीगणैर्बभार विमलोदरे प्रथमगर्भमुद्यत्त्रमं। स्वबंधुजनसिंधुवृद्धिकरमस्ततापादयं शिवाय जगतां शिवा शशिनमंबरश्रीरिव ॥ २ ॥ चकार न वियोजितत्रिवलिभंगशोभामसौ न च श्वसनवाधिताधरसुपछ्वं वालसां। स्तनस्तवकभारनम्रतनुमध्यमुस्रीलतां नितांतकृषयेव तां फलभरो न चावाधत ॥ ३ ॥ निगृद्दनिजगर्भसंभवतनोरिव व्यक्तये पयोधरभरो ययावतितरां पयःपूर्णतां । तदुद्धहनगौरवादिव विशेषविस्तीर्णतां जगाम जघनस्थली निविडमेखलाषंधना ॥ ४ ॥ मनोभुवनरक्षणे सकलतत्त्वसंवीक्षणे वचोऽपि हितभाषणे निख्लिसंशयोत्पेषणे। वपुर्वतिवभूषणे विनयपोषणे चोचितं बभूव जिनवैभवादतितरां शिवायास्तदा ॥ ५ ॥ महामृतरसाशनैः सुरवधूभिरापादितैरनंतगुणकांतिवीर्यकरणैः समास्वादितैः। जिनेंद्रजननीतनुस्तनुरिप प्रभाभिर्दिशो दशापि कनकप्रभा विद्धतीव विद्युद्वभौ ॥ ६ ॥ करींद्रमकरस्फुरचुरगतुंगमीनावली महारथसुयानपात्रनृपवाहिनीसन्धुखैः। विशद्भिरनुकूलगैः समिवधितोद्धोर्मिभिः समुद्रविजयोऽन्वहं पृथु समुद्रलीलां वहन् ॥ ७॥ जिनेशजनको जगद्वलयोग्यर्चितो परस्परविवर्धमानपृथुसम्मदौ नित्यशः।

महेंद्रवरशासनाभिरतदेवदेवीकृतप्रभूतिविभवान्वितौ गमयतः सम मासान्तव ॥ ८॥ ततः कृतसुसंगमे निशि निशाकरे चित्रया प्रशस्तसमवस्थिते ग्रहगणे समस्ते शुमे । असूत तनयं शिवा शिवदशुद्धशुच्यग्रज-त्रयोदशतिथौ जगज्जयनकारिणं हारिणं ॥ ९ ॥ त्रिबोधशुचिचधुषा दशशताष्ट्रसृष्ठक्षणेः मुलक्षितसुनीलनीरजवपुर्वपुर्विभ्रता । जिनन जिनरोचिषा बहुगुणीकृतं मंडलं प्रसृतिभवने।परे मणिगणप्रदीपार्चिषां ॥ १०॥ विपांडरपयोधरां दिवमखंडचंद्राननां निश्चि स्फुरिततारकानिकरमंडनाहारिणीं। तरंगभ्रजपंजरोदरविवर्तिनीं स्वेच्छया चुचुंब मदनांबुधिः सति जिनेंद्रचंद्रोदये ॥ ११॥ गभीरगिरिराजनाभिक्कशैलकंठाकुलस्तनोच्छ्रलद्वाहिनी निवहहारभाराधरा । चचाल कृतनर्तनेव मुदितात्र जंबूमती समुद्रवलयांवरा रिणतवेदिकामेखला ॥ १२ ॥ अनुत्तरमुखोज्वलः शिवपदोत्तमांगस्तदा नवानुदिशसद्धनुनेवविमानकग्रीवकः। मुकल्पवपुरंतराधरजगत्कटीजंघकिस्त्रलोकपुरुषोऽचलत्किटकरो नटित्वा स्फुटं ॥ १३ ॥ अभूद्भवनवासिनां जगति तारशंखस्वनो रराट पटहः पदुर्झटिति भौमलोकेऽखिले । रवेर्जगति सिंहनाद उरुघोषघंटानदत्सुकल्पभवने जिनप्रभववैभवाद्वै स्वयं ॥ १४ ॥

जगत्रितयवासिनश्रलितमौलिसिहासनास्ततोऽसुरसुराधिषाः प्रणहितावधिस्वेक्षणाः । प्रबुध्य जिनजन्मजातपुरुसम्मदाः संपदा प्रचेलुरिह भारतं प्रति चतुर्णिकाँयामरैः ॥ १५ ॥ विशुद्धतमदृष्ट्यो मुकुटकोटिसंघटित--स्फुरत्कटकरत्नरिमखचिताखिलाशामुखाः। प्रणेग्ररहमिद्रदेवनिवहास्त तत्र स्थिताः पदान्यभिसमेत्य सप्त हरिविष्टरेभ्यो जिनं ॥ १६ ॥ क्षितरसुरनागविद्यदनलानिलद्वीपसत्सुपर्णसुमहोदाधिस्तनितदिक्कुमाराभिधाः । समुद्ययुरितस्ततो भवनवासिनो भास्वरास्तदा विद्धतो दिशो दश दशप्रकारामराः ॥ १७ ॥ सुकिंपुरुषिकन्नरामरमहोरगा राक्षसाः पिञाचसुरभूरिभूतवरयक्षगंधर्वकाः। मनाहरणदक्षगीतबहुनृत्ययुक्तांगनाः समीयुरिह मध्यलोकरतयोऽष्टधा व्यंतराः ॥ १८ ॥ गणाश्च श्चिचरोचिषां प्रथितपंचधाज्योतिषां ग्रहक्षेत्रशिभास्करप्रतततारकाख्यायुषां । बभौ युगपदापतिन्नजिवमानकेभ्योऽधिकं विधातुमिव चोद्यतो जगदिहापरं ज्योतिषां ॥ १९ ॥ यथास्वमि सप्तभिः प्रथमकल्पनाथादयोऽप्यनीकनिवहैर्वृता युगपदच्युतेंद्रोत्तराः । प्रतिस्वमि सप्तभिः सकलकल्पजैः षोडश प्रमोदवशवर्तिनः समिभजग्मुरिद्राः सुरैः ॥ २० ॥

१ चतुर्निकायाः सुराः इति क पुस्तके ।

अनेकमुखदत्तसत्कमलखंडपत्रावलीसुरूपसुरसुंदरीललितनाटकोद्धासिनं । हिमाद्रिमिव जंगमं निजवधूभिरैरावतं करींद्रमधिरूढवानभिरराज सौधर्मपः॥ २१॥ अनीकमथ योधजं रचितसप्तेकक्षांतरं गृहीतवलयाकृतिप्रकृतिपौरुषाधिष्ठितं । परीत्य कुलिशायुधं कुलिशपूर्वशस्त्राटवीनिरुद्धगगनांतरं भृशमशोभत त्रैदशं ॥ २२ ॥ जवेन लघु लंघयद्वतममीरणं हेषितप्रयोजितवियोजितित्रभुवनांतरालं तथा। वृहद्भहिरवर्तत प्रविततं हयानीकैमप्यरं गगनवारिधेरधितरंगरंगायितं ॥ २३ ॥ सुपुग्धमुखकौशिकेर्नयनपुंडरीकेर्निजैललत्ककुद्वालधिश्रुतिसुगात्रसास्नापुटैः । सुवर्णस्वरश्रंगकैः प्रतिवृषं वृषानीकमप्युवाह परितःस्थितं विपुलकांतिमिंदुप्रमां ॥ २४ ॥ विभिन्नमपि सप्तधा स्वयमभेद्यमप्यद्विभिनभोवलयसागरे त्रिद्शयानपात्रायितं। प्रमावाजतविस्फुरद्रविरथं रथानीकमप्यभादतिमनोहरं वलयवत्परिक्षेपकं ॥ २५ ॥ विकीर्णघनशीकरैः करिभिरूर्ध्वलीलाकरैः प्रवृत्तगुरुगर्जितैर्गुरुतरैरिवांमोघरैः। महामरुद्धिष्ठितैः सुघटितं गजानीकमप्यनेकरचनांतरं व्यतनुत श्रियं प्रावृषः ॥ २६ ॥

१- ' हयानीकपं परं गगनवारिधेः ' इति क पुस्तके ।

स्वरैरपि च सप्तिमिधुरमूर्छनाकोमलैः सवीणवरवंशतालरवामिश्रितैराश्रितैः। अपूर्णभुवनोपरं बहिरतोप्यनीकं बभौ युवत्यमरबंधुरं धृतिकरं तु गंधर्वजं ॥ २७ ॥ समस्तरसपुष्टिकं बलमहारिगात्रोत्करैः मनःकुसुममंजरीरमरभूरुहामाहरत्। प्रनृत्य पुरुनर्तकीमयमनीकमप्यंबरैनितंबभरमंथरं निचितमाविरासीत्तथा ॥ २८ ॥ सहस्रगुणितोदिता चतुरशीतिरेषु स्फुटं प्रमाणिप सप्तसु प्रथमसप्तकक्षास्वतः। परं द्विगुणमेतदेव सफलेषु कक्षांतरेष्वनीकवलयेष्वियं क्रमभिदा समाप्तेः स्थितिः ॥ २९ ॥ यथापथमनीकिनः सकलनाकलोकाधिपा जिनेंद्रजननाभिषेककरुणाय यावद्वियत्। वितत्य पुरमात्रजंति मुदितास्तु तानि इशां कुमार्य उपकुर्वते निखिलजातकर्माद्दताः ॥ ३० ॥ तथाहि विजया स्मृता जगित वैजयंती परा परोक्तिरपराजिता प्रविदता जयंती परा । तथैव सह नंदया भवति चापरानंदया सनद्यभिधवर्धनां हृदयनंदिनंदोत्तरा ॥ ३१ ॥ क्रचानिव निजानिमा विगलदंगशृंगारसद्रसेन भरितान् भृंशं विपुलतुंगभृंगारकान् । समृहुरभिरामकानमलहारभारोज्वला ज्वलन्मणिविभूषणश्रवणकुंडलोद्धासिताः ॥ ३२ ॥ तथैव सयशोधरा प्रथितसुप्रबुद्धामरी सुकीर्तिरिए सुस्थिता प्रणिधरत्र लक्ष्मीमती।

विचित्रगुणचित्रया सह वसुंधरा चाप्यमूः गृहीतमणिदर्पणा दिश इवेंद्रमत्यो बभुः ॥ ३३ ॥ इला नवमिकासुरासाहितपीठपद्मावती तथैव पृथिवी परप्रवरकांचना चंद्रिका। प्रभारफुटिततारकाभरणभूषिता भारवराः सचंद्ररजनीनिभा धृतसितातपत्रा बग्धः ॥ ३४ ॥ श्रिया च धृतिराश्या च वरवारुणी पुंडरीकिणी स्फुरदलंबुसा च सह मिश्रकेशी हिया। सचामरकरा इमा बभुरुदारफेनावलीतरंगकुलसंकुला इव कुलापगाः संगताः ॥ ३५ ॥ कनत्कनकचित्रया सहितया पुनश्चित्रया त्रिलोकसुरविश्वतत्रिशिरसा च स्त्रामणिः। कुमार्य इव विद्युतो विलिसितैजिनस्यांतिके तमोनुद इवाबभुर्जलधरस्य विद्युक्तताः ॥ ३६ ॥ सहैव रुचकपभा रुचकया तद्ध्यासया परा च रुचकोज्वला सकलविद्यद्र्येसराः। दिशां च विजयादयो युवतयश्रतस्रो वरा जिनस्य विद्धः परं सविधि जातकर्मश्रिताः॥ ३७॥ चतुर्विधसुरासुरा लघु समेत्य तावत्पुरं कुबेरजीनताद्भतप्रथमशोभमुचैध्वजं। परीत्य जिनभक्तितस्त्रिदशनाथलोकश्रियं विजेतुमिव चोद्यतं दृहशुराहताः सेंद्रकाः ॥ ३८ ॥ प्रविक्य नगरं ततः शतमखः स्वयं सत्सखः शिवास्पदसमीपगः स्थितिविदादिदेशादृतां ।

शचीं शुचिमचापलां समुपनेतुमीशं शिशुं प्रसूतिगृहमाविश्विति तदा बभासादरा ॥ ३९ ॥ विकृत्य सुरमायया शिशुमिहापरं निद्रया प्रयोज्य जिनमातरं प्रणातिपूर्वकं यत्नतः । प्रगृह्य मृदुपाणिना शिशुमदादसौ स्वामिने प्रणम्य शिरसा ददावमरराट् कराभ्यां जिनं ॥४०॥ जिनेंद्रमुखचंद्रकं विजितपुंडरीकेक्षणं विशेषविजितासितात्पलवनश्रियं तं श्रिया । निरीक्ष्य जिनपद्मपाणिचरणं सहस्रेक्षणः सहस्रगणनेक्षणैरपि ययौ न तृप्तिं तदा ॥ ४१ ॥ विधाय स सुरद्विपस्फाटिकभूभूतो मस्तके जिनेंद्रशिशुमिंद्रनीलमणितुंगचूडामणि । चचाल चलचामरातपनिवारणोचैरुचिश्वलोर्मिकुलसंकुलो जलनिधिर्यथा फेनिलः ॥ ४२ ॥ सुरेभवदनित्रके दश्गुणे द्वयोश्वाष्ट ते रदाः प्रतिरदं सरः सरिस पाद्मिनी तत्र च। भवंति मुखसंख्यया सहितपद्मपत्राण्यपि प्रशस्तरसभाविताः प्रतिद्लं नटंत्यप्सराः ॥ ४३ ॥ तथाविधविभूतिभिः समुपगम्य मेरुं मुराः परीत्य पृथु पांडुकारूयवनखंडमभ्येत्य ते । जिनेंद्रमतिरुद्रेपांडुकशिलातले कोमले सुपंचशतकार्मुकोचहरिविष्टरेऽतिष्ठपन् ॥ ४४ ॥ ततश्च धृतपूजनोपकरणेषु देवांगनागणेषु परितःस्थितेष्वभिनवोत्सवानंदिषु।

१ मुदितचापलां इति क पुस्तके।

नटत्सु कुतपोत्कटप्रकटनाटकेषु स्फुटप्रकृष्ट्रसभावहावलयरांजितस्वर्गिषु ॥ ४५ ॥ रटत्पटहशंखशब्दहरिनादभेरीरवैगिरींद्रसुवृहद्गुहाप्रतिनिनादसंवर्धितैः । दिगंतरविसर्पिभिर्जिनगुणैरिवप्रस्फुटैरशेषभुवनोदरे श्रुतिसुखावहैः पूरिते ॥ ४६ ॥ नभस्तलमितस्ततस्थगयति स्फुरत्सौरभे विचित्रपटवासधूपपटले सुपुष्पोत्करे । मुगंधयति बंधुरे परमगंधहृद्ये दिशां मुखानि मुखपांडुकप्रभवमातरिष्वन्यलं ॥ ४७॥ गृहीतबहुविग्रहः सुरपरिग्रहो वासवः समारभत भक्तितो जिनमहाभिषेकं स्वयं। विधातममराहतैस्तु मणिहमकुंभच्युतैः पयोमयपयोनिधेः शुभपयोभिरुद्गांधिभिः॥४८॥ बहुत्रिदशपंक्तिभिः प्रमदपूरिताभिर्नभः स्फुरन्मणिगणोज्वलत्कलशपाणिभिः सर्वतः। सुमेरुगिरि पंचमांबुनिधिमध्यमध्यासितं रराज बहुरज्जुभिस्तदवनीयमानं तदा ॥ ४९ ॥ गृहाण कलशं लघु क्षिप नयाशु संधारय प्रभुं च मम सन्मुखं त्विमिति कर्णरम्यारबैः। करात्करमितस्ततः सुरगणस्य कुंभावली श्रिया श्रयति पांडुकं वनमिवोरुहंसावली ॥ ५० ॥ सुवर्णमयह्रपकांतिमयकुंभकाल्यो बभुः प्रवेगमरतां वशा रविशशांकमाला यथा। सुपक्षपुंटदीप्तिमिः खिचति दिङ्ग्रुखा खे रयोत्पतद्गरुडहंसपंक्तय इव यथानेकशः ॥ ५१ ॥

श्वताध्वरभुजोद्धृतैर्जलधरैरिवोद्गर्जितैः सहस्रगणनैर्घटैः शुचिषयोभिरावर्जितैः ।
जिनोऽभिषवमाष्नुयाद्धवलमद्विराजं व्यथाद्द्धाति धवलात्मतामधवलो हि शुद्धाश्रयात् ॥५२॥
सतोषमपरेऽपि ते निष्किककल्पनाथादयो यथेष्टमभिषेचनं विद्धुरंष्ठ्वभिनिर्मलैः ।
जिनस्य जिनशासनाधिगमशस्तरागोदयः प्रकाशिततनुरुहास्तनुतरात्मजन्माधयः ॥ ५३ ॥
ततः सुरपतिस्त्रियो जिनमुपेत्य शच्यादयः सुगंधितनुपूर्वकैर्मृदुकराः समुद्धर्तनं ।
प्रचकुरभिषेचनं शुभपयोभिरुचेघैटैः पयोधरभरैनिजिरिव समं समावर्जितैः ॥ ५४ ॥
दुकूलमणिभूषणस्नगनुलेपनोद्धासितं प्रयोज्य शुभपर्वतं विभुमारिष्टनेम्याख्यया ।
सुरासुरगणास्ततः स्तुतिभिरित्थमिद्राणसंग्रहे हिर्वशे जिनसेनाचार्यस्य दृतौ जन्माभिषेकवर्णनो नाम अष्टिश्चरः सर्गः ।

एकोनचत्वारिंदाः सर्गः ।

सकलश्चतमत्यवधिप्रविकासिविशुद्धविलासविनिद्र-विशिष्टविलोचनदृष्टिविदृष्टसमस्तचराचरतस्वजगतित्रतय ।

त्रितयात्मकदर्शनबोधचरित्रविनिर्मलरत्नविराजित-पूर्वभवोग्रतपोयुतपोडशकारणसंचिततीर्थकरप्रकृते ।। प्रकृतेः स्थितितोऽनुभवाच विशिष्टतराद्भतपुण्यमहोदय-मारुतवेगविचालितदेवनिकायकुलाचलसेवितपादयुग । युगमुख्यमुखांबुजदर्शनतृप्तिविवजित भन्यमध्वतधीर-तरस्तवनध्वनिबृंहितदुंदुभिनादनिवेदितशुद्धयशः ॥ यशसा धवलीकृतजन्मपवित्रितभारतवर्षमहाहरिवंश-महोदयशैलशिखामणिबालदिवाकरदीप्तिजितार्कवपुः। वपुषाधिककांतिभृताजितपूर्णश्रशांकविभो ! हरिनीतमणि-द्यतिमंडलमंडित दिङ्गुखमंडल नेमिजिनेंद्र! नमो भवते॥ भवतेह भुवां त्रितये भवता गुरुणा परमेश्वरविश्वजनीन-महेच्छिथया प्रतिपादितमप्रतिमप्रतिमारहितं हितमुक्तिपथं प्रथितं विधिवत् प्रतिपद्य विधायि तपोविविधं

विधिना प्रविध्य कुकर्ममलं सकलं भुवि मन्यजनः प्रणतः ।। प्रणतित्रिय ! संप्रति जन्मजरामरणामयभीममहाभवदुःख-समुद्रमपारमतीत्य समेष्यति मोक्षमशेषजगच्छिखरं । **शिखराग्रसमग्रगुणाश्रयसिद्धमहापरमेष्ठिमहोपच**यं प्रविदंति चयं मुनयः परमं पदमेकमिहाक्षरमात्महितं ॥ महितं महतां महदात्मगतं सततोदयमंतविवर्जितमूर्जित-सत्त्वसुखं प्रतिलभ्यमभव्यजनैः खुळु यत्र सुखं। सुखमत्र यदीश्वरविश्वजगत्त्रभुतात्रतिवुद्धमपि त्रिद-शेंद्रनरेंद्रपुरस्सरदेवमनुष्यविशेषमहाभ्युद्यप्रभवं ॥ प्रभवप्रलयस्थितिधर्मपदार्थनिरूपणनेपुणशासन तावकशासनसेवनयैव भविष्यति नान्यमताश्रयतः। श्रयतामिति निश्रयमेत्य भवंति भवत्यभिभृतिमति भवणाः सततं तनुभूतिवहा भुवि येऽत्र त एव जिनेंद्रकृतित्विमताः॥ प्रियसर्वहितार्थवचोविभवं विभवं सुरभीकृतदिग्विवरं वरसंहतिसंस्थितिरूपयुतं युतसर्वसुलक्षणपंक्तिरुचि । रुचिमत्पयसा समदेहरसं रसभावविदं मलमुक्ततनुं तनुजस्विद्हीनमनंततया ततया सहितं भुवि वीर्यतया ॥ यतयात्मधिया जितयात्मभुवं भुवमच्येतरां सुखसस्यभृतं भृतविश्व ! भवंतमनंतगुणं गुणकांक्षितया वयमीश नताः । योजनभूरिसइस्ननभोगं भोगकरत्वमिवाचलनाथं नाथ ! परं स्नपनासनिमद्धमिद्धमितः कुरुते क उदारः ॥ ईटशमीश विभुत्वममानं मानधनामरमानवमान्यं मान्यतमो अन्यतमो भुवि नाको नाकभवोऽपि जिनैति यथा त्वं।। शैशव एव जनतिगसत्व सत्वहितो भुवनत्रय नृतः

नूतनभक्तिभरेण नतानां तानव मानवसौ ख्यकर त्वं।।

१ मानस इति ख पुस्तके।

कामकरींद्रमृगेंद्र नमस्ते क्रोधमहाहिविराज नमस्ते मानमहीधरवज नमस्ते लोभमहावनदाव नमस्ते। ईश्वरताधरधीर नमस्ते विष्णुतया युत देव नमस्ते अईदचित्यपदेश नमस्ते ब्रह्मपथप्रतिबंध नमस्ते ॥ सत्यवचोनिवहैः सुरसंघा इत्यभिनुत्य जिनं प्रणिपत्य तारकप्रयमवाद्वरमेकं याचितवंत इनं वरबोधि। अथ मथितमहामृतांभोधिसंशुद्धपीयुषपिंडातिपानातिदोषाचिराञ्जीर्य-माणेष्विवोद्गीर्णमाणेषु तत्खंडखंडेषु शंखेषु खे खेदमुक्तैः सुरैस्तोष-पोषादनीयन्मनीपैर्भृशं पूर्यमाणेषु तद्यथा वाद्यमानोरुगंभीरभेरीमृदंगा नकादिप्रभूताततातोद्यशब्देषु संदत्तजैनेंद्रजनमाभिषेकोत्सवोद्घोषणायेव निक्शेष-लोकांतदिक्चक्रबालोत्तराक्रांतिमभ्युत्थितेषु प्रनृत्यत्सुविद्याधरत्रातदेवांगनातुंग-संगीतनादाभिरामातिशृंगारहास्याद्भुतोद्यद्रसोदारवारांगसत्वस्फुटाहार्यहायात्मिदिच्या-भिनेयप्रवृत्ताप्सरोवृंदबंधेषु सौधर्मकल्पाधिपःसंभ्रमाद्विश्रमश्राजमानोद्यदैरावतस्कंध-

मारोप्य संवृत्यधीरं जिनेंद्रं शितच्छत्रशोभं चलचामरालीभिरावीज्यमानं प्रगीतसाप्सरो लोकसंगीयमानातिशुद्धात्मकीर्ति चचालाचलेंद्रादनेकैरशेपैरशेषं नभोभागमापूर्वशं लैरलं याद्वेंद्रैर्पृगेंद्रेरिवाध्यासितं प्रथितविबुधनिकायैः पथि प्रस्थितैः स-प्रमोदैः प्रणामप्रणुतिप्रभीतिप्रयोगप्रवृत्तैर्यथायोगमभिनंद्यमानो महानंद मापादयत् पादपद्मोपसेवासनाथस्य नाथिस्त्रलोकामराधीशलोकस्य लोका तिवर्तिप्रवृत्तं परंपारमैश्वर्यमन्यद्भुतं संद्धानः शिवानंदनो नंद वर्धस्व जीवेति वेत्यादि पुण्याभिधानैस्तदा स्तूयमानः कुलाद्रिप्रस्तिप्रस्तच्छतोयापगा वीचिसंतानसंसर्गसीतान्मना भोगभूभूरुहाणां विचित्रप्रसूतप्रतानप्रसंगेन सौगंध्यमत्यद्भुतं विभ्रता संभ्रमणातिदूराच खेदापनोदार्थमभ्युत्थितनेव मित्रण गात्रानुकूलेन मंदानिलेन प्रभुस्तीर्थकृत्कोमलांगः समालिंग्यमानो मनोहा रिवाल्यानुरूपं वरोद्धासिभूपाविशेषोध्यमाल्योज्वलो बालकलपद्भमोद्दामशो-भातिशायी घनश्यामपूर्तिः सितोद्रंधिसचंदनेनोपदग्धस्फुरत्सांद्र चंद्रातपाश्चिष्टरुद्रेंद्रनीलाद्रिलक्ष्मीधरो देवसेनावृतः शीघ्रमुह्नंघ्य काष्ठा-

मुदीचिमधिष्ठानमात्मीयमुचैध्वेजत्रातवादित्रधीरध्वनिव्याप्तदिक् चक्र-वालां वरं दिव्यगंधांबुवर्षाभिषिक्ता पतत्युष्पवर्षोपरुद्धोरुरध्या यथा श्रीनिधानं निधानेन मांगल्यसंसंगिना चारुशार्य पुरं पापदैश्वर्यमाश्चर्यभूतं सुवि प्राकटं विश्वलोकस्य कुर्वनासौ नेमिनाथः शिशुमीशु(?)सुश्चियं शौरिसौर्य प्रजाशुं(सुं)भदंभोजिनीबालभास्वंतमुत्तुंगमातंगराजोत्तमांगस्थमादाय तं मातु-रुत्संगमानीय शकः स्वयं विकियाशिकयुक्तः सहस्रं भुजां भासुरांसस्थल-श्रीयुपां स प्रकृत्यपसायोक्सौंदर्यसंदर्भगर्भामरश्री (स्त्री) सहस्राणि चित्रं प्रनृत्यंति विभ्रद्भुजेष्वग्रतो यादवानां मुदा पश्यतां विश्वकाष्यस्य (१) धीशस्वलाभादंपि प्राज्यलामं हृदि ध्यायतां स्फारिताक्षं क्षणारब्धसत्तांडवाखंडवोभाष्रयो गान्वितं बाह्यजातिप्रतातप्रवृत्ताभिनेयं सभूक्षांभलीलं सदिचक्रभेदं सभूमि-प्रयातं महानंदसन्नाटकं राज्यदक्षो ननाट स्फुटीभूतनानारसोदारभावं ततोईदुरं देवराजः प्रणम्य प्रपूज्यान्यमत्यैरनध्यैरलभ्यैर्विभूषादिभि-भूषियत्वा जिनस्यामृताहारग्रुख्यं करांगुष्टके दक्षिणे न्यस्य रक्षानिमित्तं

865

वयस्यान् कुमारान् सुराणां सुरेंद्रः कुमारस्य सम्यग्निरूप्याप्रमत्तं क्ववेरं वयोभेदकाल त्योगं विभोः क्षेमयोग्यं विधेयं समस्तं त्वयेति स्थिरं ज्ञापियत्वा समापृच्छच जैनौ गुरू तावनुज्ञां ततः प्राप्तसंप्राप्तलाभः कृतार्थं निजं मन्यमाना यथायातमन्यैरशेषैः सुरेंद्रैश्रतुर्भेददेवानुगैर्यात— वान् सिद्धयात्रस्ततो दिक्कुमार्योऽपि संवृत्तकार्या समासाद्य तामार्यपुत्रीं सपुत्रां शिवां संप्रणम्य प्रहृष्टाः प्रजग्मुनिजस्थानदेशान् दिशस्ता दश द्योतयंत्यः शरीरप्रभाविजीगन्नेमिचंद्रोऽपि शुभ्रेर्गुणग्रामसांद्रांशुजालैः समाह्रादयन् बालभावेऽप्यबालिकयो लालितो बंधुवर्गामरैर्वधमानो रराज श्रिया । स्तवनमिदमरिष्टनेमीश्वरस्येष्टजन्माभिषेकाभिसंबंधमाक्रांतलोकत्रयाति-प्रभावस्य पापापनोदस्य पुण्यैकमार्गस्य संसारसारम्य मोक्षोपकंठस्य भन्यप्रजानां प्रमोदस्य कर्तुः प्रमादस्य हर्तुर्धर्मस्योपनेतुर्भुदा श्रूयमाणस्य स्मर्थमाणस्य च संकीर्यमानस्य संकीर्तनं पट्टयमानं समाकण्यमानं सदा चित्यमानं सम्यक्त्वज्ञानचारित्ररत्नत्रयस्याभिसंपत्करं चैनं शारीर-

सौरुयप्रदं शांतिकं पौष्टिकं तुष्टिसंपत्तिसंपादि साक्षादिहामुत्र चानेककल्याण-संप्राप्तिहेतोः प्रपुष्यास्त्रवस्य स्वयं कारणं वारणं सर्व पापाश्रवाणां सहस्रस्य विध्वंसकरणं दारुणस्यापि पूर्वत्र सर्वत्र चानेहासि स्नेहमोदिभावेत संचितस्यैनसः स्तोत्रमुख्यं जिनेंद्रे विधेयादिदं भक्तिभारं परं। इति अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ जन्माभिषेकवर्णनो नाम एकोनचत्वारिशः संगः।

चत्वारिंशः सर्गः ।

अथ श्रुत्वा जरासंघो भातुर्वधमसौ मृघे । शोकसिंघौ निमग्नोऽरिक्रोधपोतेन धारितः ॥१॥ समस्तयदुनाशाय समस्तनयपौरुषः । सोऽभ्यमित्रमभीगतुं मित्रवर्गमिजज्ञपत् ॥२॥ प्रभोस्तस्य समादेशान्तानादेशाधिपा नृपाः । चतुरंगवलोत्तुंगाः श्रिताः स्वामिहितैषिणः ॥३॥ दत्तप्रयाणमेनं त्वनंतसन्याब्धिवत्तिनं । विविदुर्यदुशार्यूलाश्रत्राश्रारचक्षुषः ॥४॥ ततः श्रुतवयोवृद्धा वृष्णिभोजकुलोत्तमाः । कर्त्तुमारेभिरे मंत्रमिति तत्त्विनस्विणः ॥५॥

१ जनपदाधिपाः ।

त्रिखंडाखंडिताज्ञोऽन्यैः प्रचंडश्रंडशासनः । चक्रखडुगदादंडरत्नाद्यस्वकोद्धतः ॥६॥ कृतज्ञः कृतदोषेषु प्रणतेषु कृतक्षमः । अस्मास्वनपैकारः प्रागुपकारैकतत्परः ॥७॥ जामातृभ्रातृघातोत्थपराभवरजोमलं । प्रमार्षु कोपवानस्मान्मागघोऽभ्येत्य विभ्यतः ॥८॥ दैवपौरुषसामध्यमस्मदीयमतिस्मयः । प्रकटीभूतमध्येष पश्यन्निप न पश्यति ॥९॥ कृष्णस्य पुण्यसामर्थ्य पौरुषं च वलस्य च । बाल्यादारभ्य निःशेषमिदं परमवैभवं ॥१०॥ नेमितीर्थकरस्यापि देवेंद्रासनकंपिनः । प्रभुत्वं च स्फुटीभूतं बालस्यापि जगत्त्रये ॥११॥ यस्यानुपालने व्यग्राः समग्रा लोकपालिनः । तत्तीर्थकृत्कुले को वा मानुषोऽपकरिष्यति ॥१२॥ करेण कः स्पृशेद्ज्ञः कृशानुमकृशार्चिषं । तीर्थकृद्वलकृष्णान्वा कोभ्येति विजिगीषया ॥१३॥ प्रतिश्रत्रुरयं राजा जरासंघोऽस्य हिंसकौ । ध्रुवमत्र समुद्भुतो रामनारायणाविमौ ॥१४॥ तदत्र यावदापत्य सपक्षः कृष्णपावके । प्रतिशत्रुपतंगोऽयं भस्मीभवति न स्वयं ॥१५॥ ताबदाशु वयं शूरं शौरिमैस्मद्वशं परं । विगृह्यासनयोगेन योजयामो जयोन्सुखं ।।१६॥ स्वीकृत्य वारुणीमाञ्चां कानिचिद्दिवसानि वै । विगृह्यासनमेवं हि कार्यसिद्धिरसंशया ॥१७॥

१ अस्मास्वनपकारेषु प्रागुपकारतत्परः । २ पूर्ण इत्यपि । ३ वसुदेवपुत्रं ।

चत्वारिंदाः सर्गः।

आसीनानेवमप्यस्मानभ्येति यदि मागधः । रणातिध्यं प्रकृत्यैनं प्रेषयामो रणप्रियं ॥१८॥ इति संमन्य ते मंत्रं प्रकाश्य कटके स्वके । आनंदिनीनिनादेन प्रयाणकमजिज्ञपन् ॥१९॥ भेर्यास्तस्या रवं श्रुत्वा चतुरंगबलं ततः । यदुभोजकुलक्ष्माभृत्प्रधानमचलद्भलं ॥२०॥ माथुर्यः शौर्यपूर्यश्च वीर्यपूर्यः प्रजास्तदा । समं स्वाम्यनुरागेण स्वयमेव प्रतस्थिरे ॥२१॥ प्रजाः प्रकृतिभिः सर्वाश्चातुर्वर्णाः संधार्मिकाः। प्रस्थानं मेनिरे स्थानादुद्यानक्रीडया समं ॥२२॥ अष्टादशेति संख्याता कुलकोट्यः प्रमाणतः । अप्रमाणधनाकीणी निर्याति स्म यदुप्रियाः ॥२३॥ प्रशस्तितिथिनक्षत्रयोगवारादिलब्धयः । सुलब्धसुकुला भूपा जम्मुरल्पैः प्रयाणकैः ॥२४॥ देशानुह्यंच्य निःशेषान् प्रतीचीं प्रति गच्छतां । बभूव विपुलस्तेषामुपाते विध्यपर्वतः ॥२५॥ गजकाननरम्यस्य सिंहशाद्वित्रशालिनः । शृंगालीढांबरस्यास्य श्रीर्जहार मनो नृणां ॥२६॥ अनुवर्तम जरासंधं तत्रायातं निशम्य ते। प्रत्येक्षंत महोत्साहा यदवोऽपि युयुत्सवः ॥२७॥ अल्पमंतरमालोक्य देवताः सेनयोस्तयोः। भरतार्द्धनिवासिन्यः कालदैवनियोगतः ॥२८॥ विकृत्य दिव्यसामध्यीदंतरे चितिकाश्च ताः। अग्निज्वालापरीतास्तान् दर्शयांचिक्रिरे रये।।२९॥ चतुरंगवलं तच दह्यमानमितस्ततः । पश्यति स्म अरासंधो ज्वालालीलीढविग्रहं ॥३०॥

ज्वालारुद्धपथस्तत्र विश्रांतिनिजसाधनः । अपूच्छद्वदतीमेकां स्थविरीभूय देवतां ॥३१॥ दह्यते विपुलः कस्य स्कंधावारोऽयमाकुलः । किमर्थं रोदिषित्वं चवद वृद्धे । यथास्थिते ॥३२॥ इति पृष्टा समाचष्ट तस्मा अश्राविलेक्षणा । शोकं निगृह्यं कुच्छ्रेण रुद्धे कंठेंऽपि मन्युना ॥३३॥ वदामि शृणु तेजस्वन ! यथादृष्टं यता जनः । निवेद्यं महते दुःखान्महतोऽपि विभुच्यते ॥३४॥ अस्ति राजगृहै राजा जरासंध इति श्रुतिः । सत्यसंधः स यः शास्ति सागराता वसुंधरा ॥३५॥ वाडवार्चिश्छलेनास्य नृनमंबुनिघाविषे। प्रज्वलेति द्विषां शांत्ये प्रतापदहनार्चिषः ॥३६॥ आत्मापराधवाहुल्यात्सशल्यहृद्यास्ततः। यादवाः कापि संत्रस्ताः प्रयातः प्रियजीविताः॥३७॥ ते काक्यप्यामप्रयंतः संतःसशरणं कवित्। प्रविक्य दहनं याताः शरणं मरणं परं ॥३८॥ कुलक्रमागता तेषां भुजिष्या भूभुजामहं। स्वामिदुर्मतिदुःखाती रोदिपि प्रियजीविता ॥३९॥ यादवाः कौरवा भोजाः प्रकाः प्रकृतिभिः सह। अनुलग्नजरासंधाः प्रलीना हुत्तभुग्युखे।।४०॥ अहं तु दुःखसंभारनिलयोक्तविग्रहा । सग्रहेव वियोगाची प्राणिम प्राणवस्त्रमा ।।४१॥ श्चरवेति जरतीवाक्यं जरासंघोऽतिविस्मितः । श्रेडयान्धकवृष्णीनामन्वयातममन्यत ।।४२॥ द्वाग् निष्त्य निजं स्थानं सोऽध्यास्य सह बांघवैः। विपन्नेभ्यो जलंदत्त्वा कृतकृत्य इव स्थितः।।४३।।

एकच्त्वारिकः सर्गः।

यदवोऽपि ययुः स्वेच्छग्रपकंठग्रदन्वतः । एलावनलतासंगसद्गंधानिलवीजितं ॥ ४४ ॥ अपरार्णवमामृत्य दूरदेशनिवशनाः । यथास्वं ते नृपास्तस्थुः प्रजाः प्रकृतयस्तथा ॥४५॥ पार्णिप्राहितयानुमार्गमघृणो लग्नोऽतिनिवधतः । संधावन् परनाशमाशु कुपितः कर्नुं च मर्नुं स्वयं ॥ ज्वालारुद्धपथो न्यवर्त्तत रिपुर्यद्धन्यसर्विक्तया— स्तज्जेनाः कथयंति तावदनयोः पुण्योदयः श्रूयतां ॥ ४६ ॥ इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनेसनाचार्यकृतीं हरिवंशयादवप्रस्थानवर्णनी नाम चत्वारिशः सर्गः।

एकचत्वारिंशः सर्गः।

दिद्यया ततो याताः क्षत्रियाः शुब्धतोयधेः । ते दशाईमहामोजिविष्णुनैमीश्वरादयः ॥१॥ ततः शीकरिणं मत्तिव दिकरिणं मुहुः । झषरपुरणलीलेषदुन्मीलनिमीलनं ॥ २ ॥ महत्त्वस्पद्धयवोष्वीमूर्मिदोमेडलेश्वलैः । आस्फालियतुमाकाशमाश्चानुगतमूर्जिते ॥३॥ घूणमानमुदीर्णोग्रमकरग्राहविग्रहं । मकराकारमैक्षंत मकरीकारिणीवृतं ॥४॥

अलब्धपारमुद्यक्तौरप्यनुत्पन्नबुद्धिभिः । अतिगंभीरतायोगादलंघितनिजस्थिति ॥५॥ तंगभंगतरंगोद्यदंगपूर्णमहार्णसं । पुराणमार्गसंपातनदीमुखमनोहरं ॥६॥ अनध्यत्मिमहारत्नमुक्ताकरमनादिकं । वैपुल्यस्वच्छतासंगादंगीकृतनभः श्रियं ॥७॥ आत्मांतः स्थापितानंतजीवरक्षादृढवतं । अलंघितपदं सर्वैर्वादिभिर्विजिगीषुभिः ॥८॥ निरस्यं तमनंतानुबंधितापसुपाश्रितं । सुखेन स्पर्शनेनापि स्वावगाहेन कि पुनः ॥९॥ निशम्यार्णवमुद्रीर्णिमिय शास्त्रार्णवं जिनैः । विष्रियं राजकं राजदाकीर्णकुसुमांजालेः ॥१०॥ नेमिनाथागमोद्भतसम्मदेनेव भूरिणा । नृत्यिनवोर्मिदोर्वार्द्धिर्वभौ शंखस्वनोद्धरः ॥११॥ प्रबालमौक्तिकैरर्द्यं स्वतरंगकरेः किरन्। स्वागतं व्याजहारेव हरये मुखरोंबुधिः ॥१२॥ युगप्रधानमंभोधिर्वलं वीक्ष्य भषेक्षणः । अंभःस्थलैः समुद्यद्भिरभ्युत्तिष्ठदिवाबभौ ॥१३॥ सम्रद्रीवजयाक्षोभ्यभोजादिविषयां युदं । आविष्कुर्विन्वाभात्स्वां समुद्रः फेनमंडलैः ॥१४॥ ततस्तिथौ प्रशस्तायां कृतमंगलसंनिधिः । कृष्णः स्थानेष्सया चक्रे सबलोऽष्ट्रमभक्तकं । १५॥ दर्भशय्याश्रिते तस्मिन् कृतपंचगुरुस्तवे । नियमस्थितया धीरे समुद्रस्य तटे स्थिते ॥१६॥ गोतमाख्यः सुरो वार्द्धिं सौधर्मेंद्रानिदेशतः । न्यवर्तयदरं शक्तः कृतकालांतरस्थिति ॥१७॥

वासुदेवस्य पुण्येन भक्त्या तीर्थकरस्य च ! सद्यो द्वारवर्ती चक्रे कुबेरः परमां पुरी ॥१८॥ नगरी द्वाद्वशायामा नवयोजनविस्तृतिः । वज्रशाकारवलया समुद्रपरिखावृता ॥१९॥ रत्नकांचननिर्माणैः प्रासार्द्बहुभूमिकैः । हंधाना गगनं रेजे साऽलकेव दिवश्रयुता ॥२०॥ वापीपुष्करिणीदीर्घदीर्घिकासरसीहदैः । पद्मोत्पलादिसंछत्रैरक्षया स्वादुवारिभिः ॥२१॥ भास्वत्कलपलतारुढकलपवृक्षीयशोभितैः । नागवङ्घीलवंगादिपूगादीनां च सद्दनैः ॥२२॥ प्रासादाः संगतास्तस्यां हमप्राकारगोपुराः । सर्वत्र सुखदा रेजुर्विचित्रमणिकुष्टिमाः ॥२३॥ रथ्याभिरीभरामांतःप्रपाभिश्व सदादिभिः । राज्ञां सर्वप्रजानां च वासयोग्या व्यराजत ॥२४॥ सर्वरत्नमयैस्तुंगैर्जिनेंद्रभवनैरसौ । प्राकारतोरणोपेते रेजे सोपवनैः पुरी ॥२५॥ आग्नेयादिषु मध्येऽस्या दिश्च प्रासादपंक्तयः । समुद्रविजयादीनां दशानां क्रमतो बभुः ॥२६॥ तन्सध्ये सर्वतोभद्रः कल्पवृक्षलतावृताः । प्रासादः केशवस्याभात्तदाष्टादशभूमिकः ॥२७॥ अंतःपुरस्रुतादीनां योग्याः प्रासादमालिकाः । शौरिसौधमुपाश्रित्य परितोऽतिवभासिरे ॥२८॥ स्वांतःपुरगृहालीभिः प्रामादः परिवारितः । शुशुभे बलदेवस्य वाष्युद्यानादिभूषितः ॥२९॥ तत्त्रासादपुरःशकसभामंडपसंनिभः । श्रीसभामंडपोभासीन्मार्तंडकरखंडनः ॥३०॥

उत्रसेनादिभूपानां योग्या भवनकोटयः । साष्ट्रकक्षांतरास्तत्र सर्वेषामपि रेजिरे ॥३१॥ अशक्यवर्णनां दिव्यां बहुद्वारवतीं पुरीं । निर्माय वासुदेवाय राजराजी न्यवेदयत् ॥३२॥ किरीटं वरहारं च कौस्तुमं पीतवाससी । भूषा नक्षत्रमालादि वस्तु लोके सुदुर्लमं ॥ ३३॥ गदां कुमुद्रतीं शक्ति खड़ं नंदेकसंबकं । शांगे धनुश्च तूणीरयुग्मं वज्रमयान् शरान् ॥३४॥ सर्वायुधयुतं दिव्यं रथं सगरुडध्वजं । चामराणि सितच्छत्रं हरये धनदो ददौ ॥३५॥ मेचकं वस्त्रयुगलं मालां च मुकुटं गदां। लांगलं मुञ्जलं चापं सञ्चरं शरधिद्वयं ॥३६॥ रथं दिव्यास्त्रसंपूर्णमुचैस्तालं ध्वजोर्जितं । कुबेरः कामपौलाय ददौ छत्रादिभिः सह ॥३७॥ भातरोऽपि दशाहीस्ते वस्नाभरणपूर्वकैः । संप्राप्तपूजनास्तेन भोजाद्याश्च नृपाः कृताः ॥३८॥ तीर्थकृत्पुनरन्यूनैर्वयोयोग्यैः सुवस्तुभिः । प्राज्यैः पूजनमेवासौ किं तन्न बहुवर्णनैः ॥३९॥ प्रविशंत पुरी सर्वे भवंत इति रैपैतिः । तानुक्त्वा पूर्णभद्रं च संदिश्यांसिंहितः क्षणात् ॥४०॥ ततो यादवसंघास्तावभिषिच्यांबुधेस्तटे । जयशब्देन संघुष्य हृष्टा हलगदाधरौ ॥४१॥ विविशुद्दीरिकां भूत्या चतुरंगवलान्विताः । सप्रजाः कृतपुण्यास्ते प्राप्तां दिविमिवं स्वयं ॥४२॥

प्रीमद्रोपदिष्टेषु भद्रेषु भुवनेष्वमी । यथास्वेर्वेछं सुखं तस्थुः प्रजाश्च निजसंख्या ॥४३॥ माधुराः सौरजा वीरपुरपौराः पुरा यथा । यथास्वं कृतसंकेतसंनिवेशा ययुर्धति ॥४४॥ प्रयोगर्षचतुर्यानि दिनानि धनदाझ्या । यक्षा ववृषुरक्षीणधनधान्यादि धामसु ॥४५॥ तत्र स्थितस्य कृष्णस्य प्रतापेन वशीकृताः। अपरांतिकभूपालाः शासनं प्रतिपेदिरे ॥४६॥ बहुराजसहस्राणां तनयाः ससहस्रशः । परिणीय ततो रेमे यथेष्टं द्वारिकापतिः ॥४७॥ तत्र नेमिक्रमारोऽपि कुमार इव चंद्रमाः । संवर्धते स्म निःशेषकलानिलयविष्रहः ॥४८॥ दशाईवदनांभोजविकाञ्चकरणोदयः । बालभानुर्बभासेऽसौ ज्योतिधूततमस्तरः शास्त्रशा रामदामोदरानंदं प्रत्यहं प्रतिवर्धयन् । चकार ऋीडितं बाल्ये पौरनेत्रमनोहरं ॥५०॥ समस्तयदुपत्नीनां करात्करमितस्ततः । अलंकुर्वश्वलंखपी स ययौ यौवनोदयं ॥५१॥ प्रव्यक्तलक्षणे तत्र यूनि श्यामां बुजेक्षणे । विश्रांत दृष्टिमन्यत्र नेतुं शेकुर्न योषितः ॥५२॥ जिनक्ष्पशरो द्राज्जगतो हृदयस्थली । विभेद न पुनर्जैनी परस्पशरायतिः ॥५३॥ नोषमा जिनस्त्वस्य नोपमेयं क्षितौ यतः। उपमानोपमेयार्थं खिद्यतेस्म हरिस्ततः ॥५४॥

१ यश्रायथमित्यपि पाठः।

स्वांतरंगजनैर्जात कियमाणास केलिषु । स्विववाहकथाष्वीशः स्मेरास्यो लज्जते स्वयं ॥५५॥ बोधत्रयांबुनिर्धृतमोहनीयकलंकजं । न तस्य भूतिधूलीभिर्धृसरीकृतमांतरं ॥५६॥

> जैनेविष्णिवैष्णवैर्वालभद्रैश्चंद्रालोकप्राकटैः सदुणौवैः। स्पष्टात्यर्थं हृष्टलोकोर्मिराभाद्रेलेवाब्धेद्वीरिका द्वारगंता ॥५७॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतो द्वारवतीनिवेशवर्णनो नाम एकचत्वारिंशः सर्गः ।

द्वाचत्वारिंदाः सर्गः ।

अथ सभ्यसमाकीर्णामन्यदा यादवीं सभां । आजगाम नभोगामी नारदो नभसो मुनिः ॥१॥ आपिशंगजटाभारश्मश्रुकूर्चः शशिद्युतिः । विद्युद्धलयविद्योतिशारदांबुधरोपमः ॥२॥ विचित्रवर्णविस्तीर्णयोगपदृविभूषितः । परिवेषवता विश्रदौषधीशस्य विश्रमं ॥३॥ चलद्दुकूलकौपीनपरिधानपरिच्युतः । दिवोऽनुग्रहबुद्धचेव जगतः कल्पपादपः ॥४॥

द्वाचत्वारिंशः सर्गः।

देहस्थितेन शुद्धेन त्रिगुणेनोज्ज्लीकृतः । यज्ञोपवीतस्त्रेण सरत्नत्रितयेन वा ॥५॥ असाधारणरूपेण गौरवाधानहेतुना । नैष्ठिकब्रह्मचर्येण पांडित्येनैव मंडितः ॥६॥ शुद्धप्रकृतिरत्यंतमीरपडुर्गवर्जितः । राज्योदय इवोदारो राजलोकस्य पूजितः ॥७॥ द्वारिकाविभवालोकसँशिरःकंपविग्रहं । तेऽवतीर्णं तमालोक्य सहसोत्थाय पार्थिवः ॥८॥ नमस्यासनदानादि सोपचारेण सक्रमं । पूजयंति स्म सन्मानमात्रेण परितोषिणं ॥९॥ जिनकृष्णबलालोकसंभाषणसुखामृतं । पीत्वाप्यतृप्तनेत्रस्तमध्यतिष्ठत्सभार्णवं ॥१०॥ पूर्वीपरिविदेहानां जिनेंद्राणां कथामृतैः । समेरुवंदनोदंतैर्मनोऽमीषामतर्पयत् ॥११॥ प्रस्तावेऽत्र गणिज्येष्ठं श्रेणिकोऽपृच्छिदित्यसौ । क एष नारदो नाथ! कुतो वाऽस्य समुद्भवः॥१२॥ गण्यवाच वचोगण्यः शृणु श्रेणिक भण्यते । उत्पत्तिरंत्यदेहस्य नारदस्य स्थितिस्तथा ॥१३॥ आसीत्सौर्यपुरस्यांते दक्षिणे तापसाश्रमः । वसंति तापसास्तस्मिन् फलमूलादिवृत्तयः ॥१४॥ सुमित्रस्तापसस्तत्र स सोमयशसि स्त्रियां । उंछवृत्तिः शशिच्छायं पुत्रमेकमजीनत् ॥१५॥ तमुत्तानशयं यावत्तौ संस्थाय तरोरधः । उंछवृत्त्यर्थमायातौ नगरं श्रुत्यिपासितौ ॥१६॥

संक्रीडमानमेकांते तावत्तं जृंभकामराः । दृष्टा पूर्वभवस्नेहाक्रीत्वा वैताढ्यपर्वतं ॥१७॥ मणिकांचनसंज्ञायां गुहायां तत्र तं शिशुं । कल्पवृक्षसमुद्भतैर्दिच्याहारैरवर्द्भयन् ॥१८॥ स्वेष्टाय तेऽष्टवर्षाय सरहस्यं जिनागमं । देवास्तस्मै ददुस्तुष्टा विद्यां चाकाशगामिनीं ॥१९॥ नारदो बहुविद्योऽसौ नानाशास्त्रविशारदः । संयमासंयमं लेभे साधुः साधुनिषेवया ॥२०॥ कंदर्पस्य विजेतापि कंदर्पनिभविभ्रमः । सकंदैर्पप्रियो हासशीलोऽभूह्लोभवर्जितः ॥२१॥ अंत्यदेहः पकृत्यैव निःकषायोऽप्यसौ क्षितौ । रणप्रेक्षाप्रियः प्रायो जातो जल्पाकमास्करः ॥२२॥ जिनजन्माभिषेकादिमहातिशयदर्शने । कुत्हु िलतया लोकं परिश्रमति विश्रमी ॥२३॥ स एष नारदो राजन् परिपृच्छच यद्त्तमान् । केशवांतःपुरं दृष्टुं प्रविष्टोंऽतःपुरालयं ॥२४॥ तत्र विष्णोमेहादेवीं प्राणेभ्योऽपि गरीयसीं । धृतप्रसाधनां साध्वीं करस्थे मणिद्रपेणे ॥२५॥ श्रेक्षमाणां निजं रूपं सत्यभामां विदूरतः । अद्राक्षीत्रारदः साक्षाद् दृष्टे रतिमिव स्थितां ॥२६॥ स्वरूपालोकनाक्षिप्तचेतसा सत्यया यतिः । न दृष्टः सहसा रुष्टो निर्जगाम ततो द्वतं ॥२७॥ दध्याविति स लोकेऽस्मिन् सविद्याधरभूचराः । मामुत्थाय नमस्यंति राज्ञामंतःपुरस्त्रियः ॥२८॥

१ कंदर्पेण सह वर्तते इति सकंदर्पास्तेषां प्रियः । २ वाचालभानुः ।

सत्यभामा त्वियं रूपमद्गर्वितमानसा । धिग् मां नालोकतेस्मापि धृष्टा विद्याधरात्मजा ॥२९॥ तदस्या रूपसौभाग्यगर्वपर्वतचूरणं । प्रतिपक्षवधूवज्ञसंतापेन करोम्यहं ॥३०॥ रूपसौभाग्यतो ह्यन्यां सत्यभामातिशातिनीं । होरेर्लघु लभेत् कन्यां बहुरत्ना वसुंधरा ॥३१॥ ततः पश्यामि भामाया निश्वासश्याममाननं । कुतोऽनर्थविमोक्षः स्यात् कुपिते मिय नारदे ॥३२॥ इति ध्यायन् खम्रुत्पत्य कुंडिनाख्यमयात्पुरं । यत्र भीष्मो नृपस्तिष्ठत्यरिभीष्मो महान्वयः ॥३३॥ रुक्मीति तनयस्तस्य नयपौरुषषोषणः । रुक्मिणी च शुभा कन्या कलागुणविशारदा ॥३४॥ तां ददर्श च शुद्धांते शुद्धांतः करणश्रितां । पितृष्वसानुरागिण्या संध्ययेवोदयश्रियं ॥३५॥ सौलक्षण्यं च सौरुप्यं सौभाग्यं त्रिजगद्गतं । गृहीत्वेव हरे पुण्यैः परमैस्तां विनिर्मितां ॥३६॥ पाणिपादमुखांमोजजंघोरुजघनश्रिया । रोमराजिभुजानामिकुचोद्रतनुत्विषा ॥३७॥ भूकर्णाक्षिशिरःकंठघोणाधरपुटोभया । अभिभूयोपमा सर्वा स्थितां जगित तां परां ॥३८॥ दृष्टाऽसौ विस्मितो दध्यौ दृष्टानेकांगनोत्तमः । अहो रूपस्य पर्यते कन्येयं वर्त्तते भुवि ॥३९॥ संयोज्य हरिणा कन्यामनन्यसद्शीमिमां । भनजिम सत्यभामाया रूपसौभाग्यदुर्भदं ॥४०॥ इति ध्यायंतमायातं नारदं वीक्ष्य रुक्मिणी । अभ्युत्तस्थौ रणद्भूषा स्वभावविनयैक्भूः ॥४१॥

सांजििः प्रणनामासौ प्रत्युपेत्य तमादरात्। द्वारिकापितपत्याप्त्या सोऽभ्यनंदयदानतां ॥४२॥ प्रिश्नितेन तया तेन द्वारावत्या विकीर्त्तने । कृतेऽनुरागिणी कृष्णे रुक्मिणी नितरामभूत ॥४३॥ कृष्णं भीष्मसुताचित्तिभित्तौ नारदचित्रकृत्। वर्णस्यवयोविद्धं विलिख्य वहिरुद्ययौ ।।४४॥ विलिख्य पट्टके स्पष्टं रुक्मिण्या रूपमद्भतं । हरयेऽद्शेद्गत्वा चित्तसंमोहकारणं ॥४५॥ दृष्टा चित्रगतां कन्यां क्यामां स्त्रीलक्षणाचितां । पप्रच्छ हरिरित्येवं द्विगुणादरसंगतः ॥४६॥ कस्येयं भगवन् ! कन्या विचित्रा पट्टके त्वया । दुष्करं मानुषी क्षिप्ता विचित्रासुरकन्यका॥४०॥ इति पृष्टोऽवदत्सोऽस्मै यथावृत्तमवंचकः । श्रुत्वा सौरिरपि प्राप्तश्चितां कन्याकरग्रहे ॥४८॥ काले पितृष्वसा तिमन्निकांते हितकाम्यया । रुक्मिणीमित्यभाषिष्ट सर्वेवृत्तांतवेदिनी ॥४९॥ आकर्णय वचो बाले कदाचिदतिषुक्तकः । दिव्यचक्षुरिहायातस्त्वां दृष्ट्राऽत्रददित्यसौ ॥५०॥ स्त्री लक्षणवती लक्ष्मीरिव वक्षःस्थलाश्रिता । बालेयं वासुदेवस्य भविष्यति भविष्यतः ॥५१॥ षोडशानां सहस्राणां विष्णोः स्त्रीगुणसंयुजां । अंतरंतःपुरस्त्रीणां प्रभुत्विमयमेष्यति ॥५२॥ इत्यादिश्य तदायातः सिद्धादेशो महामुनिः । कथा चांतर्हिता विष्णोः कियंतं चिदनेहसं ॥५३॥ पुनर्जन्मकथेवेयं नारदेन कथा कृता । यदि सत्यमिदं सर्वे सत्यं वेबि मुनेर्वचः ॥५४॥

त्वं पुनः शिशुपालाय बाले ! वांधवतां युजे । सुप्रभुत्वभूता भ्रात्रा रुक्मिणी किल दीयते ॥५५॥ विवाहसमयस्तेऽपि प्रत्यासन्नस्तु वर्तते । अद्य श्वो वा त्वदर्थं च शिशुपालः किलैष्यति ॥५६॥ विदर्भपतिपुत्री तिन्नशम्य वचनं जगौ । कथमस्य मुनेविक्यमन्यथा भवति क्षितौ ॥५७॥ तन्मदीयमभिप्रायं कथंचिद्पि सत्वरं । द्वारिकापतर्ये यत्नात् प्रापयेति स मत्त्रियः ॥५८॥ इति अत्वा मनो ज्ञात्वा कन्यकायाः पितृष्वसा । विससर्ज रहस्येनं लेखमाप्तेन सत्वरं ॥५९॥ त्वन्नामग्रहणाहारप्रीणितप्राणधारिणी। हरे ! कांक्षति ते रक्ता रुक्मिणी हरणं त्वया ॥६०। शक्लाष्टम्यां हि माघस्य यदि माधव ! रुक्मिणीं । त्वमेत्य हरासि क्षिप्रं तवेयमविसंशयं ॥६१॥ अन्यथा त वितीर्णायाश्रेद्याय गुरुवांधवैः । त्वदलाभे भवेदस्याः शरणं मरणं हरे ! ।(६२।। नागवस्यपदेशेन वाह्योद्यानस्थितामिमां । तद्वदयं त्वमागत्य स्वीकुरुष्व कृपापरः ॥६३॥ लेखार्थमिति तत्त्वार्थमिथगम्य स माधवः । सावधानमनास्तस्यौ रुक्मिणीहरणं प्रति ॥६४॥ कऱ्यादानकृतारंभविद्भेश्वरवाक्यतः । चेदीनौमीश्वरः प्राप्तो वैद्भेपुरमाद्रात् ॥६५॥ बलेन महता तस्य चतुरंगेण रागिणा । मंडिताशांतरं जातं कुंडिनं नगरं तदा ॥६६॥

१ शिशुपारुः ।

इतश्रावसरज्ञेन नारदेन रहस्यरं । चोदितो हरिरप्याप्तो गूढवृत्तः सहाग्रजः ॥६७॥ दत्तनागविलः कन्या पुरोपवनविर्नानी । पितृष्यस्रादिभिर्युक्ता माधवेन निरीक्षिता ॥६८॥ श्रुतींधनसमृद्धोऽनुरागबंधहुताशनः । अतिवृद्धिं तदा प्राप्तस्तयोर्दर्शनवायुना ।।६९॥ कृतोचितकथस्तत्र रुक्मिणीमाह माधवः । त्वदर्थमागतं भद्रे ! विद्धि मां हृदयस्थितं ॥७०॥ सत्यं यदि मिय प्रेम त्वया बद्धमनुत्तरं । तदेहि रथमारोह मन्मनोरथपूरणि ॥७१॥ पितृष्वस्नाऽपि साऽवाचि योऽतिमुक्तकभाषितः । स एव तव कल्याणवरः पुण्यैरिहाहृतः ॥७२॥ यत्रापि पितरौ भद्रे ! दातारौ दुहितुर्भतौ । तत्राऽपि विधिपूर्वौ तौ ततो ज्येष्ठो विधिर्गुरुः ॥७३॥ सानुरक्तां त्रपायुक्तां श्रीमत्यास्तनया ततः । रथमारापयदोभ्यीमुत्क्षिप्यामीलितेक्षणः ॥७४॥ निर्वाहकस्तयोरासीदन्योन्यसुखावहः । सर्वांगीणस्तनुस्पर्शः प्रथमो मन्मथार्त्तयोः ॥७५॥ सुगंधिमुखनिश्वासस्तयोरन्योन्ययोगतः । वास्यवासकभावस्थो वशीकरणतामगात् ॥७६॥ विम्रुखीकृतचैद्येन सम्मुखीकृतविष्णुना । विधिनैकन रुक्मिण्यास्तत्कल्याणमनुष्ठितं ॥७७॥ रुविमणः शिशुपालस्य भीष्मस्य च हरिस्ततः । रुविमणीहरणोदंतं दत्त्वा रथमचोदयत् ॥७८॥ पांचजन्यमतो दध्मौ मुखरीकृतदिग्मुखं । सुघोषं तु बलः शंखं चुक्षोभारिबलं ततः ॥७९॥

रुक्मी विदितवृत्तांतः शिशुपालश्च सत्त्वरौ । धीरौ धीरौ परिप्राप्तौ रथिनौ प्रति ॥८०॥ रथैः षष्टिसहस्रेंस्तैः करिणामयुतेन च । त्रिभिः शतसहस्रेश्च वाजिनां वायुरंहसां ॥८१॥ असिचकधनुःपाणिबहुलक्षपदातिभिः । ग्रसमानौ दिशो शेषा निकटत्वमुपागतौ ॥८२॥ अर्घासनसुखासीनां सान्त्वयन् भीष्मजां हरिः। ग्रामाकरसरःसिंधूर्दर्शयन् प्रययौ शनैः ॥८३॥ अथ रौद्रं बलं प्राप्तमन्वीक्ष्य हरिणेक्षणा । रुक्मिण्युवाच भत्तीरमपोयपरिशंकिनी ॥८४॥ भ्राता में कुपितः प्राप्तः संप्रत्येव महारथः । शिशुपालश्च तन्नाथ न मन्ये स्वंतमात्मनः ॥८५॥ युवयोः पृथुसेनाभ्यामाभ्यां जाते महारणे । विजयं प्रति संशीतिरहो मे मंदभाग्यता ॥८६॥ ब्रुवाणामिति तां शाङ्गी मा भैषीर्मृदुमानसे । बहुत्वेन किमन्येषां मिय सत्त्ववति स्थिते ॥८७॥ तयोक्तं मुनिरादेशः सप्ततालानुज्न पुमान् । यच्छिनस्येकवाणेन स हरिर्नान्यथा शुभे ॥८८॥ तद्वचः शौरिणा श्रुत्वा क्रमेणाकम्य तित्स्थरं ! स चिच्छेद क्षुरप्रेण रिज्वतां तालमंडली ॥८९॥ इत्युक्त्वाऽसौ क्षुरप्रेण क्षिप्रमप्राऋतास्त्रवित् । अयत्नेनेव चिच्छेद तालवृँक्षं पुरःस्थितं ॥९०॥

१ लक्षण । २ अष्टाशीतिनवाशीतितमौ श्लोकौ ख पुस्तके न स्तः इदंच सुष्ठु प्रातिभाति । ३ "आक्रम्य क्रमतः स्थिरं ग इत्यपि । ४ तालवृक्षान् प्रःस्थितान् इत्यपि ।

द्वाचत्वारिंदाः सर्गः।

अंगुलीयकनदं च वज्रं संचूर्ण्य पाणिना । तस्याः संदेहमामूलं चिच्छेद यदुनंदनः ॥९१॥ ततः सा प्रांजिलिः प्राह प्रियसामध्यविदिनी । नाथ ! यत्नेन मे भ्राता रक्षणीयस्त्वयाहवे ॥९२॥ एवमस्तिवति संत्रस्तां शांतियत्वा प्रियां हरिः । न्यवर्त्तयद्रथं वेगादस्य मित्रं हली तथा ॥९३॥ रुष्टयोः शरजालेन द्विष्टमैन्यं ततोऽनयोः । श्लिष्टं ननाश विध्वस्तक्किष्टद्रपैमभिद्वतं ॥९४॥ हरिणेव रणे रौद्रे हरिणा दमघाषैजः । हलिना भीष्मजो राजा भीष्माकारः पुरस्कृतः ॥९५॥ द्वेद्रयुक्ते शिरस्तुंगं शिशुपालस्य पातितं । विष्णुना यशसा साकं सायकेन विदूरतः ॥९६॥ हली जर्जरितं कृत्वा रथेन सह रुक्मिणं । प्राणशेषमपाकृत्य कृती कृष्णयुतो ययौ ॥९७॥ रुक्मिणीं परिणीयासी गिरी रैवतके हरिः । विभूत्या परया तुष्टः सर्वधुरिवशत् पुरी ॥९८॥ स्वं विवेश गृहं शीरी रेवतीदर्शनोत्सुकः । शाङ्गिपाणिरपि प्रीतो नववध्वा युतो निजं ॥९९॥ अनेकरथचऋचूर्णिविजिगीषुतेजोहरं निरीक्ष्य शिशुपालघातचरितं हरेराहवे । वपुः स्वमुपसंहरन् करसहस्रतीक्ष्णोऽप्यरं गतोस्तिगिरिगहरं ग्रहणशंकयेवांशुमान् ॥१००॥ अनेन घनरागिणा समनुवर्त्तिता रागिणी महोदयनिषेविणाप्यनुरतेन पूर्वे तु या। तयाऽस्तमितसंपदं तमनुवृत्तया संध्यया कुशुंभकुसुमाभया तदनुरक्तता दिशता ॥१०१॥

१ शिशुपारुः ।

ततोंऽजनमहारजोमिलनमूर्तिभिमोहिनैः प्रभंजनवशैरिव प्रतिभयावहैरुद्धतैः। तमःपटलपातकैरभिपतद्भिगत्युन्मुखेः खलैरिव निरंतरैर्जगद्भिह्नुतं च द्वतं ॥१०२॥ किरसमृतदीधितिबहरुमंथकारं करें। तृषेव जनलोचनैः सपदि पीयमानस्ततः। जगन्मद्नदीपनस्तपनजातसंतापनुत् सखा सुमुखिनामपि प्रकटमुज्जगामोद्यं ॥१०३॥ विकाशमगमद् विधोः कुमुदिनी करामशैनाज्ञगत्यखिलजंतुभिः सह निजिप्रयाप्रोषितैः। तदा न खलु पश्चिनी विरहदीप्तचकाहुयैरहो प्रमदहेतवोऽपि सुखयंति नो दुःखितान् ॥१०४॥ प्रदोषसमये ततो सुषितमानिनीमानके प्रवृत्तवति दंपतिप्रमदसंपदापादने । सुधाधवलचंद्रिकाधवलितेषु हम्येषु ते मनोज्ञवनितासखास्तु परिरेमिरे यादवाः ॥१०५॥ म्रारिरपि रुक्मिणीतनुलताद्विरफस्तदा चिरं रिमतया तया असत रम्यमूर्तिर्निशि । अशेत शयनस्थले मृदुनि गूढगृढांगनाधनस्तनभुजाननस्पर्शलब्धनिद्रासुखः ॥१०६॥ ततः प्रमितयामिनीनिखिलयामभेदा मदप्रसुप्तयदुकामिनीजनिभयेव नीचोचकैः। ऋमेण पदुपक्षपातसुभगाश्चुक् जुः कलं क्षपाक्षयनिवेदिनो विविधचू डकाः कुक्कुटाः ॥१०७॥

तया प्रथमबुद्धया प्रथमसंध्ययेवोषिस प्रशस्तकरपद्मया विहितदेहसंवाहनः ।
विबुध्य हरिराश्रितां श्रियमिव व्यलोकिष्ट तां रितव्यितकरस्फुरत्परिमलां द्दिया सन्नतां ॥१०८॥
प्रभातपटहस्फुटध्वननशंखसंगीतकप्रघोषघनगर्जितांबुधिनिनादिनी द्वारिका ।
गृहं गृहमितोऽमुतो बुधितराजलोकाभवत् यथायथमनुष्टितस्वकिनयोगसर्वप्रजा ॥१०९॥
परैषिटितमप्यतो विघटयन् पदार्थं झटित्युपेत्य प्रतिपत्य दुर्विघटितं समर्थिकियः ।
परं भ्रुवनचक्षुरुज्जवलमनिद्रमभ्युद्ययौ यथा जिनवचपथो विधिरिवाऽथ वा भानुमान् ॥११०॥
इति "अरिष्टनिमिण्युराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य क्वतौ रुक्मिणीहरणवर्णनो नाम द्वाचत्वारिशः सर्गः ।

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ।

सन्यभामागृहाभ्यर्णमाकीर्णं द्रव्यसंपदा । धिष्ण्यं विष्णुर्ददौ दिव्यं रुक्मिण्यै परिचारवत् ॥१॥ महत्तरप्रतीहारीभृत्यादिपरिवारतः । यानाश्वरथयुग्यादि पत्या गौरविताऽतुषत् ॥२॥ ज्ञात्वा भामा हरीष्टां तां भामां भामातिज्ञायिनीं।सा सेष्यीऽपि हरिं धीरा रहः कीडाखरीरमत्॥३॥

१ 'परिवारतः', अथवा 'परिवारवत्' इत्यपि।

एकदा मुखतांबूलं निष्ठयूतं भीष्मजन्मना। सोंऽशुकांत्येन संगोप्य सत्यभामागृहं गतः ॥४॥ स्वभावमुखसौगंध्यबद्धभांतालिमंडलं । अहरत्यत्यभामा तद् भ्रांत्या सद्गंधवस्त्विति ॥५॥ वर्णगंधाढ्यमापिष्य समालभत चादरात् । हसिता हरिचंद्रेण मा चुक्रोश तमीर्पया ॥६॥ सौभाग्यातिशयं सत्या सपत्न्या हरिचेष्टितैः । विदित्वा रूपलावण्यं द्रष्ट्रमभ्युत्सुकाऽभवत् ॥७॥ अवदच पति नाथ ! रुक्मिणीं मम दर्शय । श्रोत्रयोरिव संहृष्टिं नेत्रयोरिप मे कुरु ॥८॥ प्रतिपद्य स तद् वाक्यमंतर्गूढो विनिर्गतः । मणिवाप्यास्तटे कांतां संस्थाप्य पुनरागतः ॥९॥ आनयामि तवाभीष्टां विशेष्यानमिति प्रियां। संप्रेष्यानुगतस्तस्या गुल्मसंगूढविग्रहः ॥१०॥ तावच मणिवाप्यंत मणिभूषणधारिणीं । पादाग्रेण स्थितां चूतलतामालंब्य पाणिना ॥११॥ प्रोल्लसत्स्थूलधम्मिल्लां वामहस्तेन विश्रतीं । स्तनभारनतामूर्ध्वफलन्यस्तायतेक्षणां ॥१२॥ निरूप्य रुक्मिणीं सत्या देवतामिव रूपिणीं । देवतेयमिति ध्यात्वा विकीर्य कुसुमांजलि ॥१३॥ निपत्य पादयोस्तस्याः स्वसोभाग्यमयाचत । विपक्षस्य तु दौर्भाग्यमीर्घ्याशल्यकलंकिता ॥१४॥ अंतरे इतिः सत्यां हारिस्मितमुखो वदत् । अपूर्वं दर्शनं स्वस्नोरहोवृत्तं नयान्वितं ॥१५॥ श्चरवा तत्सत्यभामोचे ज्ञाततत्त्वा रुषान्विता । कि भवाश्वयदित्थं नौ दर्शनं कि तवेति तं।।१६॥

कृतकृष्णवचोभामां रुविमणी विनयात्ततः । ननाम कुलजातानां विनयः सहजो मतः ॥१७॥ विहृत्य चिरमुद्यानं लतामंडपमंडितं । ताभ्यामघोक्षजो यातो निवृत्तो भवनं निजं ॥१८॥ ताभ्यामेकदिनौपम्यमनेकेषु दिनेष्वतः । तस्य यात्सु सुखांभोधिवर्त्तिनः शौर्यशालिनः ॥१९॥ दुर्योधनोऽन्यदा दूतं हरये त्रियपूर्वकं । प्रजिघाय घनस्नेहः स हास्तिनपुराधिपः ॥२०॥ यः प्रागुत्पतस्यते यस्या रुक्मिणीसत्यभामयोः । सुनुरुत्पतस्यमानायाः स वरो दुहितुर्मम ॥२१॥ इति दूतवचः श्रुत्वा प्रीतः संपूज्य तं हरिः। विससर्जे स पत्येऽतः कार्यसिद्धिं न्यवेदयत् ॥२२॥ तां वाचीमुपलभ्याऽसौ भामा भीष्मजांतिकं । व्यमृजिन्नजदूतीस्ताः पादयोः प्रणता जगुः॥२३॥ स्वामिनि ! स्वामिनी नस्त्वामिति वक्ति वचो वरं । अवतंसमिव श्लाघ्यं कुरु कर्णे मनस्विनि॥२४॥ आवयोः प्रथमं यस्यास्तनयोऽत्र भविष्यति । सुतां दुर्योधनस्यासौ भाविनीं परिणेष्यति ॥२५॥ तत्रापत्यविहीनाया विल्नालकवस्तरीं । स्नास्येते तावधः कृत्वा पादयोस्तु वधूवरौ ॥२६॥ प्रशस्यं च यशस्यं च यशोभागिनि भागिनि । यदि ते रोचते कार्यमिदमार्येऽनुमन्यतां ॥२७॥ कर्णामृतिमवाकर्ण्य तिवहत्य जगावसौ। तथाऽस्त्विति ततो गत्वा ताः स्वामिन्ये न्यवेदयत्॥२८॥ रुक्मिणी तु शिरःस्नाता शयिता शयने निशि । स्वप्ने हंसविमानेन विजहार किलांबरे ॥२९॥

विबुद्धा च समाचरूयो पत्ये स्वप्नमसौ जगौ । सुपुत्रस्ते वियचारी भविताऽत्र महानिति॥३०॥ वचः पत्युरसौ श्रुत्वा विकाशमगमद् वधूः । तेजसांऽशुमतः श्रिष्टा पश्चिनीव दिनानने ॥ ३१ ॥ अवतीर्याऽच्युतेंद्रस्तु रुक्मिणीगर्भमाश्रितः । पूरयन् परमानंदमुपेंद्रस्य जनस्य च ॥ ३२ ॥ तत्काले सत्यभामाऽपि शिरःस्नातवती सती । अधत्त स्वश्च्युतं गर्भे सुतं सुस्वप्नपूर्वकं ॥३३॥ वर्धमानौ च तौ गभी वर्धमानयशोलतौ । वर्द्धमानां मुदं मात्रोः पितुश्चाकुरुतां परां ॥ ३४ ॥ पूर्णप्रसवमासे ऽत्र प्रसृता रुक्मिणी सुतं । नरलक्षणसंपूर्णं सत्याऽपि युगपित्रशि ॥ ३५ ॥ प्रहिताश्र हितास्ताभ्यां युगपन्निशि वर्द्धकाः। शिरोंऽते सत्यया विष्णोः पादांते तस्थुरन्यया॥३६॥ प्रबुद्धश्च हरिर्दृष्ट्ये रुक्मिणीपुत्रजन्मना । आनंदितो ददौ तेभ्यः स्वांगस्पृष्टं विभूषणं ॥ ३७॥ परावृत्य पुनः पश्यन् सत्यभामाजनैः स्तुतः। पुत्रोत्पत्त्या ददौ तुष्टस्तेभ्योऽप्यर्थं जनार्दनः॥३८॥ तस्यामेव च वेलायां वलवान् नभसा वजन् । धूमकेतुर्विमानस्थो धूमकेतुरिवासुरः ॥ ३९॥ स्तंभितेन विमानन कथंचिदपि विस्मितः । अधोऽवलोकमानोऽसौ विभंगज्ञानलोचनः ॥ ४०॥ रुक्मिण्याः सुतमालोक्य रोपाऽरुणनिरीक्षणः । दर्शनेंधनसद्दीप्तपूर्ववैरिवभावसुः ॥ ४१ ॥ महारक्षाधिकारस्य परिवारजनस्य सः । रुक्मिण्याश्च महानिद्रां निपात्यापत्यपातकः ॥ ४२ ॥

शिशुपुर्धृत्य बाहुभ्यां महीश्रमिव गौरवात् । नभः सम्रद्ययौ नीलो नीलबुद्धिमहासुरः ॥४३॥ हस्ताभ्यां किम्र मुद्रामि पूर्ववैरिणमेनकं । खगेभ्यो नखनिभिन्नं खे विंक विकिरामि किं ॥४४॥ नकचकमहारौद्रे मकरग्राहसंकुले । पातयामि सम्रद्रे कि क्षुद्रं मे द्रोहिणं रिप्रुं ॥ ४५ ॥ अथवा मांसपिंडेन मारितेनामुनाऽत्र किं। त्यक्तश्चापदरक्षस्तु स्वयमेव मरिष्यति ॥ ४६ ॥ इति संचित्य पुण्येन शिशोरेव महासुरः । पश्यन्तवततारातो विदूरखदिराटवीं ॥ ४७॥ अधस्तक्षशिलायास्तं निधायार्भकमाशु सः । धूमकेतुरिवाद्द्यो धूमकेतुरभूत्ततः ॥ ४८ ॥ तदनंतरमेवाऽत्र मेघकूटपुराधिपः । कालसंवर इत्याख्यः सार्द्धं कनकमालया ॥ ४९ ॥ प्राप्तो भौमविहारेण विमानेन वियचिरः । शिशोस्तस्य प्रभावेण खंडिताऽस्य गतिस्तदा ॥५०॥ किमतदित्यसौ ध्यात्वा परं विस्मयमागतः । अवतीय शिलां पृथ्वीमुच्छ्नसंतीं व्यलोकत ॥५१॥ समुत्क्षिप्य शिलां स्वैरमपसार्थ स दृष्टवान् । अक्षतांगमनंगाभमभैकं कनकप्रभं ॥ ५२ ॥ गृहीत्वा करुणोपेतः प्रियाये दातुमुद्यतः । तनयस्ते अनपत्याया गृहाणेति प्रियंवदः ॥ ५३ ॥ प्रसार्थ करयुग्मं सा पुनः संकोच्य कोविदा । अनिच्छंतीव संतस्थे खेचरी दीघदिवीनी ॥ ५४ ॥ प्रिये ! किमिद्मित्युक्त सा जगौ तव सनवः । महाभिजनसंपन्नाः संति पंचशतानि ते ॥५५॥

तैरज्ञातकुलं दप्तैस्ताड्यमानं शिरस्यमुं । न शक्रोमि तदा दृष्टुं तन्मे वरमपुत्रता ॥ ५६ ॥ इत्युक्ते शांतियत्वा तां गृहीत्वा कर्णपत्रकं । युवराजोऽयिमत्युक्त्वा पट्टमस्य बबंध सः ॥५७॥ ततो जग्राह तुष्टा सा तनयं नयशालिनी । सपुत्री तौ प्रविष्टी च मेघकूटपुर पुरं ॥ ५८ ॥ गृढगभी महादेवी प्रस्ता तनयं शुभं । इति वार्ता पुरे कृत्वा कोविदः कालसंबरः ॥ ५९ ॥ नृत्यद्विद्याधरी टंदं सिंजित्सिजीरवंधुरं । तस्य पुण्यानिधानस्य जन्मोत्सवमकार्यत् ॥ ६०॥ प्रकृष्टद्यमधामत्वात् प्रद्युम्न इति संज्ञितः । कुमारो वर्द्धते तत्र कुमारशतसेवितः ॥ ६१॥ इतश्र रुक्मिणी सुनुं विबुद्धा नेक्षते यदा । दृद्धधात्रीभिरित्युचैः सह दृष्ट्रं ततस्तदा ॥ ६२ ॥ विललाप च हा पुत्र ! हतः केनाऽपि वैरिणा । विधिना निधिमाद्द्य नेत्रं मेऽपहृतं कथं ॥६३॥ वियोजिता मया नूनमपत्येन भवांतरे । काचन स्त्री न ही दक्षं भवेत्फलमहेतुकं ॥ ६४॥ विलापिमिति कुर्वत्यां रुक्मिण्यां करुणावहं । रोदनध्वनिरुत्तस्थौ परिवारस्य मांसलः ॥ ६५॥ ततो विदितवृत्तांतो वासुदेवः सबांधवः । संप्राप्य सहसा तत्र कलत्रैः सकलत्रिभिः ॥६६॥ आर्कदनस्वनप्राप्तसंक्रंदनपुरःसरः । निनिंद भुजवीर्यं स्वंप्रमादं च सनंदकः ॥ ६७॥ अवद्च वचोद्क्षा दैवपौरुषयोः परं । दैवमेव परं लोके धिक् पौरुषमकारणं ॥ ६८ ॥

अन्यथा कथमुत्खातखडुधारावभासिनः । न्हियेत वासुदेवस्य ममापि तनयः परैः ॥ ६९ ॥ इत्यादि बहुवादी स रुक्मिणीमाह मा त्रिये। शोकिनी भूरिहात्यर्थं धीरे! धारय धीरतां।।७०॥ नाल्पः कल्पच्युतः पुत्रो जातस्तव ममापि यः । भवितव्यमिहैतेन भुवने भोगभागिना ॥७१॥ गवेषयामि तस्त्रोकं तं लोकनयनोत्सवं । सूक्ष्मद्यष्टिरिवोद्धिंवं प्रतिपचंद्रमंबरे ॥ ७२ ॥ शांत्वियत्वाश्वसंधौतकपोलयुगलां प्रियां । माधवोऽन्वेषणे सूनोरुपायपरमोऽभवत् ॥ ७३ ॥ काले तत्र हरिं प्राप्तो नारदोऽनारतोद्यमः । श्रुतवाक्तश्र शोकेन क्षणं निश्चलतां गतः ॥७४॥ आननानि यदूनां स पश्यतिसम सविसमयः । क्लांतर्गन हिमद्रश्यानि पद्मानीव समंततः॥७५॥ ततो निरस्तमन्युश्च प्रत्युवाच जनार्दनं । वीर ! शोककिल मुंच सुतवार्चामहं लभे ॥७६॥ योऽतिमुक्तक इत्यासीदवधिज्ञानवान् मुनिः । स केवलमयं नेत्रं लब्ध्वा निर्वाणमाश्रितः ॥७७॥ योऽपि नेमिकुमारोऽत्र ज्ञानत्रयविलोचनः । जानन्नपि न स ब्रूयान विद्मो केन हेतुना ॥७८॥ अतः पूर्वविदेहेषु गत्वा सीमंधरं जिनं । संपृच्छच पुत्रवार्त्ता ते प्रापयामीति नारदः ॥७९॥ दत्तोत्तरो विनिर्गत्य रुक्मिणीभवनं गतः । शोकप्रालेयनिर्दग्धं दृष्टा तन्मुखपंकजं ॥८०॥ शोकवानपि चित्तेन वहिधैर्यमुपाश्रितः । अभ्युत्थायाचितस्तस्या न्यपीदिन्निकटासने ॥८१॥

सा तं पितृसमं दृष्ट्वा रुरोदोन्मुक्तकंठकं । सज्जनोपनिधौ शोकः पुराणोऽपि नवायते ॥८२॥ तस्याः शोकसमुद्रं स प्रक्षिपैन्निव दक्षिणः । आह्लादयन्मनोऽवादीदिति नारदसन्मनिः ॥८३॥ त्यज रुक्मिणि ! शोकं त्वं कचिज्जीवति ते सुतं । कथंचिद्रि नीतोऽि केनचित्पूर्ववैरिणा । ८४॥ दीर्घजीवितसद्भावं ननु तस्य महात्मनः । निवेदयति संभूतिर्वासुदेवात् त्विय ध्रुवं ॥८५॥ संयोगाश्च वियोगाश्च प्राणिनां प्राणवत्सले । वत्से भवंति संसारे सुखदुःखविधायिनः ॥८६॥ तत्र कमेवशज्ञानां ज्ञानोन्मीलितथीदृशां । प्रभवंति न ते वत्से यदूनामिव शत्रवः ॥८७॥ जिनशासनतत्त्वज्ञा संस्ति स्थितिवेदिनी । मा भूः शोकवशा वार्त्ता त्वत्सुतस्य लभे लघु ॥८८॥ इति तां नारदस्तन्वीमनुशिष्य वचोऽमृतैः । प्रयातो वियदुत्पत्य सीमंधरजिनांतिकं ॥८९॥ विषयेषु पुष्कलावत्यां नृसुरासुरसेवितं । नगर्यां पुंडरीकिण्यामहैतं स तमैक्षत ॥९०॥ कृतांजलिपुटस्तोत्रपवित्रीकृतवाग्मुखः । प्रणम्य जिनमासीनः स नरेंद्रसभांतरे ॥९१॥ तत्र पद्मरथश्रकी पंचचापशतोच्छ्रतिः । दशचापोच्छ्रतिं पश्यक्रारदं नरशंसितं ॥९२॥ कौतुकात्करपद्माभ्यामास्थायापृच्छदीश्वरं । मत्यीकृतिरयं नाथ ! कीटः किमभिधानकः ॥९३॥

ततः प्राह जिनस्तन्वं जंबूद्वीपस्य भारते । नारदो वासुदेवस्य नवमस्य हितोद्यतः ॥९४॥ किमर्थमागतो भर्त्तरिहायमिति पृच्छति । मूलतः कथितं सर्वे चक्रिणे धर्मचिक्रणा ॥९५॥ प्रद्युम्न इति नाम्नाऽसौ पितृभ्यां योक्ष्यते पुनः । संप्राप्ते षोडशे वर्षे प्राप्तषोडशलाभकः ॥९६॥ स प्रज्ञप्तिमहाविद्याप्रद्योतितपराक्रमः । देवानामपि सर्वेषामज्ञय्योऽत्र भविष्यति ॥९७॥ कीदृशं चरितं तस्य हृतो वा केन हेतुना । इति पृष्टो जिनोऽभाणीत्तस्मै नारदसिविधौ ॥९८॥ इह भारतवर्षेऽभूद्विषयं मगधाभिधे । शालिग्रामेऽग्रजन्मासौ सोमदेव इति श्रुतः ॥९९॥ अग्निला ब्राह्मणी तस्य स्वाहेवाग्नेः सुखावहा । अग्निभूतिरभूत्तस्या वायुभृतिश्च नंदनः ॥१००॥ बभूवतुरिमौ भूमौ वेदवेदार्थकोविदौ । छादितान्यद्विजच्छायौ यथा शुक्रबृहस्पती ॥१०१॥ वेदार्थभावनाजातजातिवादातिगर्वितौ । वाचाटौ चाटुभिः पित्रोर्हालितौ भोगतत्परौ ॥१०२॥ द्विरष्टवर्षमु स्त्रीषु स्वर्गबुद्धिं प्रकृत्य तौ । जातावत्यंतिविद्विष्टौ परलोककथां प्रति ॥१०३॥ अन्यदाऽऽगत्य संधेन महता नंदिवर्द्धनः । तत्रोद्याने गुरुस्तस्थौ श्रुतसागरपारगः ॥१०४॥ तद्वंदनार्थमद्वंद्वं चातुर्वर्ण्यमहाजनं । निर्गच्छंतं समालोक्य कारणं तावपृच्छतां ॥१०५॥ निवेदितं ततस्ताभ्यां द्विजेनैकेन साधुना । महच्छ्रमणसंघस्य वंदनार्थमिति स्फुटं ॥१०६॥

अस्मत्परः परः कोऽपि वंदनीयोऽस्ति भूतले। पश्यामस्तस्य महात्म्यमिति तौ मानिनौ गतौ।१०७॥ प्राप्तावपश्यतां विप्राववधिज्ञानचक्षुषं । जनसागरमध्यस्थं साध्विद्रं धर्मवादिनं ॥१०८॥ महिषाभ्यामिव क्षोमो माभूदाभ्यामिहाधुना । सद्धर्मश्रवणस्येति सुश्रुषुहितबुद्धिना ॥१०९॥ साधनाऽवधिनेत्रेण द्रात्सात्यिकना तको । इत आगम्यतां विप्रावित्याहृतौ पुरःस्थितौ ॥११०॥ ततो लोकस्तकौ दृष्टा सावष्टंभौ यतेः पुरः । आययुश्च पयःपूरैः प्राष्ट्रपीव महानदः ॥१११॥ अतः प्राह यतिः प्राप्तौ कुतः पंडितमानिनौ । प्राहतुस्तौ न कि ज्ञातौ शालिग्रामादिहागतौ॥१११॥ सात्यिकः प्राह सत्यं भोः शालिग्रामादुपागतौ । किंत्वनाद्यंतसंसारे संसरंतौ कुतो गतेः ॥११३॥ अन्यस्यापि च दुर्बोधमेतदित्युदिते यतिः । नैविमत्यगदीद् विप्रौ ! श्रूयतां कथयाम्यहं ॥ ११४॥ यामस्यास्यैव सीमांत शृगालौ कर्मनिर्मितौ । युवां परस्परप्रीतौ जातौ अन्मन्यनंतरे ॥११५॥ आसीत्प्रवरको नाम्ना ग्रामेऽत्रैव कृषीवलः । विष्ठः प्रकृष्य स क्षेत्रं महावर्षानिलादिंतः ॥११६॥ मुत्तवोपकरणं क्षेत्रे वटवृक्षतलेऽखिलं । कंपमानशरीरोऽगात् क्षुद्रोगातिवशीकृतः ॥११७॥ सप्ताहोरात्रवर्षेण प्राणिसंहारकारिणा । आद्रोपकरण ताभ्यां तिर्यग्भ्यां भक्षितं शुधा ॥११८॥ जातोदरमहाश्रुली प्रसद्यासद्यवेदनां । अकामनिर्जरायोगादर्जितेनोर्जितायुषा ॥११९॥

कालं कृत्वा युवां जातौ जातिगौरवगविंतौ । अग्निभूतिर्मरुद्भूतिः सोमदेवस्य देहजौ ॥१२०॥ पापपाकेन दोर्गत्यं सौगत्यं प्रण्यपाकतः । जीवानां जायते तत्र जातिगर्वेण कि दृथा ॥१२१॥ प्राप्तः पामरको दृष्टा कोष्टारौ नष्टजीवितौ । दृती कृत्वा कृती गेह तिष्ठतोऽद्यापि तद्दती॥१२२॥ सोऽपि मृत्वा सुतस्यैव सुतो भूत्वातिमानवान् । जातिस्मरः स्मरच्छायो मृपा मृक इव स्थितः॥१२३॥ स एष बुंधमध्यस्थो मामतीव विलोकते।इत्युक्तवाऽऽहुय तं मुकं सात्यकिः सत्यवाग् जगो॥१२४॥ स त्वं पामरको विष्ठः प्राप्तस्तोकस्य तोकतां । शोकं च सुकभावं च मुंच मुंच वचोऽमृतं॥१२५॥ जायतेऽत्र नटस्येव संसारे स्वामिभृत्ययोः । पितृपुत्रकयोर्मातृभार्ययोश्च विपर्ययः ॥१२६॥ घटीयंत्रघटीजाले जिटले कुटिले भवे । उत्तराधर्यमायांति जंतवः सततश्रमाः ॥१२७॥ इति विज्ञाय निस्सारं घोरं संसारसागरं । कुरु पुत्र ! दयामुलं व्रताख्यं सारसंग्रहं ॥१२८॥ इति साक्षात्कृते तेन पत्यये यतिना द्विजः । पर्यात पादयोस्तस्य प्रदक्षिणपुरःसरं ॥१२९॥ आनंदास्रपरीताक्षः पुनरुत्थाय विस्मयी । जगाद गद्भदालापः कृतांजलिपुटालिकः ॥१३०॥ अहो सर्वज्ञकलपस्त्वं वस्तुनस्तत्त्वमीश्वरः । अत्रत्यं पद्यसि स्पृष्टं जगत्त्रितयगोचरं ॥१३१॥ उन्मीलितं मनोनेत्रमज्ञानपटलाविलं । त्वया नाथ ! ममेहाद्य ज्ञानांजनशलाकया ॥१३२॥

अनादौ भवकांतारे महामोहांधकारिते । भ्रमतो मे पुने ! जातो बंधुस्त्वं मार्गदर्शनः ॥१३३॥ प्रसीद भगवन ! दीक्षां देहि दैगंबरीमिति । प्रासाद्य गुरुमासाद्य जग्राहानुमतां सतां ॥१३४॥ चरितं तस्य विप्रस्य श्रुत्वा दृष्ट्वा च तादृशं । श्रामण्यं केचिद्रापन्नाः केचित् श्रावकतां परां १३५ ताविष्ठवायुभूती तु विलक्षौ लोकगर्हितौ । स्विनकेतं पुनर्यातौ पितृभ्यामपि निदितौ ॥१३६॥ कायोत्सर्गिस्थतं रात्रौ मुनिमेकांतवर्शिनौ। जिघांसौ खडुहस्तौ तौ यक्षेण स्तंभितौ स्थितौ॥१३७॥ प्रभाते च जनो दृष्टा तौ यतेः पार्श्वयोः स्थितौ । निनिद् निदिताचारौ तावेतौ पातकाविति ॥१३८॥ तावित्यतां साधोः प्रभावोऽयमहो महान्। आवामयत्नतो येन स्तंभितौ स्तंभतां गतौ ॥१३९॥ कथंचिद् यदि मोक्षः स्यादस्माकं कुच्छ्तोऽमुतः। जिनधर्मे प्रपत्स्यामो दृष्टसामध्यमित्यपि।।१४०॥ तावत्तद्व्यसनं श्रुत्वा पितरौ शीघ्रमागतौ । पादलग्नौ मुनि तं तौ प्रसाद्यितुमुद्यतौ ॥१४१॥ करुणावानसौ योगी योगं संहत्य सुस्थितः। क्षेत्रपालकृतं ज्ञात्वा तमाह विनयस्थितं ॥१४२॥ क्षम्यतां यक्ष ! दोषोऽयमनयोरनयोद्भवः । कर्मप्रेरितयोः प्रायः कुरु कारुण्यमंगिनोः ॥१४३॥ इत्यासाद्य मुनेराज्ञां राज्ञामिव नियोगतः। यथाऽऽज्ञापयसीत्युक्तवा विससर्ज स तौ तदा ॥१४४॥

१ तूर्ण इत्यपि।

मुनिमासाद्य तौ धर्म श्रुत्वा द्विविधमप्यतः । अणुत्रतानि संगृद्य श्रावकत्वमुपागतौ ॥१४५॥ अनुपाल्य चिरं धर्म सम्यग्दर्शनभावितौ । कालेन कालधर्मेण जातौ सौधर्मवासिनौ ॥१४६॥ अश्रद्धाय मतं जैनं पितरौ तु मृतौ तयोः । यातौ कुयोनिपांथौ तौ यतो मिध्यात्वमोहितौ ॥१४७॥ देवौ देवसुखं भुक्तवा च्युत्वाऽयोध्यानिवासिनः। जातौ समुद्रदत्तस्य धारिण्यां श्रेष्ठिनः सुतौ ॥१४८॥ पूर्णभद्रस्तयोर्ज्येष्ठो मणिभद्रोऽनुजोऽभवत् । अविराधितसम्यक्तवौ तौ च शासनवत्सलौ ॥१४९॥ गुरोर्महेंद्रसेनाच धर्म श्रुत्वा पिताऽनयोः । तत्पुरेश्वरराजश्च भन्याश्चान्ये प्रवत्रज्ञः ॥१५०॥ अन्यदा मुनिपूजार्थं रथेन प्रिक्षितौ पुरः । चांडालं सारमेयीं च तौ दृष्टा स्नेहमागतौ ॥१५१॥ वंदित्वा तद्भरं भक्तया पृच्छतःसम सविसमयौ। शुनीचांडालयोः स्नेहः स्वामिन्नौ किमभूदिति।१५२। गुरुराहावधिज्ञानज्ञातलोकत्रयस्थितिः । विप्रजन्मनि यौ तौ वां पितरौ ताविमौ यतः ॥१५३॥ निशम्येति गुरुं नत्वा गत्वा तौ धर्ममूचतुः । भवांतरकथाप्रायमुपशांतौ ततस्तकौ ॥१५४॥ निर्वेदी दीनतां त्यक्तवा त्यक्तवाहारचतुर्विधं । मासेन श्वपचो मृत्वा भूत्वा नंदिश्वरोऽमरः ॥१५५॥ सारमेथीं पुरेऽत्रैव राजपुत्रित्वमागतां। अबोधयदसावेत्य स्वयंवरगतां सतीं ।।१५६॥ बातसंसारनिः सारा सम्यक्तवपरिभाविता । सितैकवसना कन्या प्रात्रज्ञवयावना ॥१५७॥

अनुष्ठाय चिरं श्रेष्ठं श्रावकवतमुत्तमं । संलिस्य भातरौ जातौ सौधर्मे मुरसत्तमौ ॥१५८॥ च्युत्वा पुनरयोध्यायां हेमनाभस्य भूपतेः । धरावत्यां सुतौ भूतौ मधुकैटभनामकौ ॥१५९॥ अभिषच्य मधुं राज्ये यौवराज्ये च कैटमं । हेमनाभो महाभागो व्रतं जैनेंद्रमग्रहीत् ॥१६०॥ मधुकैटभवीरौ तावेकवीरौ धरातले । भूतावद्भुततेजस्को स्र्याचंद्रमसाविव ॥१६१॥ अक्षद्रः क्षुद्रसामंतैरंधकार इवैतयोः । गिरिदुर्गमुपाश्रित्य भीमकः प्रत्यवस्थितः ॥१६२॥ तद्वशीकरणार्थं तौ चेलतुर्मधुकैटभौ। माप्तौ वटपुरं यत्र वीरसेनोऽविवष्ठते ॥१६३॥ अभ्यद्रतेन तेनासौ प्रीतेन मधुरादरात् । सांतःपुरेण वीरेण स्वामभक्त्यातिमानितः ॥१६४॥ चंद्राभा चंद्रिकेवाऽस्य मानिनी रूपमानिनी । अहरन्मधुराजस्य मनो मधुरभाषिणी ॥१६५॥ शस्त्रशास्त्रकठोराऽपि चंद्राभादर्शनान्मधोः । आर्द्रभावमगाद् बुद्धिश्चंद्रकांतशिला यथा ॥१६६॥ राज्यं यदनया युक्तं रूपसीभाग्ययुक्तया । सुखाय तदहं मन्ये वियुक्तं तु विष्रेषुमं ॥१६७॥ चंद्राभयोपगृहस्य महोदयमहीभृतः । संपूर्णस्येव चंद्रस्य कलंकोऽप्यतिशोभते ॥१६८॥ चंद्राभासंगसंजाताविकासस्य सुगंधितां । कुमुदाकरराजस्य पंकगंधो न बाधते ॥१६९॥

इति संचित्य रागांधः स तस्या हरणे मनः । न्यधत्त मधुरुवींशो मतिमानपि मान्यपि ॥१७०॥ ततो भीमकमुद्वृत्तं वशीकृत्य कृती मधुः । अयोध्यापुरमागत्य चंद्राभाहृतमानसः ॥१७१॥ सांतःपुरान् स्वसामंतान् स्वपुरं स्वपुरिध्यतान् । सत्त्वरं सत्त्वसंपन्नः समाहृय यथायथं ॥१७२॥ सर्वान् संपूज्य संपूज्य विचित्रांवरभूषणैः । विससर्ज निजावासान् प्रसादाह्वादिताननान् ॥१७३॥ अतिसन्मान्य सस्त्रीकं तथा वटपुरेश्वरं । अजीगमदतिप्रीतं प्रीतिपूर्वं निजास्पदं ॥१७४॥ चंद्रभायास्तु यद् योग्यमद्याप्याभरणं वरं। न सज्जमिति तावत्सा तेन रुद्ध्वा निजीकृता।।१७५॥ प्रभुत्वमिखलस्त्रीणां महादेवीपदेन सः । दत्त्वा कामान् यथाकामं न्यषेवत तथा मधुः ॥१७६॥ तस्याः कौमारभर्का तु वियोगानलदीपितः । उन्मन्ततां परां प्राप्तः पर्यटन् क्षितिमाकुलः ।१७७। चंद्रामालापवार्त्तारः पुररध्यासु पयटन् । धूसरो वीक्षितो जातु प्रासादस्थितया तथा ॥१७८॥ यातकारुण्ययाऽवाचि मधुराजस्ततोऽनया । नाथ ! पूर्वपति पञ्य भ्रमंतं मे प्रलापिनं ॥१७९॥ तिसमन्नवसरे चंडैस्तैः कश्चित्पारदारिकः । गृहीत्वा दर्शितस्तस्मै नृपाय न्यायवेदिने ॥१८०॥ किमिह देवदंडोऽस्य तेनोक्तं सापराधवान् । अत्यंतपापभागेष तस्मादस्य विधीयते ॥१८१॥ इस्तपादिशिरच्छेदं देहदंडं भयास्पदं । देव्या चोक्तं तदा देव ! अयं दोषो न कि तद ॥१८२॥ तद्वचसा स म्लानो हि हिमानी इतपद्मवत् । चितयेदनया तथ्यं ममोक्तं हितामेच्छया ॥१८३॥ परस्त्रीहरणं सत्यं दुर्गतेर्दुः खकारणं । ज्ञात्वा विरागिणं कांतं ऊचे सापि विरागिणी ॥ १८४॥ किं मोगैरी हर्नेः कृत्यं परस्रीविषयैः प्रभो । किंपाकसहर्नेः स्वामिन् ! दुःखदैः प्रीणकैरिप ॥१८५॥ मोगास्ते स्वपरयोर्थे नोपतापस्य हेतवः । सम्मताः साधुलोकस्य नेतरे विषयात्मकाः ॥१८६॥ इति प्रबोध्यमानोऽयं मधुश्रंद्राभया शनैः । मुमोच सुदृढीभूतं मोहकादंबरीमदं ॥ १८७ ॥ जगाद च स तां देवीं प्रसन्नमितरादरात्। साधु! साधु! त्वयां साध्वि! प्रतिपादितमत्र मे ॥१८८॥ न युक्तमीदृशं कर्म पुंसामाचरितुं सतां । परपीडाकरं वाढं परत्रेह च पापकृत् ॥ १८९॥ 🛸 मादृक्षोऽपि यदीदृक्षं कर्म लोकविगिर्दितं । करोति तत्र किं वाच्यमच्युत्पन्नः पृथग्जनः ॥१९०॥ स्वकलत्रेऽपि यत्राऽयं रागोऽत्यर्थं निषेवतः । कर्मबंधस्य हेतुः स्यात् किं पुनः परयोषिति॥१९१॥ श्नानांकुशनिरुद्धोऽपि मनोमत्तमहाद्विपः । उत्पथेन नवत्युग्नः किमत्र कुरुते बुधः ॥ १९२ ॥ निरुद्धच निशितैर्दें हैरनं कुशमनोगजं । प्रवर्त्तयंति ये मार्गे के चिदेवात्र ते भटाः ॥ १९३॥ दंडमेनोगजो मत्तो रतिवासितया हतः । यावन युज्यते तावत् कुतस्तस्य मदक्षितिः ॥ १९४॥ प्रयत्नेन मनोहस्ती यावनात्र वशीकृतः । तावदारोहकस्यापि भयायैव न शांतये ॥ १९५॥

सुवशस्तु मनोहस्ती तपोमयरणक्षितौ । पापसेनां निगृह्णाति साध्वाधीरणनोदितः ॥ १९६ ॥ शब्दरूपरसस्पर्शगंघसस्याभिलाषिणः । हृषीकमृगयूथस्य मनोमारुतहारिणः ॥ १९७॥ निरूप्य प्रसमं धैर्थ दढवागुरया चितं । चिरसंचितपापस्य करोमि तपसा क्षयं ॥ १९८ ॥ इत्याभाष्य मनोवेगं निगृह्य विद्धे मधुः । धियं बोधपयोधौ तां तापस्ये तापशांतये ॥१९९॥ आगत्य च तदाऽयोध्यां नाम्ना विमलवाहनः । मुनिर्मुनिसहस्रेण सहस्राम्रवनेऽवसत् ॥२००॥ मधुः सकैटभः श्रुत्वा तमयात्सबधूजनः । प्रपूज्य विधिना धर्मे श्रुश्राव च विशेषतः ॥ २०१ ॥ भोगसंसारशारीरपुरवैराग्यसंगतः । प्रवत्राज सह भ्रात्रा क्षत्रियैर्वहुभिर्मधुः ॥ २०२ ॥ विशुद्धान्वयसंभूताः शतशोऽथ सहस्रशः । पात्रजन् व्रतशीलाढ्याश्रंद्राभाद्या नृपास्त्रयः ॥२०३॥ माधवोऽपि निजं राज्यं ररक्ष कुलवर्धनः । वर्धमानः स्वशरीरेण पौरुषेण जयेन च ॥ २०४॥ चक्रतुस्तौ तपो घोरं राजानौ मधुकैटभौ । व्रतगुप्तिसमित्याद्यौ निर्प्रयौ ग्रंथवर्जितौ ॥ २०५ ॥ एक एव तयोरासीदंगोपांगपरिग्रहः । न बाह्याभ्यंतरासंगादंगोपांगपरिग्रहः ॥ २०६॥ षष्ठाष्टमादिषण्मासपर्यतो पोषितावृषी । निःशेषैरागमोक्तैस्तो चक्रतः कमीनर्जरां ॥ २०७ ॥

त्रिचत्वारिंदाः सर्गः।

उत्तंगिगिरशृंगेषु तयोरातापनस्थयोः । स्वेदस्य विदवः पेतुर्विलीनस्येव कर्मणः ॥ २०८ ॥ वर्षासु जीवरक्षार्थं वृक्षमूलस्थयार्वपुः । युधीव शरधाराभिने भिन्नं धृतिकंटकं ॥ २०९ ॥ यामिनीषु मनीषिभ्यां हैमनीषु हिमानिलाः। सेहिरे प्रतिमास्थाभ्यां देहच्छायाब्जनीप्खुषः।२१०। अनुप्रेक्षाभिरुद्धाभिर्धभेचारित्रशुद्धिभिः। चऋतुः संवरं धीरौ परीषहजयेन च ।। २११।। स्वाध्यायध्यानयोगस्थौ वैय्यावृत्त्यिकयोद्यतौ । रत्नत्रयविशुद्धचा तौ दृष्टौ दृष्टांततां गतौ । २१२॥ बहुवर्षसहस्राणि संचितोरुतपोधनौ । मधुकैटभयोगीशौ शल्यदोषविवर्जितौ ॥ २१३ ॥ अंते सम्मेदमारुद्य प्रायोपगमनेन तौ । मासक्षपणयोगेन समाराध्योज्झितांगकौ ॥ २१४ ॥ आरणाच्युतकरुपे ताविद्रं सामानिकौ प्रभू । देवीदेवसहस्राणां यातौ प्रत्येकमीश्वरौ ॥ २१५ ॥ द्वाविंशतिपयोराशिप्रमाणपरमायुषौ । बुभुजाते सुखं सम्यक् सम्यग्दर्शनभावितौ ॥ २१६ ॥ अवतीर्य मधुर्जातो रुक्मिणीकुक्षिभूमणिः । कृष्णस्य भारते पुत्रो नाम्ना प्रद्युम्न इत्यसौ ॥२१७॥ कैटमोऽपि दिवश्रयुत्वा भातास्यैव भविष्यति । जांबवत्यां महादेव्यां शंबः कृष्णनिमद्युतिः २१८ जन्मांतरमहाप्रीत्या परस्परहितोद्यतौ । धीरौ चरमदेहौ तौ शंबप्रद्युम्नसुंदरौ ॥ २१९॥ कांताविरहसंतापादा तिष्यानपरायणः । श्रांत्वा संसारकांतारं चिरं वटपुरप्रभुः ॥२२०॥

मनुष्यभावमापन्नः स भूत्वाऽज्ञानतापसः । धूमकेतुरिवोद्दीप्तो धूमकेतुरभूतसुरः ॥ २२१ ॥ प्राक्स्रीवैरानुबंधेन सप्रबोधमुपेयुषा । शिक्षं व्ययोजयनमात्रा धिग्वैरं पापवर्धनं ॥ २२२ ॥ प्रद्यम्नो रक्षितोऽपायात्स्वपुण्यैः पूर्वसंचितैः । पुण्यानामेव सामर्थ्यमपायपरिरक्षणे ॥२२३॥ सीमंघरजिनेंद्रेण तदानीमिति भाषितं । श्रुत्वा पद्मरथश्रकी प्रणनाम प्रमोदवान् ॥ २२४ ॥ नारदोऽपि जिनं नत्वा प्रमोदेन वशीकृतः । समुत्पत्य मरुन्मार्गे मेघकूटं समाययौ ॥ २२५ ॥ कालसंवरमानंद्य पुत्रलाभोत्सवेन सः । देवीं कनकमालां च स्तुत्वा पुत्रवतीं मुद्धः ॥२२६॥ रुक्मिण्यास्तनुजं दृष्टा कुमारशतसेवितं । गूढवृत्तप्रमोदेन रोमांचमभजत्परं ॥ २२७ ॥ प्रणामेनार्चितस्तेषां दत्वाशिषमतिद्वतं । वियदुत्पत्य संप्राप्तो द्वारिकां नारदो मुनिः ॥२२८॥ यथागतं यथादृष्टं यथाध्रुतमशेषतः । स प्रद्युम्नकथां कृत्वा याद्वेभ्यो मुदं ददौ ॥ २२९ ॥ देवीं च रुक्मिणीं दृष्टा विकासिम्रखपंकजः । सीमंधरिजनेंद्रोक्तं प्रतिपाद्य पुनर्जगौ ॥ २३०॥ दृष्टो रुक्मिणि ते पुत्रो मया ऋडिन् कुमारकः । खचरेशगृहे देवकुमार इव रूपवान् ॥ २३१ ॥ लन्धपोडशलामोयं कृतप्रक्षप्तिसंग्रहः । अमोधं पोइशे वर्षे समेष्यति सुतस्तव ॥ २३२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः।

तस्यागमनवेलायामुद्याने तव रुक्मिण । शिखी कूजिष्यतेऽत्युचैरकाले प्रियम्चनः ॥२३३॥ शुष्का तद्गतवेलायामुद्यानमणिवापिका । सुतागमनवेलायां पूर्यते सांबुजांबुना ॥ २३४ ॥ तव शोकापनोदाय शोकापनुदसूचकः । अशोकः पादपोऽकाले म्रंचत्यंकुरपछवान् ॥ २३५ ॥ मुकीभूय स्थितास्तावद्यावत्प्रद्यम्नद्रता । प्रत्यासन्ने पुनर्मुका मुकभावं विद्यंचति ॥ २३६ ॥ सुतागमनवेलैत निर्मितैर्लक्ष्यतां स्फुटैः । सीमंघरिवभोवीक्यं मान्यथामंस्त मानिता ॥ २३७ ॥ आकर्ण्य नारदीयं तद्विमणी वचनं हितं । श्रद्धाय प्रणतावोचदिति सा प्रश्नुतस्तनी ॥२३८॥ बंधुकार्यमिदं साधु वात्सल्योद्यतचेतसा । कृतं त्वयाद्य मे सद्यो भगवन्परदुष्करं ॥२३९॥ पुत्रशोकाग्निदग्धाहं निरालंबा त्वया ग्रुने । दत्वा साधारिता धीर!नाथ! हस्तावलंबनं ॥२४०॥ प्रोक्तं सीमंधरेशेन सर्वज्ञेनेह यद्यथा । तत्तथास्ति ममावश्यं जीवंत्याः पुत्रदर्शनं ।। २४१ ॥ जीवामि जिनवाक्येन कठिनीभूतमानसा । व्रज त्वमधुना स्वेच्छं पुनर्दर्शनमस्तु ते ॥ २४२ ॥ सप्रणाममिति प्रोक्तो दत्ताशीनीरदो ययौ । मुक्तशोका हरेरिच्छां प्रयंतीव सा स्थिता ॥२४३॥

१ ' सुतागमन ' इति ख पुस्तके ।

मनुजदेवनरामरमर्त्यजं विश्वधजं च शिवाभ्युदयावहं । मदनशंबपुराचरितं जनश्ररतु भक्तिमना जिनशासने ॥ २४४ ॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनेसनाचार्यकृता शंबप्रयुम्नवर्णना नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः।

चतुश्रत्वारिंशः सर्गः।

भामायास्तनुजः श्रीमान् भानुभामंडलद्युतिः । भानुर्नाम्ना महिम्नासौ ववृधे बालभानुवत् ॥१॥ भानुना वर्धमानेन भानुभानुनिभौजसा । सूनुना सत्यभामाया मानशैलः प्रविधितः ॥२॥ अन्यदा नारदोऽवादि कृष्णेन भगवन् ! कुतः । आगतोऽस्यधुनास्यं ते कथयत्यिषकां मुदं॥३॥ सोऽवोचदक्षिणश्रेण्यामस्ति जंब्पुरे खगः । जांबवः शिवचंद्रास्य चंद्रास्या वस्त्रभा तयोः ॥४॥ विश्वकृतयशाः पुत्रो विश्वकसेन इतिश्रुतिः । कन्या जांबवती नाम्ना श्रीरिव स्वयमागता ॥५॥ जाह्मवीमवतीणीं तु सखीभिः स्नातुमुद्यतां । चंद्रलेखामिवोदारां कांतताराभिरावृतां ॥६॥ गंगाद्वारगैतामंगतुंगवृत्तपयोधरां । हर वीरपराश्चयां जांबवस्येत्र वाहिनीं ॥७॥

१ 'गंगाद्वारवतीं ' इति स पुस्तके।

इति नारदवाक्येन सस्नेहेन हरिस्तदा । पोदीपितः समुत्तस्थौ धृतेनेव हुताशनः ॥८॥ अनावृष्टिबलोपेतस्तं प्रदेशमितोऽचिरात् । प्रारब्धमज्जनकीडामपश्यत्कन्यकां हरिः ॥९॥ सहसा कन्ययादिश हरिरिंदीवरद्यतिः । ततों अगजेन तौ विद्धौ शरैः पंचिमरेकदा ॥१०॥ दोभ्यीमालिंग्य तां गाढैः सुखामीलितलोचनां। आमीलितेक्षणो जहे द्रेपितश्रीरतिहियं ॥११॥ सखीनामभवतुंगस्तत्र चार्कदनः स्वनः । समीपशिविरच्यापी कन्याहरणकारणः ॥१२॥ श्रुत्वा कन्यापिता ऋदः खड्गोद्यतकरः खगेट्। सम्रुत्पत्य लघु प्राप्तः कनत्खेटकहस्तकः ॥१३॥ अनावृष्टिस्ततस्तस्य खेटको खड्पाणिकं । रणातिथ्यं स खे कृत्वा बबंध खचराधिपं ॥१४॥ आनीय नीतिविद्वीरो विष्णवे तमदर्शयत् । सूनुं जामातिर न्यस्य स ययौ तपसे वनं ॥१५॥ जांबवत्या विवाहेन परमानंदमाश्रितः । विश्वक्सेनयुतो विष्णुद्वीरिकामगमिक्नजां ॥१६॥ प्रासादस्योपकंठे च रुक्मिण्या मुदितात्मनः। प्रासादं प्रददौ दिच्यं जांबवत्यै जनार्दनः ॥१७॥ सन्मान्य भातरं तस्या विसृज्य निजमास्पदं । अरीरदिमां भोगी भोगैर्भूतलदुर्लभैः ॥१८॥ परस्परगृहाजस्रगत्यागमनवर्षिता । रुक्मिणी जांबवत्योः प्राग्जाता प्रीतिरखंडिता ॥१९॥ श्रक्षणधीः श्रक्षणरोमाख्यो राजाभूर्तिसहलेश्वरः । तद्वशीकृतये सौरिर्जात दूतमजीगमत् ॥२०॥

गरबा गरयाशु द्रतस्तं प्रतिकूलमबेदयत् । लक्ष्मणां लक्षणोपेतां तस्कन्यां चापिशार्द्धिणः ॥२१॥ सस्वरं स ततो गस्वा हिलना सह सम्मदी । समुद्रं स्नातुमायातामद्राक्षीदायतेक्षणां ॥२२॥ द्भमसेनं महावीर्य हत्वा सेनापति युधि । हत्वा चेतः स्वरूपेण रुपिणीमहरतपुनः ॥२३॥ उपयम्य समानीय लक्ष्मणां लक्ष्मणप्रभुः । जांबवत्या गृहाभ्यर्णगृहे स रमतिस्म तां ॥२४॥ तस्या भ्राता महासेनः समागत्य नते। हरिं। सन्मान्य मानिना मुक्तः सिंहलद्वीपमभ्यगात्।।२५॥ राष्ट्वर्धन इत्यासीत्सुराष्ट्राधिपतिर्नृपः । अजाखुरी पुरी चास्य विनया वनितोत्तमा ॥२६॥ तस्यां नम्रचिनाम्नाभूत्तनयो नयविक्रमी। तनया च सुसीमाख्या सुसीमा वसुधा यथा ॥२७॥ युवराजः स नमुचिः क्षितिविश्वतपौरुषः । राज्ञोवमन्यते मान्यानभिमानमहागिरिः ॥२८॥ नशुचिश्र सुसीमा च समुद्रं स्नातुमागतौ । हितेन हरये तेन नारदेन निवेदितौ ॥ २९ ॥ प्रभासतीर्थतीरस्थसैन्यं तं सीरिणा हरिः । गत्वा निहत्य हृत्वा तां कन्यां द्वारवतीमगात् ॥३०॥ लक्ष्मणाभवनाभ्यणी सीवर्ण अवनोत्तमं । दत्वा सीधं यथारंस्त सीमंतिन्या सुसीमया ॥३१॥ राष्ट्रवर्धनराजोऽपि सुतायै सुपरिच्छदं । प्रजिघाय रथेमादिप्राभृतं प्रभवे यथा ॥३२॥ सिंधुदेशाधियो मेरुरिक्ष्वाकुकुलवर्धनः । पुरे वीतभये चासीचंद्रवत्यस्य भामिनी ॥३३॥

गौरी नामाभवत्तस्यां गौरी वर्णेन कन्यका । गौरीव रूपिणी विद्या गौरीतिरहितेव सा ॥३४॥ द्तप्रेषणपूर्व स मेरुः प्रेषयतिसम तां । नैमित्तिकवचः समर्ता हरये हरिणेक्षणा ॥३५॥ परिणीय हरिगौरीं मनोहरणसारिणीं । सुसीमासदनाभ्यर्ण प्रादात्प्रासादमुचकैः ॥३६॥ अरिष्टपुरनाथस्य सीरिणो मातुलस्य तु । राज्ञो हिरण्यनाभस्य श्रीकांतायां सुयोषिति ॥३७॥ पद्मावतीं समुत्तपत्रां कन्यां पद्मामिव स्वयं । स्वयंवरगतां श्रुत्वा संप्राप्तौ रामकेशवौ ॥३८॥ सगौरविमभौ दृष्टावनावृष्टिपुरस्सरौ । श्रीत्या हिरण्यनाभेन स्वजनस्नेहवर्धनौ ॥ ३९ ॥ पित्रा हिरण्यनामस्य सत्रा प्राव्रजदग्रजः । पुरैव रेवतो नाम्ना महिम्ना यो वनश्रितः ॥४०॥ चतस्रस्तत्सुताः कन्या रेवती बंधुमत्यपि । सीता राजीवनेत्रा च ता दत्ताः सीरिणे पुरा ॥४१॥ स्वयंवरे प्रवृत्तेऽत्र हृत्वा पद्मावतीं हठात् । रणशैं।डान्ममदीशु शौरिराहवदक्षिणः ॥४२॥ परिणीय सभायीं तौ स्नातरी स्नातृभिर्युतौ । द्वारिकामरमायातावरंसातां सुरोपमौ ॥४३॥ गौरी गृहसमीपे च पद्मावत्यै गृहं हरिः। पदाय प्रमदोपेतः प्रसादपरमोऽभवत् ॥४४॥ नगर्यो पुष्कलावत्यां गांधारविषये अभवत् । भूभृदिद्रिगिरिस्तस्य मेरुसत्यभिधा प्रिया ॥४५॥ मुत्रो हिमगिरिस्तस्यां जातो हिमगिरिस्थरः। गांधारी दुहिता चार्वी गंधवीदिकलाधिका॥४६॥: श्रात्रा हयपुरींद्राय सुमुखाय ततो हरिः । दीयमानां विदित्वैनां नारदादरमागतात् ॥४७॥ गत्वा हिमगिरिं हत्वा प्रतिकूलं रण।जिरे । तां हत्वानीय सौम्यास्यामुपयम्य ससम्मदः ॥४८॥ पद्मावत्या गृहोपांते गांधार्ये भवनं वरं । विवीर्य धैर्यसंपन्नामेनां भोगरमानयत् ॥४९॥ महादेवीभिरिष्टाभिरष्टाभिरवरोधने । प्रसाधिताभिराज्ञाभिरिव ताभिरुपासितः ॥५०॥ विंदन् भोगफलं भूरि गोविंदः पुण्यवृक्षजं । संददज्जनतानंदं ननंद पुरुपौरुषः ॥५१॥ कृतरणं प्रविभूय पुरःस्थितं रिपुगणं तृणवत्क्षणमात्रतः । वरवधूवररत्नमयत्नतः श्रयति भव्यजनो जिनधर्मकृत् ॥५२॥

इति अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ जांबवत्यादिमहादेवीलाभवर्णनो नाम चतुश्चत्वारिशः सर्गः।

पंचचत्वारिंशः सर्गः ।

अथ प्राप्ता महासत्त्वास्तदा द्वारवतीं पुरीं । भागिनेया दशाहीणां प्रसिद्धाः पंच पांडवाः ॥१॥ युधिष्ठिरोऽर्जुनो ज्येष्ठो भीमसेनो महाबलः । नकुलः सहदेवश्च पंचैते पांडुनंदनाः ॥२॥ मागधोऽत्रांतरेऽप्राक्षीत्प्रांजलिर्गणनायकं । अन्वये भगवन् ! कस्य पांडुः पांडवनंदनाः ॥३॥

गण्याह कुरुराजानामन्ववाये महोदये । शांतिकुंश्वरनामानो यत्र तीर्थकरास्त्रयः ॥४॥ आदितः कुरुवंदयानां चतुर्वर्गोपसेविनां । कतिचिन्मागधा ख्यामि श्रृणु नामानि भूभृतां ॥५॥ कुरुजांगलदेशस्य कुरुभूमिसमस्य हि । अभूतां भूषणौ भूषौ यौ हास्तिनपुरे परे ॥६॥ श्रयान सोमप्रभश्रेति कुरुवंशिवशेषकौ । नाभयसमकालौ तौ दानधर्मस्य नायकौ ॥७॥ तत्र सोमप्रभस्याभूत्कुमारो जननायकः । मेघस्वरस्स एवात्र भरतेन कृताभिधः ॥८॥ तस्मात्कुरुरभूत्तास्मात्कुरुचंद्रस्तु नंदनः । ततः शुभंकरो राजा जातो धृतिकरस्ततः ॥९॥ राज्ञां कोटिषु कालेन समतीतासु भूरिषु । जिनांतरेषु चानेकसागरोपमकोटिषु ॥१०॥ धृतिदेवो घृतिकरो गंगदेवादयस्तथा । धृतिमित्रधृतिक्षेत्रसुत्रतत्रातमंदराः ॥११॥ श्रीचंद्रसुप्रतिष्ठाद्या व्यतीता शतशो नृपाः । धृतपद्मो धृतेंद्रश्च धृतवीर्यः प्रतिष्ठितः ॥१२॥ इत्यादिषु व्यतीतेषु धृतिदृष्टिर्धृतिद्युतिः । धृतिशीतिकराद्याश्च व्यतीता कुरुवंशजाः ॥१३॥ ततो भ्रमरघोषाख्यो हरिघोषो हरिध्वजः । सूर्यघोषः सुतेजाश्र पृथुश्र पृथिवीपतिः ॥१४॥ इभवाहननामाद्याः समतीतास्ततो नृपाः । विजयाख्यो महाराजो जयराजस्ततोऽभवत् ॥१५॥ ततः सनत्कुमारोभूचतुर्थश्रकवर्तिनां । रूपपाशसमा कृष्टसुरबोधितदीक्षितः ॥१६॥

सुकुमारः सुतस्तस्य तस्माद्वरकुमारकः । विश्वो वैश्वानरश्वाभूदिश्वकेतुर्वृहध्वजः ॥१७॥ विश्वसेनस्ततो जातो यस्यैरा प्राणवस्त्रभा । तत्सुतः पंचमश्रकी शांतिः षोडशतीर्थकृत् ॥१८॥ नारायणो नरहरिः प्रशांतिः शांतिवर्धनः । शांतिचंद्रः शशांकांकः कुरुश्च कुरुवंशजाः ॥१९॥ एवमाद्येष्वतीतेषु सर्योऽभूद्यस्य भामिनी । श्रीमती तीर्थकृत्कुंथुस्तयोश्वऋधरोऽपि सः ॥२०॥ अतिक्रांतेषु भूषेषु ततोऽपि बहुषु क्रमात् । राजा सुदर्शनो जातो यस्य मित्रा प्रियांगना ॥२१॥ तयोरर इति ख्यातः सप्तमश्रकवितां । कृती तीर्थकराणां च यतोष्टादशमंख्यकः ॥२२॥ ततः सुचारुश्रारुश्र चारुरूपोथ वीर्यवान् । चारुपद्मस्तथान्येषु समतीतेषु राजसु ॥२३॥ पद्ममालः सुभौमश्र जातः पद्मरथो नृपः । ततश्रकी महापद्मो विष्णुपद्मो तु तत्सुतौ ॥२४॥ सुपद्मः पद्मदेवश्च कुलकीर्तिस्ततः परः । कीर्तिः सुकीर्तिकीर्ती तौ वसुकीर्तिश्च वीर्यवान् ॥२५॥ वासुकिर्वासवाभिरूयो वसुः सुवसुरेव च । कुरुवंशिश्रयो नाथः श्रीवसुश्र वसुंधरः ॥२६॥ जज्ञे वसुरथस्तस्मादिंद्रवीर्यश्च वीर्यवान् । चित्रो विचित्रो वीर्योध विचित्रोऽपि महाबेलः ॥२७॥ ततो विचित्रवीर्योऽभूत्ततश्चित्ररथो नृषः । महारथो वृतरथो वृषानंतो वृषध्वजः ॥२८॥ श्रीवतो वत्रधर्मा च धृतो धारण एव च । महासरः प्रतिसरः शरः पारशरो नृषः ॥२९॥

शरद्वीपश्च राजासौ द्वीपो द्वीपायतो नृपः । सुशांतिः शांतिभद्रश्च शांतिषेणश्च भूपतिः ॥३०॥ भत्ती योजनगंधाया राजपुत्र्यास्तु शांतनुः । तनयः शंतनोर्भूभृद्धृतव्यास इति स्मृतिः ॥३१॥ धृतधर्मा ततस्तस्य तनयोऽपि धृतोदयः । धृततेजा धृतयशा धृतमानो धृतो नृपः ॥३२॥ ततोऽपि धृतराजोभूत्तस्य तिस्रः प्रियांगनाः। अंबिकांबालिकांबाख्या वेद्याभिजनसंभवाः ॥३३॥ धृतराष्ट्रश्च पांडुश्च विदुरश्च विदांवरः । यथाऋममभी तासां तिसृणां तनयास्त्रयः ॥३४॥ भीष्मोऽपि शांतनोरेव संताने रुक्मिणः पिता । यस्य गंगाभिधा माता राजपुत्री पवित्रधीः ॥३५॥ धृतराष्ट्रस्य तनया दुर्योधनपुरस्सराः । नयपौरुषसंपन्नाः परस्परहितेरिताः ॥३६॥ पाँडोः कुंत्यां समुत्पन्नः कर्णः कन्याप्रसंगतः । युधिष्ठिरोर्जुनो भीम ऊढायामभवंस्रयः ॥३७॥ नकुलः सहदेवश्र कुलस्य तिलको सुतौ । मद्रचामद्रिस्थिरौ जातौ पंच ते पांडुनंदनाः ॥३८॥ पांडी स्वर्ग गते देव्यां मद्रचां च जिनधर्मतः । पांडवा धार्तराष्ट्राश्च राज्येऽभृवन्विरोधिनः ॥३९॥ विभज्य कीर्व राज्यं ग्रंजतां समभागतः । पंचानामेकतस्तेषामितरेषां तथैकतः ॥४०॥ भीष्मश्र विदुरे। द्रोणो मध्यस्थाः शक्कनिः पुनः । मंत्री दुर्योधनस्येष्टाः शशरोमाद्यस्तथा ॥४१॥ अजर्य सह कर्णेन वर्य दुर्योधनस्य तु । जरासंधेन नैभूत्यं निभृतस्याभवत्तरां ॥४२॥

भार्गवाचार्यकं द्रोणो धनुर्वेदविशारदः । कौतेयधार्तराष्ट्राणां चक्रे मध्यस्थभावतः ॥४३॥ भार्गवाचार्यवंशोऽपि श्रृणु श्रेणिक वर्ण्यते । द्रोणाचार्यस्य विख्याता शिष्याचार्यपरंपरा ॥४४॥ आत्रेयः प्रथमस्तत्र तिच्छिष्यः कौंडिनिः सुतः । तस्याभूदमरावर्तः सितस्तस्यापि नंदनः ॥४५॥ वामदेवः सुतस्तस्य तस्यापि च कपिष्टकः । जगत्स्थामा सरवरस्तस्य शिष्यः शरासनः ॥४६॥ तस्माद्रावण इत्यासीत्तस्य विद्रावणः मुतः । विद्रावणसुतो द्रोणः सर्वभागेववंदितः ॥४७॥ अश्विन्यामभवत्तस्मादश्वत्थामा धनुर्धरः । रणे यस्य प्रतिस्पर्धी पार्थ एव धनुर्धरः ॥४८॥ पार्थप्रतापविज्ञानमात्सर्योपहता अथ दुर्योधनादयः कर्तुं संधिदृषणमुद्यताः ॥४९॥ पंच कौरवराज्यार्थमेकतः शतमेकतः । भुंजंति किमितोन्यत्स्यादन्याय्यामिति ते जगुः ॥५०॥ समुद्रा इव चत्वारस्ततः परुषवायुभिः । अपि प्रसन्नगंभीराः क्षुभिताः पांडुनंद्नाः ॥५१॥ छादयामि द्विषच्छेलं शरधाराभिरुच्छितं । इत्युत्थितोऽर्जुनोंऽभोदः शमितोऽग्रजवायुना ॥५२॥ दृष्ट्या दहामि दायादशतिनत्युदितं ब्रुवन् । मंत्रेणाशीसमज्ज्यायान् स्फुरद्धीमभुजंगमं ॥५३॥ अहिताय कुलांताय नकुलोऽपि कृतोद्यमः । ज्येष्ठेन सनयं रुद्धो भूजपंजरयंत्रितः ॥५४॥ भस्मयामि लघु द्वेषिवनखंडमिति ज्वलन् । अशामि ज्येष्ठमेघेन सहदेवदवानलः ॥५५॥

वसतां शांतचित्रानां दिनैः कतिपर्यरपि । प्रसुप्तानां गृहं तेषां दीपितं धृतराष्ट्रजैः ॥५६॥ विबुध्य सहसा मात्रा सत्रा ते पंचपांडवाः । सुरंगया विनिःसृत्य गताः काप्यपभीरवः ॥५७॥ ततो अपरागो लोकस्य जातो दुर्योधनं प्रति । क वा पापानुरागाढ्ये नापरागः सतो भवेत् ॥५८॥ प्रलीनानेव तान्मत्वा पांडवान्गोत्रजास्ततः । निवृत्ता इव ते तस्थुः कृतकालोचितिक्रयः ॥५९॥ नदीं गंगां समुत्तीर्य कौंतेयास्तु महाधियः । कृतवेषपरावर्तास्ते पूर्वो दिश्रमासृताः ॥६०॥ कुंतीगतिवशेनैते गच्छंतः सुखिमच्छया । कौशिकाख्यां पुरीं प्राप्ता वर्णो यत्र नरेश्वरः ॥६१॥ तस्य प्रभावती भार्यो सुता कुसुमकोमला । जनानुरागतस्तास्तान् श्रुत्वा दृष्टवती तदा ॥६२॥ युधिष्ठिरकुमारेंदुदर्शनेन सुदर्शना । कन्या कुमुद्रती धन्या विकासमगमत्परं ॥ ६३ ॥ अचितयदसौ तस्य भाविनी प्रियभामिनी । इह जन्मनि मे भूयादयमेव परो वरः ॥६४॥ ज्ञात्वाभिप्रायमस्या स संजातप्रेमबंधनः । आशाबंधं प्रदश्यीगात्सं इयेव करप्रहे ॥६५॥ प्रतीक्ष्यमाण्या तस्य तया भूयः समागमं। नीयते स्म विनोदैः स्वैः कालः कन्याजनोचितैः ॥६६॥ ततस्ते ललिताकारा स्वभावेन सहोदराः । द्विजवेषभूतो जग्मुर्जनिचत्तापहारिणः ॥६७॥ आसनं शयनं तेषां भोजनं च मनोहरं । सुखेनैव सुपुष्यानामचितितमभूत्रदा ॥६८॥

पुनस्तापसवेषेण प्राप्ता अलेष्मांतकं वनं । ते तापसाश्रमे रम्ये विसस्तमुरिहार्चिताः ॥६९॥ वसंघरपुरेशस्य विध्यसेनस्य देहजा । वसंतसुंदरीनाम्ना नर्भदाजास्ति तत्र च ॥७०॥ युधिष्ठिराय सा दत्ता पुरैव गुरुभिर्वरा । दग्धवार्तामुपश्चत्य निदितस्वपुराकृता ॥७१॥ जन्मांतरेऽपि कांक्षंती तस्य कांतस्य दर्शनं । तपश्चरितुमारव्धा तत्र सा तापसाश्रमे ॥७२॥ उदारह्मपलावण्या दुकुलपटसारिका । जरिला वटशाखेव स्निग्धच्छाया व्यराजत ॥७३॥ आकर्णायतनेत्राभ्यां स्वधरेण ग्रुखेंदुना । जघनस्तनभारेण मनोहरति तापसी ॥७४॥ पूज्या तापसलोकस्य सकलस्य तपावनं । अकरोत्पावनं तन्वी चंद्रलेखेव निर्मला ॥७५॥ कौंतेयानां कृतातिथ्या तापसोचितवृत्तिभिः । जहार हारिवाक्यासौ धुत्पिपासाप्यश्रमं । ७६॥ कुंती प्रपच्छ तां प्रीत्या बाले ! कमलकोमले । नवे वयसि वैराग्यं कुतो जातमिति व्रते ॥७७॥ इति सानुनयं प्रष्टा राजपुत्री जगौ गिरा । मनो मधुरया तेषां हरंती हरिणेक्षणा ॥७८॥ साधु पृष्टं त्वया पूज्ये ! श्रूयतामत्र कारणं । सज्जनो हि मनोदुःखं निवेदितमुदस्यति ॥७९॥ कौरवाय पुरैवाहं कौतियायाप्रजाय हि । स्वभावोदारचेष्टाय गुरुभिर्विनिवेदिता ॥८०॥ समात्रभातकस्यास्य मदपुण्यप्रभावतः । श्रुता बार्ता जनेभ्यो या न स्मर्तुमपि श्रुक्यते ॥८१॥

दाहदुःखमृतं कांतं युक्तं तेनेव वर्त्मना । अनुमर्तुं न तापस्ये शक्तिहीनतया स्थिता ॥८२॥ निशम्येति वचः सौम्या सा जगौ भाविनीं स्तुषां। कृतं भद्रं त्वया भद्रे कुर्वत्या प्राणरक्षणं । ८३॥ अन्यथा चित्रयत्येषा मित्रे मित्रजनो जने । अन्यथा विधिरप्यस्मादर्ध्यते दीर्घदर्शिता ॥८४॥ कल्याणहेतवः प्राणाः कल्याणि ! मम वाक्यतः । तपस्यंत्यापि धार्यतां जीवंती भद्रमाप्स्यसि ॥८५॥ तदेवान्ववदत्पांडोः प्रथमस्तनयो यतः । धर्म चाकथयद्युक्तमणुशीलगुणव्रतैः ॥८६॥ परस्परं समालापे मनः श्रीतिकरेऽनयोः । वर्तमाने तदा कन्या मनसा मन्यतेति सा ॥८७॥ राजलक्षणयुक्तः स किं स्यादेष यूधिष्ठिरः । समातृकोनुशास्तीह मामतीव कृपान्वितः ॥८८॥ सर्वया मम पुण्येन गण्येन तपसापि च । सत्यसंघः प्रियो जीव्यादन्याहतिरिहोद्यमी ॥८९॥ यियासवस्तु युक्तानां पुनर्दर्शनमस्त्विति । सम्मानिता प्रियालापैरयुरस्थाच साशया ॥९०॥ समुद्रविजयः श्रुत्वा स्वमृस्वस्रीयमारणं । मारणाय कुरूणां स प्राप्तः कुपितमानसः ॥९१॥ जरासंघस्ततः प्राप्य स्वयमेव महादरः । यदुनां कौरवाणां च संधिमापाद्य यातवान् ॥९२॥ इतोऽपि तापसाकारं त्यक्तवेति द्विजवेषिणः। प्रयांतो भ्रातरः कुंत्या प्रादुरीहापुरं परं ॥९३॥ भीमसेनो महाभीमं भृंगाभं भृंगराक्षसं । मनुजाञ्चनग्रुद्वास्य तत्रास त्रासमंगिनां ॥९४॥

वीतभीभ्यः पजाभ्यस्ते प्राप्तपूजा समातृकाः । वजंतः स्वेच्छया प्रापुत्तिश्रृंगारूयं महापुरं ॥९५॥ प्रबंडवाहनस्तत्र प्रचंडश्रंडकर्मणां । आसीश्रपतिरस्येष्टा वनिता विमलप्रभा ॥९६॥ क्रवातिशयसंपूर्णाः पूर्णचंद्रसमाननाः । कलापारिमताः सर्वीस्तयोर्देहितरो दश ॥९७॥ अद्या गुणप्रभा तासु सुप्रभा द्रीश्रियौ रितः। पद्मा चेंदीवरा विश्वा चार्या चाशोकया सह।।९८॥ यधिष्ठिराय ताः सर्वाः पूर्वमेव निवेदिताः। लब्ध्वा तस्यान्यथा वार्त्तामणुत्रतधराः स्थिताः ॥९९॥ इक्र्योऽपि प्रियमित्रारूयस्तत्र पुरुर्यां सपर्यया । अन्ववर्तत कौंतेया पुरुषांतरविद्धनी ॥१००॥ मोमिनी भामिनी तस्य कन्या नयनसुंदरी । सौंदर्येण स्वरूपेण नयनानंददायिनी ॥१०१॥ युधिष्ठिराय वीराय प्रागेव प्रतिपादिता । राजपुत्र्यो यथा पूर्वास्तथा सा तद्रता स्थिताः ॥१०२॥ राजा सभार्य इभ्यश्च महापुरुषवेदिनौ । कुंतीपुत्राय ताः कन्या ज्यायसे दातुमिच्छतः ॥१०३॥ तास्तु निश्चितचित्तत्वादन्यलोकगतोऽपि हि । स एष पतिरस्माकिमिति नेच्छंति तं द्विजं ॥१०४॥ ततोऽपि नगराद्याता नगराजस्थितात्मकाः । प्राप्ताश्चंपापुरीं तेऽमी कर्णो यत्र महानृपः ॥१०५॥ तत्र भीमो महानागं पुरमध्ये महोत्कटं। प्रक्रीड्य निर्मदी चक्रे वर्णसंक्षोभकृत्कृती ॥१०६॥ ततीऽपि वैदिशं जाता पुरं सुरपुरोपमं । राजा वृषध्वजो यत्र युवराजो दृढायुधः ॥१०७॥

दिशावलीप्रिया राज्ञो दिशानंदा तु नंदना । दिशासु विदिताकारा दिशामिव विशुद्धता ॥१०८॥ भीमो राजगृहे राज्ञा गंभीरस्वरदर्शनः । अदृश्यत दृशा कांता भिक्षार्थी किल रूपवान् ॥१०९॥ ज्ञात्वा महानरं तं च कन्यामादाय तां नृषः । सांतःपुरः पुरःस्थित्वा जगाद मधुरं वचः॥११०॥ तवानुरूपकन्येयं दीयते प्रतिपद्यतां । भिक्षां प्रसारय श्रीमान् पाणि पाणिगृहं प्रति ॥१११॥ अपूर्वियमहो भिक्षा नेहर्शी प्रति सांप्रतं । स्वातंत्र्यमिति संभाष्य गत्वा तेभ्यो न्यवेदयत् ॥११२॥ सार्धं मासमिह स्थित्वा पुरे जग्मुरमी ततः । तरीत्य नर्मदां नर्मप्रवणां विध्यमाविशत् ॥११३॥ संध्याकारेंतरद्वीपे संध्याकारे पुरे नृपः । हिडंबवंशसंभूतः सिंहघोषोवतिष्ठते ॥११४॥ देवी सुदर्शना तस्य सुता हृदयसुंदरी । मेघवेगः त्रिक्टेंद्रो याचित्वा तां न लब्धवान् ॥११५॥ यो हतिष्यति तं विध्ये गदाविद्याप्रसाधकं । भर्ता हृदयसुंदर्या इति नैमित्तिकागमः ॥११६॥ द्भकोटरमध्यास्य साधयंतं खगं गदां । तयैव गदया सींऽगं भीमोऽपाटयदेकदा ॥११७॥ ततो हिडंबसुंदर्या भीमसेनस्य संगमः । हिडिंबेन च संबंधः संबभूव महोत्सवः ॥११८॥ विदृत्य विविधान्देशान्दाक्षिणात्यान्महोदयाः। ते हास्तिनपुरं गंतुं प्रवृत्ताः पांडुनंदनाः॥११९॥ प्राप्ता मार्गवशाद्विश्वे मार्करीं नगरीं दिवः। प्रतिच्छंदिस्यिति दिच्यां दघाना देवविश्रमाः॥१२०॥

द्वपदोऽस्यास्तदा भूपस्तस्य भोगवती प्रिया । धृष्टद्युम्नादयः पुत्रा प्रत्येकं दृष्टशक्तयः ॥१२१॥ स्रपलावण्यसीभाग्यकलालंकतविग्रहा । द्रीपदी तनया तस्य द्वपदस्योपमोज्झिता ॥१२२॥ तस्या कृते कृता सर्वे मनोवेगैर्नुपात्मजाः । सग्रहा इव याचंते नानोपायनपाणयः ॥१२३॥ दाक्षिण्यभंगभीतेन द्वपदेन ततो नृपाः । विश्वे चंद्रकवेधार्थमाहृताः कन्यकार्थिनः ॥१२४॥ द्रौपदीग्रहवद्यानां काव्यप्यामिह भूभृतां । कर्णदुर्योधनादीनां माकंद्यां निवहोऽभवत् ॥१२५॥ सुरेंद्रवर्धनः खेंद्रः स्वसुतावरमार्गणैः । धनुर्गौडीवमादेशाहिव्यं तत्र तदाऽकरोत् ॥१२६॥ चंडगांडीवकोदंडमंडलीकरणक्षमः । राधावेधसमर्थो यो द्रौपद्याः स भवेत्पतिः ॥१२७॥ इतीमां घोषणां श्रुत्वा द्रोणकर्णादयो तृपाः । समेत्य मंडलीभूय कोदंडमितः स्थिताः ॥१२८॥ देवताधिष्ठितायास्तैश्वापयष्टेः प्रदर्शनं । आसीत्सत्या इवाशक्यस्पर्शनाकर्षणे कुतः ॥१२९॥ भाविना स्वामिना पश्चादर्जुनेन सदर्जुना । दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा तदाकृष्टा स सतीव वशं स्थिता ॥१३०॥ आरोप्याकृष्य पार्थेन धनुज्यस्कालिता क्षितिः। भ्रांतं विधिरितं कर्णैः कर्णादीनां पदुष्वनौ ॥१३१॥ वितर्कः कर्कशं ष्टष्टा तं तेषामित्यभूदयं । सहजैः सहजैश्वयों मृत्वोत्पनः किमर्जुनः ॥१३२॥ धन्विनः स्थानमन्यस्य सामान्यस्येदशं कृतः । अहो दृष्टिरहो सुष्टिरहो सौष्ठविमत्यपि ॥१३३॥

भ्रमचक्रसमारूढो वाणं संभृत्य दक्षिणः। लक्ष्यं चंद्रकवेधारूयं विव्याथ नृपसिक्षी ॥१३४॥ द्रौपदी च द्वतं मालां कंधरें ऽभ्येत्य वंधुरे । अकरोत्करपद्माभ्यामर्जनस्य वरेच्छया ॥१३५॥ वित्रकीर्णा तदा माला सहसा सहवर्तिनां । पंचानामि गात्रेषु चपलेन नभस्वता ॥१३६॥ ततश्रपललोकस्य तत्त्वमूढस्य कस्यचित्। वाचोदितोरुरित्युचैर्वृताः पंचानयेत्यपि ॥१३७॥ सद्रंधस्य सुवृक्षस्य तुंगस्य फलितस्य सा । पुष्पितेव लताभासीदर्जुनस्यांगमाश्रिता ॥१३८॥ ततः कुंत्याः समीपं सा धीरगा जीवबंधना । अग्रतः पश्यतां राज्ञां नीता नीतिविदां विदा ॥१३९॥ सम्बद्ध ते नृपाः केचिदनुयाता युयुत्सवः । निषिद्धा अपि यत्नेन द्भुपदेन नयेषिणा ॥१४०॥ अर्जुनेन च भीमेन धृष्टद्युम्नेन च त्रिभिः। धन्विभिद्रुरतो रुद्धा नामितः पदमप्यदुः ॥१४१॥ धृष्टद्युम्नरथस्थेन स्वनामांकः किरीटिना । द्रौणस्यांके शरः क्षिप्तः सर्वसंबंधवाचकः ॥१४२॥ द्रोणाश्वत्थामवीराभ्यां भीष्मेण विदुरेण च । वाचितः सर्वसंबंधः प्रमदं प्रपदौ परं ॥१४३॥ द्वपदस्य सगोत्रस्य द्रौणादीनां च सौरूयतां । शंखवादित्रनिर्घोषाज्ञाता पांडवसंगमे ॥१४४॥ जातवांघवसंबंधे परमानंददायिनि । संवृत्या नंदिताः पंच तेऽमी दुर्योधनादिभिः ॥१४५॥ द्रौपदी दीपिकेवासौ स्नेहसंभारपूरिता। पाणिग्रहणयोगेन दिदीपेऽर्जुनधारिता ॥१४६॥

विवाहमंगलं दृष्टा द्रौपद्यर्जुनयोर्नृपाः । आयाताः पांडवैर्युक्ता स्थानं दुर्योधनोऽप्यगात् ॥१४७॥ अर्धराज्यविभागेन ते हास्तिनपुरे पुनः । तस्थुर्दुर्योधनाद्याश्च पांडवाश्च यथायथं ॥१४८॥ आनाय्यानाय्यवृत्तोसौ ज्येष्ठकन्याः पुरातनीः। विवाह्य सुखिताश्चके भीमसेनो निजोचिताः॥१४९॥ स्नुषाबुद्धिरभूत्तस्यां ज्येष्ठयोरर्जुनिस्त्रयां । द्रौपद्यां यमलस्यापि मातरीवानुवर्तनं ॥१५०॥ तस्याः श्वसुरबुद्धिस्तु पांडाविव तयोरभूत् । अर्जुनप्रेमसंरुद्धमौचित्यं देवरद्वये ॥१५१॥ अत्यंतशुद्धवृत्तेषु योभ्याख्यानपरायणाः । तेषां तत्प्रभवं पापं को निवारियतुं क्षमः ॥१५२॥ सद्भृतस्यापि दोषस्य परकीयस्य भाषणं । पापहेतुरमोघः स्यादसद्भृतस्य कि पुनः ॥१५३॥ प्राकृतानामिप प्रीत्या समानधनता धने । न स्त्रीचरित्रलोकेषु प्रसिद्धानां किमुच्यते ॥१५४॥ महापुरुषकोटीस्थकूटदोषाविभाषिणां । असतां कथमायाति न जिह्वा शतखंडतां ॥१५५॥ वक्ता श्रोता च पापस्य यन्नात्र फलमश्रुते । तदमोघमग्रुत्रास्य वृद्धचर्थमिति बुद्धचर्ता ॥१५६॥ वक्तः श्रोतुश्र सद्बुध्या यथा पुण्यमयी श्रुतिः । श्रेयसे विपरीताय तथा पापमयी श्रुतिः ॥१५७॥ त्यजत वाचमसत्यमलोद्धतां भजत सत्यवचो निरवद्यतां।

निजयशो विशदाश्गुणोद्यतां विजयिनीं त्विह विश्वविदोद्यतां ॥ १५८ ॥

सुभृतमाचरणं शरणं भवेदसुभृतां विपदीह पराभवे ।
सुचिरतस्य फलं नयपोरुषं परिभवत्यहितस्य हितां रुषं ॥ १५९ ॥
शिखिशिखावलिधमधनागमः परिनराकरणैकजिनागमः ।
विविधलाभिनिधिः श्रियतां जनैत्रितविधिः श्रुतवर्तिकृतांजनैः ॥ १६० ॥
इत्यारिष्टनोमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ
कुठवंशोत्पत्तिपांडवधार्तराष्ट्राणां च पार्थद्रौपदीलाभवर्णनो नाम पंचचत्वारिंशः सर्गः ।

षद्चत्वारिंदाः सर्गः ।

अथ मानितवंधूनां पांडवानां गजाह्य । नगरे नगधीराणां काले गच्छित भोगिनां ॥१॥ प्रत्यहं परमा भूत्या वर्धमानानमूनमी । पंचापि शतमालोक्य पूर्ववच्चिता स्थितेः ॥२॥ तं शकुन्युपदेशेन सद्यो द्यूते विजित्य सः । पंचज्येष्ठं शतज्येष्ठः सानुजं सानुजोऽगदीत् ॥३॥ गंतव्यं यत्र ते नाम श्रूयते न युधिष्ठिर । स्थातव्यं सत्यसंधेन त्वया प्रच्छक्वेरिणा ॥४॥ इत्युक्तं प्रतिपाद्यासौ शमितभ्रातृमंडलः । निरेत्परिच्छदं त्यक्त्वा द्वादशाब्दधृताविधः ॥५॥

अनुजातार्जुनं प्रेम्णा प्रमदेन च प्रिता । द्रौपदींदुमिव ज्योत्स्ना कृतकृष्णानिजास्थितिः ॥६॥ ततस्ते धैर्यसंपन्नाः सुवीर्या नरकुंजराः । क्रमेण सहिताः प्राप्ता रम्यां कालांजलाटवीं ॥७॥ प्रकीर्णकासुरीस्नुः सुतारस्तत्र खेचरः । असुरोद्गीतनगरादागत्य रमते तदा ॥८॥ कांतया कुसुमावल्या रममाणं वनांतरे । किरातवेषिणं कांतं युक्तं शावरविद्यया ॥९॥ किरातवेषभूत्पत्न्या सह क्रीडन् यष्टच्छया । दद्र्य खेचरं चापी चापिनं स धनंजयः ॥१०॥ अकस्माच तयोर्जाते दर्शने सहसानयोः । बभूव विषमं युद्धं दिव्येषुच्छन्नदिङ्मुखं ॥११॥ भुजयुद्धे ततो लग्ने भुजेन दृढमुष्टिना । जघानोरसि तं पार्थः खचरं बलिनं बली ॥१२॥ पतिभिक्षां ययाचेऽसावर्जुनं कुसुमावली। मुक्तः स तं प्रणम्यागाद्रौप्याद्रेदिक्षिणां क्षिति ॥१३॥ गताः क्रमेण ते धीराः पुरं मेघदलाभिधं । सिंहो नरेश्वरो यत्र कांता कनकमेखला ॥१४॥ तनया कनकावर्ता तयोरत्यंतसुंदरी । मेघेभ्यालकयोश्राहलक्ष्मीकांता शरीरजा ॥१५॥ ते चादेशवशात्कन्ये भीमो भीमं सवेषभृत्। भिक्षार्थमागतो लेभे पुण्यस्य किम्रु दुष्करं ॥१६॥ विश्रम्य तत्र ते सौम्या दिनानि कतिचित्सुखं। याताः क्रमेण पुत्रागा विषयं कौशलाभिधं।।१७॥ स्थित्वा तत्रापि सौरूयेन मासान्कतिपयानपि। प्राप्ता रामगिरिं प्राग् यो रामलक्ष्मणसेवितः॥१८॥

चैत्यालया जिनेंद्राणां यत्र चंद्रार्कमासुराः । कारिता रामदेवेन संभाति शतशो गिरी ॥१९॥ नानादेशागतैर्भव्यैर्वेद्यंते या दिने दिने । वंदितास्ता जिनेंद्राणां प्रतिमाः पांडुनंदनैः ॥२०॥ चित्रं चिक्रीड तत्राद्रौ द्रौपद्या सहितोर्जुनः । लतागृहेषु रम्येषु सीतयेव रघूत्तमः ॥२१॥ अविज्ञातसुखच्छेदा स्वेच्छया विद्वृति श्रिताः। निन्युरेकादशाब्दानि धन्यास्ते मान्यचेष्टिताः॥२२॥ अतः परं पुनः प्राप्ता विराटपुटभेदनं । विराटो यत्र राजासी भाषी यस्य सुदर्शना ॥२३॥ अन्यक्ताः पांडवास्तत्र द्रौपदी च विचक्षणा । विराटनगरे तस्थुविराटस्यातिपूजिताः ॥२४॥ यथायथं विनोदेन तत्र संवसतां सतां । प्रयाति सुखिनां काले प्रमादरहितात्मनां ॥२५॥ चुलिका नगरी राजा चुलिकस्तस्य कामिनी । विकचा विकचाव्जास्या शतपुत्रपवित्रिता ॥२६॥ कीचकः प्रथमस्तेषां प्रथमश्रंडकर्मणां । रूपयौवनविज्ञानं शौर्यद्रव्यमदाविलः ॥२७॥ विराटनगरं जातु स्वसारं ससुदर्शनां । आगतो दृष्टुमत्रैतां दृष्टवान् द्रौपदीं सतीं ॥२८॥ गंधयुक्तिविशेषेण सुगंधीकृतदिङ्गुखां । रूपलावण्यसीमाग्यगुणपूरितविग्रहां ॥२९॥ तस्यां दर्शनमात्रेण मानिनोऽपि मनो गतं । दैन्यमन्यत्र यातस्य तस्य तन्मयतां गतं ॥३०॥ अनेकोपाययोगेस्ताम्रपलोभयताम्रना । स्वतोऽपि परतोप्यस्या नालाभि हृदये स्थितिः ॥३१॥

षद्चत्वारिंशः सर्गः।

प्रत्याख्यातस्य धृष्टस्य तृणीभूतस्य तस्य सा । निर्वेधं भीमसेनाय शैलंध्री तं न्यवेदयत् ॥३२॥ ततः कुपितचित्तोऽसौ शैलंधीवेषभृद्धली । प्रदोषे कृतसंकेतमेकांते मदनातुरं ॥३३॥ वारिबंधिमवायातं स्पर्शांधं गंधवारणं । कंठे जग्राह बाहुभ्यां स्पर्शामीलितलोचनां ॥३४॥ भूमौ निपात्य पादाभ्यामुरस्याऋम्य कामिनं । पिपेष मुष्टिनिर्घातैर्निर्घातैरिव भूघरं ॥३५॥ तथा तस्य तदा श्रद्धां प्रपूर्य परयोषिति । अमुचद् त्रज पापेति दयमानो महामनाः ॥३६॥ महावैराग्यसंपन्नस्ततो विषयहेतुकं । प्राव्रजत्कीचकः श्रित्वा मुनींद्ररतिवर्धनं ॥३७॥ अनुप्रेक्षाभिरात्मानं भावयन् भावशुद्धितः । रत्नत्रयमसौ शुद्धं श्रुतवान् कर्तुमुद्यतः ॥३८॥ कीचकं शतसंख्यास्ते भ्रातरो भ्रांतचेतसः । अदृष्टा कुपिता दृष्टाश्चितकाग्निमचिन्वत ॥३९॥ तत्र विक्षिप्सवः पापाः शैलंधीं बलशालिनः । क्षिप्तास्ते तत्र भीमेन भस्मसाद्भावमागताः ॥४०॥ एकेनैवाह्ययं नीतास्ते भीमेन मदोद्धताः । बहवोऽपि हि हिंस्यंते सिंहेनैकेन दंतिनः ॥४१॥ अथासौ कीचकः साधुरेकांतोद्यानमध्यगः । पर्यकासनयोगस्थो यक्षेणैक्षि कदाचन ॥४२॥ तस्य चित्तपरीक्षार्थं द्रौपदीवेषमाश्रितः । निश्चीथेऽदर्शयद्रुपमात्मना मदनालसं ॥४३॥ साधुना विधरेणैव रम्यालापश्चतौ स्थितं । रूपं दृष्टिविलासाभ्यामंधेनैव मनोहरं ॥४४॥

गुप्तेंद्रियकलापस्य मनःशुद्धिमुपेयुषः । साधोस्तस्य सम्रुत्पन्नमविश्वानलोचनं ॥४५॥ उपसंहतयोगं तं प्रणम्यासौ सुरस्ततः । मुनिमक्षमयन्नाथ क्षमस्वेति पुनः पुनः ॥४६॥ पुनः प्रणम्य पत्रच्छ द्रौपदीमोहकारणं । कारणेन विना न स्यात्ताद्यमोहसमुद्भवः ॥४७॥ कतिचित्पूर्वजनमानि द्रौपद्याः स्वस्य चेत्यसौ । कीचकारूयोवदद्योगी यक्षाय प्रणतात्मने ॥४८॥ तरंगिणीसरित्तीरे वेगवत्याश्च संगमे । म्लेच्छोहमभवद्रौद्रः क्षुद्राः क्षुद्रासुमद्रिपुः ॥४९॥ साधुदर्शनतः शांतः प्रापमार्यमनुष्यतां । धनदेवः पिता चात्र माता में सुकुमारिका ॥५०॥ कुमारदेवसंज्ञाहं मात्रा च मम सुत्रतः । मारितः साधुराहारं दत्वा विषविमिश्रितं ॥५१॥ प्रविश्य नरकं पापा दुःखं साधुवधोद्भवं । अनुभूय पुनिस्तर्यप्रारकेष्वटतिस्म सा ॥५२॥ अत्रतोहमपि आंत्वा संसारं तीत्रवेदनं । मातरिश्वतया हत्तो नुत्रोहोमातरिश्वभिः ॥५३॥ सितेन तापसेनांते जिनतो मधुसंज्ञकः । तापस्यां मृगशृंगिण्यां प्रदृद्धस्तापसाश्रमे ॥५४॥ मुनेर्विनयदत्तस्य दानमाहात्म्यदर्शनात् । प्रव्रज्य स्वर्गमारुह्य जातोहं कीचकश्र्युतः ॥५५॥ चिरं पर्यव्य संसारसुदुःखं सुकुमारिका । मानुषी दुर्भगी भूता भूताभूतासुखावहा ॥५६॥ सा चानुमतिका नाम्ना सनिदानतपोयुता । जातेयं द्रौपदी तेन मोहो अस्यां मे महानभूत ॥५७॥

माता श्वसा च तनुजा त्रियकामिनीत्वं मातृस्वसृत्वदुहितृत्वसुपैति पत्नी ।
संसारचक्रपरिवर्तिनि जीवलोके ही संकरच्यतिकरौ नियतौ भवेतां ॥ ५८ ॥
वैचित्र्यमेतद्वगम्य भवस्य भव्या वैराग्यमेत्य सुखतो महतोष्यसुष्य ।
संसारकारणनिवृत्तिथियः सुवृत्ता मोक्षार्थमेव महता तपसा यतंतां ॥ ५९ ॥
इत्यादि तस्य वचनं सुनिकीचकस्य श्रुत्वा सुरः सुरवधूभिरमा तदानीं ।
सम्यक्तवरत्नवरभूषणभूषितात्मा नत्वा गुरुं धृतियुत्तांतरधाद्गनाते ॥ ६० ॥
संपूज्यमानचरणो नृसुरासुरौषैः कृत्वा तपो द्विविधमंतरमृद्धधीर्यः ।
लोके प्रकाद्य जिनमार्गमरर्गलं सं-प्राप्तं परं पद्मनत्ययमात्मशुद्धचा ॥ ६१ ॥
इत्यारिष्टनोमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ कीचकनिर्वाणगमनो नाम षट्चत्वारिकाः सर्गः ।

सप्तचत्वारिंदाः सर्गः ।

कीचकानुजवृत्तांते गोग्रहे तदनंतरे । वृत्ते मीमार्जुनोग्राग्निमतारिवनांतरे ॥१॥ अभिमनिजमर्यादाः भिन्नदुश्शासनांतराः । पांडवाः पांडुभवने संहृता सुघना हव ॥२॥

संपूर्णावधयो गत्वा धर्मराजस्य ते युधि । सह दुर्योधनेनास्थुः सम्मता ग्रुनयो यथा ॥३॥ ततः पूरितसर्वाशाः सर्वार्थामृतवर्षिणः । तेप्यनुष्पदमत्युचैः प्रावृषेण्या इवांबुदाः ॥४॥ तत्त्रासाद्यापि चुक्षोभ गांधारीय-शतं पुनः । नेयस्य जलवर्ग्यस्य सुप्रसादः कियचिरं ॥५॥ कृते दायादवर्गेण पूर्ववत्संधिदूषणे । प्रशमय्य तन्न्भ्रातृन् प्रागिवासौ युधिष्ठिरः ॥६॥ अनिच्छन् स्वच्छधीर्थीरः कृपावान् कौरवाहितं। मात्रा आत्रादिभिर्भूयः श्रितवान् दक्षिणां दिशं॥७॥ स विध्यवनमध्यास्य तपस्यंतं निजाश्रमे । दृष्टा विदुरमानम्य शर्शस सानुजैः सह ॥८॥ कृतार्थं पूज्य ते जन्म संपरित्यज्य संपदः । स्थितोऽभियो जिनेद्रोक्ते मोक्षमार्गे महातपाः ॥९॥ विद्युदं दर्शनं यत्र तत्त्वश्रद्धानलक्षणं । ज्ञानं सर्वार्थविद्योति चारित्रमनवद्यकं ॥१०॥ व्रतग्रिसमित्यक्षकषायजयसंयमाः । यत्र मार्गे स्थितास्तत्र सिध्यंति त्वादशोऽचिरात् ॥११॥ इति मार्गस्तुति कृत्वा तं च स्तुत्वा कृतानितः। द्वारिकां ज्ञातिभिज्ञीतः संविवेश सहानुजैः।।१२।। उत्सवः परमो जातः स्वस्रस्वस्रीयसंगमे । समुद्रविजयादीनां दशानां चिरदर्शिनां ॥१३॥ नेमीशहरिरामादिदशार्हसुतसुंदराः । अंतःपुराणि सर्वाणि प्रजाश्च तुतुषुस्तदा ॥१४॥ यथाक्रममशेषाणां दर्शने दर्शनोत्सवे । जाते परस्परं तेषां स्वजनानां सुखावहे ॥१५॥

यदुपांडववर्गी तो मेनाते मिलितो मुदा । अपकारमपि त्यक्तवा सुपकारं परैः कृतं ॥१६॥ ततः प्रासादवर्षेषु पंच पंचसु विष्णुना । निरूपितेषु ते तस्थुः सर्वभोगप्रदायिषु ॥१७॥ ज्येष्ठो लक्ष्मीमतीं लेभे भीमः शेषवतीं ततः । सुभद्रामर्जुनः कन्यां कनिष्ठौ विजयां रित ॥१८॥ दशाईतनयास्तास्ते परिणीय यथाक्रमं । रेमिरेऽसूमिरिष्टाभिः पांडवास्त्रिदशोपमाः ॥१९॥ कथेयं कुरुवीरस्य कथिता ते समासतः। प्रद्युम्नस्याधुना विच्म श्रुणु श्रेणिक चेष्टितं ॥२०॥ विजयार्धिगरौ रम्ये प्रद्युम्नोऽसौ कलागुणैः। विधुवद्धंधुमुद्वार्धिं सहावर्धत वर्धयन्।।२१॥ विद्याधरोचिता विद्या स विद्याधरपुत्रकः । वियद्यानादिका बाल्ये जग्राहाशु महोद्यमः ॥२२॥ बाल्यादारभ्य लावण्यरूपसौभाग्यपौरुषः । सोऽरिमित्रनरस्रीणामस्रीभूतैर्मनोऽहरत् ॥२३॥ यौवनं स परिप्राप्तः प्राप्तसर्वास्त्रकौशलः । हृदयेषु युवा यूनां प्रहरत्रीप बल्लभः ॥२४॥ मन्मथा मदनः कामः कामदेवो मनोभवः । इत्यन्वर्थाभिषानः स नानंगो नंगनामकः ॥२५॥ युद्धे सिंहरथं जित्था जितपंचशतात्मजं । कालसंवरभूपाय सकामोऽदर्शयत्कृती ॥२६॥ तादृशं तनयं दृष्ट्वा संतुष्टः कालसंवरः । मेने श्रेणीद्वयं दृप्तं वशीकृतमिवात्मनां ॥२७॥ महाराज्यपदोदारफलपुष्पं नृपोऽस्य सः । यौवराजमहापट्टं बबंध च विधानतः ॥२८॥

शवानि तनयाः पंच कालसंवरभूभृतः । चिंतयंति वतोपायं मदनस्य समंततः ॥२९॥ आशने शयने वस्त्रे तांबुलेऽशनपानके । नालं छलियतुं ते तं छलान्वेषणतत्पराः ॥३०॥ अन्यदा तु विनीतोसौ नीतो नीत्यानुकूलकैः । कुमारस्तैः कुमारौषैः सिद्धायतनगोपुरं ॥३१॥ नोदितस्तैः समास्रढो गोपुराग्रं सवेगवान् । विद्याकोशं तिरीटं च लेमे तद्वासिनोऽमरात् ॥३२॥ प्रविष्टश्च पुनर्वेगान्महाकालगुहामसौ । खडुं सखेटकं लेभे छत्रचामरसंयुतं ॥३३॥ लेभे नागगुहायां च पादपीठं सुराद्ररं । नागशय्यासनं वीणां विद्यां प्रासादकारिणीं ॥३४॥ मकरध्वजमुत्तुंगं वाप्यां युद्धे जितात्सुरात् । अग्निकुंडे अग्निसंशोध्यं वस्त्रयुग्ममवाप्य सः ॥३५॥ मेषाकृतिगिरौ लेभे कर्णकुंडलयोईयं । मौलि चामृतमालां च पांडुके मर्कटामरात् ॥३६॥ विद्या करिवनं पाप कवित्थवनदेवतः । वल्मीके श्चरिकां चापि कवचं मुद्रिकादिकं ॥३७॥ शरावपर्वते लेभे कटिखत्रग्रुरच्छदं । कामः कटककेयूरकंठिकाभरणं शुभं ॥३८॥ श्करासुरतः शंखं दिव्यं प्राप शरासनं । हारं सुरेंद्रजालं च मनोवेगाद्विकीलितात् ॥३९॥ मनोवेगरिपोर्लिभे वसंतखचरात्ततः । कन्यां नरेंद्रजालं च तयोः सख्यस्य कारकः ॥४०॥ चापं च कौसुमं प्रापदर्जुनो भवनाधिपात् । उन्मादमोहसंतापमदशोककरान् शरान् ॥४१॥

अन्यां नागगुहां यातश्रंदनागुरुमालिकाः । पौष्पं छत्रं च शयनं लेभे तत्र तु पार्थिवात् ।।४२॥ स दुर्जयवने लेमे जयंतिगरिवर्तिनि । खेटवायुसरस्वत्यो रतिं कामः शरीरजां ॥४३॥ षोडशेष्विप चैतेषु लाभस्थानेषु मन्मथं। लब्धानेकमहालाभं दृष्ट्रा विस्मितमानसाः ॥४४॥ ज्ञात्वा पुण्यस्य माहातम्यं कुमाराः संवरादयः। संशित्वा मदनेनामा निजं नगरमाययुः ॥४५॥ लब्धं दिव्यं रथं शुक्रेवृषैव्यूढमधिष्ठितः । चापी पंचशरी छत्री ध्वजी दिव्यविभूषणी ॥४६॥ मनो हरत्रस्त्रीणां मदनो मदनेषुभिः । मेघकूटं प्रविष्टोऽसौ कुमारशतविष्टितः ॥४७॥ सप्रणामस्ततो दृष्ट्रा प्रद्युम्नः कृष्णसंवरं । धिष्ण्यं कनकमालायाः प्रस्थितः स रथे स्थितः ॥४८॥ तथा च स्थितनेप्थ्यं नेत्रपथ्यं न दूरतः । दृष्टा कनकमाला तं भावं कमपि संश्रिता॥ ४९॥ रथादुत्तीर्य विनतं संशित्वा घाय मस्तके । आसियत्वांतिके तं सा स्पर्शयन् मृदुपणिना ॥५०॥ गाढमाहोदयात्तस्यास्ततः परवशात्मनः । कर्षतो हृदयक्षेणीं प्रवृत्ता दुर्मनोरथाः ॥ ५१ ॥ स्वांगैरस्यागसंगं या लभेत शयने सकृत्। कामिनी भ्रवने सैका शेषास्त्वाकृतिमात्रकं ॥५२॥ स्वपलावण्यसौभाग्यवैदग्ध्यं गुणगोचरं। कामा श्लेषस्य सौलभ्ये दौर्लभ्ये स्यानूणं तु मे।। ५३॥ इतिप्रवृत्तसंकल्पामसंभाविततन्मनाः । तां प्रणम्य सलब्धाशीः प्रद्युम्नः स्वगृहं यतः ॥ ५४ ॥

इतिप्रबलदुःखेयं खेचरी निखिलाः क्रियाः । विसस्मार स्मराश्लेषसुखलाभः मनोरथा ॥ ५५॥ अस्वस्थामपरेद्युस्तां प्रद्युम्तो दृष्टुमागतः । अद्राक्षीद्विशिनीपत्रपर्यस्ततनुमाकुलां ॥ ५६ ॥ पृच्छितिस्म स तां कामः शरीरास्वास्थ्यकारणं । इंगितैरांगितैः सोऽपि वाचिक्यैश्र व्यबोधयत्॥५७॥ वैपरीत्यं ततो ज्ञात्वा निदित्वा कर्मचेष्टितं । स मात्रपत्यसंबंधप्रत्यायनपरोऽभवत् ॥ ५८ ॥ सापि तस्मै यथावृत्तमादिमध्यावसानतः । अटवीलाभसंवृद्धिविद्यालाभानवेदयत् ॥ ५९ ॥ स्वसंबंधं ततः श्रुत्वा संदिग्धार्थमतिर्गतः । दृष्टा सागरचंद्राख्यं ग्रुनि चैत्यगृहे ग्रुदा ॥ ६०॥ नत्वा पृष्टा ततो ज्ञात्वा सर्वानपूर्वभवाभिजान्। तथा कनकमालायाश्रंद्राभायाः पुरे मवे ॥६१॥ सम्यग्दर्शनसंशुद्धो ज्ञातप्रज्ञप्तिलाभकः । गत्वा शीलधनोऽप्राक्षीन्मदनो मदनातुरं ॥ ६२ ॥ दृष्टा हृष्टा जगौ तं सा श्रृणु काम भणामि ते । गौरीं प्रज्ञप्तिविद्यां च त्वं गृहाण यदीच्छिसि ॥६३॥ ततः प्रसाद इच्छामि दीयतामितिवादिने । ददौ विधियुते विद्ये विद्याघरदुरासदे ॥ ६४ ॥ प्रसारितकरो विद्ये गृहीत्वा प्रमदी स तां । प्राणविद्याप्रदानानमे गुरुस्त्वमिति सद्दचाः ॥६५॥ त्रिःपरीत्य प्रणम्याग्रे स्थितः सुकरशेखरः । अपत्योचितमादेशं याचित्वा स्वोचितं ययौ॥६६॥ छिबाताहमिति ज्ञात्वा सातिकोपवशात्ततः । कक्षवक्षःकचोदेशान् नखक्षतभृतोऽकरोत् ॥६७॥

सप्तचत्वारिंदाः सर्गः।

साऽदर्शयच पत्यें उगं नाथ पद्युम्नचिष्टितं । पश्येत्यपत्यसंभारं प्रत्योतिसम् स चापि तत् ॥ ६८ ॥ आहूय रहिस कुद्धः पुत्रपंचशतानि सः । आदिदेशान्यदुर्वीधं प्रद्युन्नो मार्यतामिति ॥ ६९ ॥ लब्धादेशास्ततस्तुष्टास्ते तमादाय सादराः। अन्येद्युरगमन्पापा वापीं कालांबुनायिकां ॥७०॥ निपत्य युगपत्सर्वे तस्योपरि जिथित्सवः । प्राचूचुद्न् जलक्रीडां वाप्यां कुर्म इति द्विषः ॥७१॥ कर्णी कथितमेतस्य ततः प्रज्ञप्तिविद्यया । यथातथ्यमिति क्रोधादंतर्हिततनुः क्षणात् ॥ ७२ ॥ पपात मायया वाप्यां निर्घाता इव निर्घृणाः । तेऽपि सर्वे समं पेतुरस्योपरि जिघांसवः ॥७३॥ ऊर्ध्वपादानधोवक्त्रानेकशेषानमूनसौ । स्तंभियत्वानुजं कृत्वा पंचचुडमजीगमत् ॥ ७४ ॥ पुत्रोदंतं ततः श्रुत्वा द्विगुणक्रोधदीपितः । सन्नह्य सर्वसैन्येन संप्राप्तः कालसंवरः ॥ ७५ ॥ विद्याविकृतसैन्येन प्रद्युम्नेन ततिश्वरं । युध्वाभयोऽति भग्नेच्छः स गत्वा कृष्णसंवरः ॥ ७६ ॥ ऊचे कनकमालां तां देहि प्रक्रिपित्यरं । स्तन्येन सह बाल्येऽस्मै मया दत्तेति साबदत् ॥७७॥ ज्ञातमायाद्रशिहोसौ पुनरागत्य मानवान् । युध्यमानोऽमुना बद्धो निहितो हि शिलातले ।।७८॥ तदानीमेव संप्राप्तो नारदोऽतिविशारदः । प्रद्युम्नेन कृताभ्यर्च्यः संबंधमिखलं जगौ ॥ ७९ ॥ कालसंबरमुन्मुच्य क्षमयित्वा ततोऽवदत् । पूर्वकर्मवशेच्छाया मातुर्मे क्षम्यतामिति ॥ ८० ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः।

निरपायानुपायज्ञो मुक्तवा पंचशतान्यपि । भ्रातृस्नेहपरः कामः क्षमियत्वा पुनः पुनः ॥८१॥ आपृष्टेन सतुष्टेन कालसंबरभूभृता । विस्रष्टो रुक्मिणीकुष्णदर्शनोत्सुकमानसः ॥ ८२ ॥ प्रणम्य पितरं स्नेहान्नारदेन सहांबरं । अथारूदे विमानेन द्वारिकागमनं प्रति ॥ ८३ ॥ संकथाभिविचित्राभिर्नभस्यागच्छतोस्तयोः । अतिक्रांतेभपुरयोः सैन्यं दृष्टिपथेऽभवत् ॥८४॥ कस्येदमटवीमध्ये पूज्य सैन्यमधो महत्। पश्चिमाशामुखं याति क किमर्थमतिद्वतं ॥ ८५ ॥ संपृष्टः कामदेवेन नारदोप्यगदीदिति । श्रृणु कामकथालेशं कथयामि तवाधुना ॥ ८६ ॥ अस्ति दुर्योधनो राजा कुरुवंशविभूषणः। दुर्योधनो द्विषां युद्धे स हास्तिनपुरे वरे ॥ ८७ ॥ अग्रजाय मया देया रुक्मिणी सत्यभामयोः । दुहितेति प्रतिज्ञातं पूर्वप्रीतेन तेन च ॥८८॥ अग्रजस्त्वं ततो जातो विष्णवे विनिवेदितः । भानुश्र सत्यभामायास्तदनंतरमांतरैः ॥८९॥ अकस्माद्गच्छता कापि हतस्त्वं धूमकेतुना। विषण्णा रुक्मिणी जाता सत्यभामा तु तोषिणी।।९०॥ अविज्ञातभवद्वार्ती दुर्योधनयशोधनः । कन्यकामुद्धि नाम्ना भानवे प्रहिणोदसौ ॥९१॥ माविनीव ततः सेयं महासाधनरिक्षता । द्वारिकां प्रस्थिता कन्या मानवे किल माविनी ॥९२॥ श्रुत्वा नारदमाकाशे स्थापयित्वा क्षणं ततः । सोवतीर्य पुरस्तस्थौ शावरं वेषमाश्रितः ॥९३॥

केशवेन वितीर्ण मे शुल्कं दत्वा तु गम्यतां । इत्युक्ते कैश्विदित्युक्तं प्रार्थ्यतां प्रार्थितं तव ॥९४॥ यदत्र निखिले सैन्ये सारभूतिमतीरिते । ईरितं सारभूतात्र कन्यकेति समन्युभिः ॥९५॥ यद्येवं दीयतां महां सैवेत्युक्ते जगुः परे । विष्णुना जनितो न त्वं स प्राह जनितस्विति ॥९६॥ असंबद्धप्रलापस्य धृष्टतां पञ्यतेति ते । धनुःकोटिभिरुत्सार्य प्रवृत्ता गंतुमुद्यताः ॥९७॥ ततः शाबरसेनाभिर्विद्यया विकृतात्मभिः । दुर्योधनबलं जित्वा कन्यामादाय खं श्रितः ॥९८॥ दिव्यरूपं तमालोक्य कन्या त्यक्तभया ततः । हृष्टा नारदवाक्येन बुद्धतत्त्वा समाश्वसीत् ॥९९॥ विमानं कामगं कामः समारुख समं तया । नारदेन च संत्राप्तो द्वारिकां द्वारहारिणीं ॥१००॥ अपभ्यत्स विदृरेण सागरेण गरीयसा । प्राकारेण च तां गुप्तां गोपूराष्ट्रालसंकुलां ॥१०१॥ बाह्यबाह्यालिको भानुरश्वव्यायामहेतुना । निर्गतोऽदर्शि कामेन गगनस्थविमानिना ॥१०२॥ तुरगस्त्वरया दिव्यस्थविराकारधारिणा । नीतो भानुकुमारार्थमारुढस्तं स हारिणं ॥१०३॥ बाह्यमानेन तेनासौ कुमारः कामरूपिणा । खलीकृत्य चिरं नीतः स्थविरांतं निजेच्छया ॥१०४॥ अवतीर्णस्ततो भानुरहो कौशलमित्यलं । हसितः साष्ट्रहासेन करास्फालनकारिणा ॥१०५॥ जरकारोप्यमाणस्तु भानुलोकेन तं चिरं। खलीकृत्य व्यलीकेन व्यालाश्वस्थः स्वयं ययौ ॥१०६॥

मायामर्कटमायाश्वेभीमोपवनभंगकृत् । अञ्चोषयन्महावापीं मायया मदनस्तदा ॥१०७॥ मिक्षकादंशमशकैः सकरस्पंदनं नृपं । निवर्त्य द्वारि चिक्रीड खरमेषरथी चिरं ॥१०८॥ व्यामोह्य पौरलोकं च विविधक्रीडया चिरं । वसुदेवेन संकीड्य मेषयुद्धेन संमदी ॥१०९॥ भोजने ग्रासने विष्ठः सत्यायाः सोग्रजन्मनः । खलीकृत्याशनैर्लग्नै श्लाहिरकोऽगमत् ॥११०॥ विकृत्य क्षौल्लकं वेषं मातृमोदकमक्षिणा ! नामादेशकरस्तेन नापितश्र तिरस्कृतः ॥१११॥ संकर्षणस्य इत्वेच्छां पादाकर्षणकारिणः । आरराम चिरं स्वेच्छं लोकविस्मयकृत्कृती ॥११२॥ प्रद्युम्नागमचिद्रानि पूर्वोक्तानि तदा परे । प्रस्तुतस्तनकुंभाया मातुरध्यक्षतां ययुः ॥११३॥ सातोऽचितयदत्यंतविस्मिता मे सुतोन्वयं । कृतरूपपरावृत्तिरागतः षोडशाब्दके ॥११४॥ तं प्रद्युम्नकुमारोपि तत्क्षणं प्रकृतिस्थितः । सुतस्तेहमितीरित्वा मातरं प्रणनाम सः ॥११५॥ सानंदसाकुलाक्षी तं रुक्मिणी तनयं नतं । परिश्वज्य जहाँ दुःखमश्रुभिः सहसा चितं ॥११६॥ दर्शनामृतसिक्ताया पुलकव्यपदेशतः। प्रत्यंगरोमकूपेभ्यः सुतस्नेह इवोद्ययौ ॥११७॥ तयोः कुशलसंत्रश्चे संवृत्ते मातृपुत्रयोः । माता पुत्रमेवोचत्तं चित्तानिवृत्तिदायिनं ॥११८॥ धन्या कनकमालासौ पुत्र ! पुत्रफलं यया । बालकीडावलोकारूयमनुभूतं शिशोस्तव ॥११९॥

सप्तचत्वारिंदाः सर्गः।

इत्युक्ते प्रणिपत्यासौ जगाद नयनोत्सवः । बालभावमहं मातर्दर्शयामीह दृश्यतां ॥१२०॥ ततः स तत्थ्यणं जातस्तदहर्जातदारकः । आस्त्रादितकरांगुष्ठः प्रोत्फुल्लनयनोत्पलः ॥१२१॥ ततस्तनंधयो जातो गृहीतस्तनचूचुकः । तयोत्तानशयो मातुः करपछ्नसौख्यदः ॥१२२॥ संसर्पन्तुरसा जातस्तथोत्तिष्ठत्पतत्पुनः । मातुः करांगुलौ लग्नो मणिकुट्टिमसर्पिणः ॥१२३॥ पांशुक्रीडां विधायांबाकंठलग्नो व्यधात्सुखं। कलालापस्मिताह्नादिवदनो वदनेक्षणः ॥१२४॥ मनोहरशिशुक्रीडापूरितांबामनोरथः । स्वभावस्थितदेहस्थो नत्वा विज्ञाप्य तां सुतः ॥१२५॥ क्षिप्रमुतिक्षप्य बाहुभ्यां नियति प्रकटस्थितः । जगाद श्रूयतां सर्वेरिह यादवपार्थिवैः ॥१२६॥ युष्माकं पत्रयतामेव लक्ष्मीरिव हरेः त्रिया । हियते रुक्ष्मिणी देवी यादवाः परिरक्ष्यतां ॥१२७॥ इत्युक्तवा शंखमापूर्य नारदोदधिकन्ययोः। विमाने स्थापयित्वा तां युद्धार्थं वियति स्थितः ॥१२८॥ विनिर्ययुस्ततः पुर्या योद्धं सन्नद्य यादवाः । चतुरंगवलोपेताः पंचायुधविचक्षणाः ॥१२९॥ विद्यावलेन निक्शेषं कामी यादवसाधनं । मोहयित्वांबरम्थेन युयुधे हरिणा चिरं ॥१३०॥ अस्तकौशलवैफल्ये कृते कृष्णस्य सूनुना । प्रौढदृष्टी महादोभ्यों योदुं वीरौ सम्रुच्छितौ ॥१३१॥ विम्रुक्तनारदेनोभौ वियत्यागत्य वेगिना । वारितौ तौ पितापुत्रसंबंधविनिवेदिना ॥१३२॥

ततः प्रणतमाश्चिष्य प्रद्युम्नं प्रमदं हरिः । आनंदाश्रपरीताक्षः समयोजयदाशिषा ॥१३३॥
मायया शायितं सैन्यं समुत्थाप्य सिवद्या । तृष्टो बांधवलोकेन मदनः प्राविश्वतपुरीं ॥१३४॥
किमणीजांबवत्यौ ते जातपुत्रसमागमे । तदाचीकरतां तोषादुत्सवं वत्सवत्सले ॥१३५॥
मान्यो मान्याभिरन्यस्त्रीश्रीकरीभिरसौ ततः । मनोभूवरकन्याभिः कल्याणमभजतपरं ॥१३६॥
कनत्कनकमालया कनकमालया सेवया विवाहसमयाप्तया समभिदृष्टकल्याणकः ।
विवाह्य विधिना वधूरुद्धिपूर्विका मन्मथो जिनेंद्रवरशासनोजितसुखोद्यः सोन्वभूत्।१३७॥
इस्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनेसनाचार्यकृतौ कुरुवंशप्रद्युम्नमानृषितृसमागमवर्णनो नाम सप्तचत्वारिशः सर्गः ।

अष्टचत्वारिंशः सर्गः

अथ शंबस्य संभूतिं सुभानोश्व यथाक्रमं । कथयामि यथावृत्तं श्रृणु श्रेणिक हारिणीं ॥ १॥ देवः कैटभपूर्वोसी पूर्वमुक्तोऽच्युतोद्धवः । हरये हारिणं हारं ददौ भामासुतार्थिने ॥ २॥ प्रदोषसमये हारं तं प्रद्युम्त्रप्रयोगतः । सत्यारूपघरां भुक्त्वा लेभे जांबवती हरेः ॥ ३॥ कैटभश्च तदा च्युत्वा पुण्यादप्रच्युतोदयः । श्रितो जांबवतीगर्भं सागता च निजं गृहं ॥४॥

अष्टचत्वारिद्याः सर्गः।

हींर सत्यापि संप्राप्ता संप्राप्तमदनोदया । रिमता च द्धे गर्भे सा स्वर्गच्युतमर्भकं ॥ ५ ॥ वर्धतेस्म ततो हर्षे गर्भयोर्वधमानयोः । पितृमातृस्वबंधूनां सिंधूनामिव चंद्रयोः ॥ ६॥ पूर्णेषु नवमासेषु शंबं जांबवती सुतं । सुषुवे सत्यभामापि सुभानुं भानुभास्वरं ॥ ७ ॥ हृष्टा प्रद्युम्नशंत्राम्यां रुक्मिणी जांबवत्यिष । भामा भानुसुभानुभ्यां श्रिताभ्यामुद्यश्रियं ॥ ८ ॥ हरेरन्याम्विप स्त्रीषु जाताः पुत्रा यथायथं । यद्नां हृदयानंदाः सत्यसत्वयशोऽधिकाः ॥ ९ ॥ शंबः कीडासु सर्वासु कुमारशतसेवितः । जित्वा सुभानुमाक्रम्य विक्रमी रमतेतरां ॥ १० ॥ रुक्मिणी रौक्मिणेयाय वदर्भी रुक्मिणः सुतां। ययाचे न ददौ कन्यां सोऽपि पूर्वविरोधतः॥११॥ गत्वा मातंगवेषेण शंबप्रद्यम्मसंवरौ । बलादाहरतां कन्यां रुक्मिणं परिभूय तौ ॥ १२ ॥ परिणीय ततः कामः कन्यामन्यामिव श्रियं । अरीरमदरं भोगैद्वीरिकार्या मनोरमैः ॥ १३ ॥ दक्षो जित्वा सुभानुं तं द्यूते प्रेक्षणकेक्षणे । शंबो ददाति सर्वस्य लोकस्य सकलं धनं ॥ १४॥ क्रीडया स पुनार्जिंग्ये पक्षिणांर्बहुजिल्पनोः । गंधयुक्तिप्रयोगेण पुनः सदिस शार्झिणः ॥ १५ ॥ अग्निशोध्येन दिच्येन सबस्तयुगलेन तं । दिच्यालंकारयोगेन जिगाय सदिस प्रभोः ॥ १६॥ बलदर्शनतो जित्वा तमसौ हृष्टविष्णुतः। मासं लब्ध्वा पुना राज्यं चक्रे दुर्लिखाः कियाः॥१७॥ ताडितः पुनरुद्वतः पित्रा प्रणयकोपिना । युग्येन कन्यकारूपः सत्योत्संगमतोऽविशत् ॥ १८॥ सत्या सतार्थमानीतां विवाह्य वरकन्यकाः । आविश्वकार रूपं स्वं श्रंबो लोकस्य पश्यतः ॥१९॥ एकस्यामेव रात्रो तु कन्यकानां शतेन सः । कल्याणस्नातकं स्नात्वा मातृसौख्यकरोऽभवतु ॥२०॥ सत्यभामादिदेवीनां कुमाराः शतशस्तदा । विवाह्य बहुशः कन्याश्रिकींडुः शक्रकीर्तयः ॥२१॥ क्रीडापूर्व गतो गेहमन्यदा मान्यमात्मनः । पितामहमिति प्राह शंबः प्रणतिपूर्वकं ॥२२॥ युष्माभिः सर्वकालेन क्लेशेन खचरांगनाः। पर्यटद्भिः क्षितौ लब्धाः पूज्य पूज्या मनोरमाः।।२३।। अक्लेशेनैकरात्रेण मया तु गृहवर्तिना । परिणीताः शतं कन्याः पश्यतांतरमावयोः ॥२४॥ वसुदेवस्ततः प्राह वत्स त्विमिषुवत्पुनः । क्षिप्तोऽपि गृहमध्येऽपि दूरमंत्रमावयोः ॥२५॥ मया खेटपुरांभोधिमकरेण समं निजं। द्वारिकाकूपमंडूकः पंडितंमन्य मन्यसे ॥ २६॥ अनुभूतं श्रुतं दृष्टं यन्मयातिमने।हरं । विद्याधरपुरेष्वेतदन्येषामतिदुर्रुभं ॥२७॥ इत्युक्ते प्रणतेनोक्तः शंबेनानकदुंदुभिः। शुश्रूषामार्य वृत्तं ते भण्यतामिति सादरं।।२८॥ स प्राहानंदभेयी त्वं वत्स बोधय यादवान् । कथयामि समात्तानां सहैव चरितं निजं।।२९॥ तथा कृते समस्तेभ्यो यादवेभ्यः सविस्तरं । कलत्रादिसमेतेभ्यो वृत्तं तेनाकथि स्वकं ॥ ३०॥

लोकालोकविभागोक्ति हरिवंशानुकीर्तनं । स्वक्रीड्रां सौर्यलोकोक्तिनिर्गमं च ततो निजं ॥३१॥ इत्यादि चरितं दिव्यं दिव्यमानुषसंभवं । प्रद्युम्नशंबसंभूतिभूतिपर्यवसानकं ॥ ३२॥ वसुदेवस्य सर्वोऽपि सर्वविद्याधरीमयः । अंतःपुरजनो हृष्टः श्रुतस्मरणसंगतः ॥ ३३ ॥ श्रुत्वा सभाजनाश्चापि वृद्धस्त्रीयुवबालकाः । यादवींऽतःपुराण्येपां कुरवो द्वारिकाजनाः ॥३४॥ विस्मयं परमं प्राप्ताः शर्शसुः संशयोज्झिताः । वसुदेवं शिवाद्याश्च देव्यः पीतकथारसाः ॥३५॥ यथायथं नृपा जग्मुरावासान्वासितांबराः । अंतःपुराणि सर्वेषां रक्षितानि सुरक्षकैः ॥ ३६ ॥ कथा पुनर्नवीभूता प्रतिवेश्म दिने दिने । जाता जनस्य साश्चर्या वसुदेवमयी कथा ।। ३७ ।। नत्वा पृष्टवते भूपः श्रेणिकाय गणी जगौ । कुमारान् कतिचित्पूर्यामिति वीरवचः ऋमात् ॥३८॥ उग्रसेनस्य तनया धरो गुणधरोऽपि च । युक्तिको दुर्धरश्चापि सागरश्चंद्रसंज्ञकः ॥ ३९ ॥ उग्रसेनिपतृब्यस्य शांतनस्य सुतास्त्वमी । महासेनिशिवस्वस्थविषादानंतिमत्रकाः ॥ ४० ॥ महासेनस्य तनयः सुषेण इति नामतः । हृदिको विषमित्रस्य शिवेः सत्यक इत्यसौ ॥ ४१ ॥ हृदिकात्कृतिधर्मासौ दृष्धमी च देहजः । सत्यकाद्वज्ञधर्मोऽभूदसंगस्तु तदंगजः ॥ ४२ ॥ समुद्रविजयोद्भृता महासत्यदृडाधिकाः । नेमयोऽरिष्ट्नेमीशः सुनेमिर्जयसेनकः ॥ ४३ ॥

महीजयः सुफल्गुश्च तेजःसेनो मयस्तथा । मेघाख्यः शिवनंदश्च चित्रको गौतमादयः ॥४४॥ अक्षाभ्यस्योद्धवः सुनुर्वचः क्षुभितवारिधीः । अंभोधिजलधी चान्यौ वामदेवदृष्टवतौ ॥ ४५ ॥ तनयाः पंच विख्याता जाता स्तिमितसागरात्। ऊर्मिमान् वसुमान्वीरः पातालस्थिर इत्यमी॥४६॥ विद्युत्प्रभो नरपतिर्माल्यवान् गंधमाद्नः । इत्यमी सत्यसत्वाद्यास्त्रयो हिमवतः सुताः ॥ ४७ ॥ विजयस्यापि षट् पुत्रा निष्कंपोऽकंपनो वलः । युगांतः केशरी धीमानलंबुष इति श्रुताः ॥४८॥ महेंद्रो मलयः सह्यो गिरिः शैलो नगोऽचलः । इत्येतेन्वर्थनामानः सप्ताचलशरीरजाः ॥४९॥ धरणस्यात्मजाः पंच वासुकिः स धनंजयः । कर्कोटकः शतग्रुखो विश्वरूपश्च नामतः ॥५०॥ दुष्पूरो दुर्मुखाभिरूयो दुर्दशों दुर्धरोऽपि च । सूनवः पूरणस्यामी चत्वारश्रतरिक्रयाः ॥५१॥ पुत्राः षडभिचंद्रस्य चंद्रनिर्मलकीर्तयः । चंद्रः शशांकचंद्राभौ शशी सोमाऽमृतप्रभः ॥५२॥ तनया वसुदेवस्य बहुसंख्या महाबलाः । नामतः कतिचिद्वचिम श्रणु श्रेणिक तानहं ॥५३॥ पुत्री विजयसेनाया अकूरकूरनामकौ । ज्वलनानिलवेगाख्यौ श्यामाख्यायाः शरीरजी॥ ५४ ॥ पुत्राः गंधर्वसेनायास्त्रयो लोका इव त्रयः । वायुवेगोऽभितगतिर्महेंद्रगिरिरित्यसौ ॥५५॥ अमात्यदुहितुर्जाताः पद्मावत्याः सुतास्त्रयः । दारुर्वृद्धार्थनामा च दारुक इत्युदीरिताः ॥ ५६ ॥ द्धौ नीलयशसः पुत्रौ धीरौ सिंहमतंगजौ । नारदो मरुदेवोऽपि सोमश्रीतनयौ वरौ ॥ ५७ ॥ मित्राश्रयः सुमित्राख्यः कपिलः कपिलात्मजः। पद्मश्र पद्मकाख्यश्र पद्मावत्याः शरीरजौ ॥५८॥ अश्वसेनोऽश्वसेनाया पैंड्राया पैंड्र एव तु । रत्नगर्भः सुगर्भश्च रत्नवत्याः सुतौ मतौ ॥ ५९ ॥ सोमदत्तसुतायास्तु चंद्रकांतशिश्रभौ । वेगवान्वायुवेगश्र वेगवत्यास्तन्भवौ ॥६०॥ दृष्टिमुष्टिरनावृष्टिहिंममुष्टिश्व ते त्रयः । पुत्रा मदनवेगाया मदनप्रतिमागताः ॥६१॥ बंधुषेणस्तथा सिंहसेनो बंधुमतीसुतौ । प्रियंगुसुंदरीसूनुः शीलायुध इति श्रुतिः ॥६२॥ द्रौ सुतौ तु प्रभावत्यागंधारः पिगलस्तथा । जरत्कुमारवाह्मीकौ जरायास्तनयौ स्पृतौ ॥६३॥ अवंत्याः सुमुख्येव दुर्भुख्य महारथः । रोहिण्या वलदेवय सारण्य विदूरथः ॥६४॥ तनुजी बालचंद्राया वज्रदंष्ट्रमितप्रभी । देवकीतनुजी विष्णुरितीमे वसुदेवजाः ॥६५॥ उन्धंडो निषधश्रासौ प्रकृतिद्युतिरप्यतः । चारुद्त्तो ध्रुवः पीठः स शक्रंदमनोऽपि च ॥६६॥ श्रीध्वजो नंदनश्चेव धीमान् दशरथस्तथा । देवनंदश्च विख्यातो विद्वमः शंतनुः परः ॥६७॥ पृथुः शतधनुश्रेव नरदैवा महाधनुः । रोमशैत्यादयः पुत्रा बहवो बलिनस्तथा ॥६८॥ भानुः सुभानुभीमौ च महाभानुसुभानुकौ । वृहद्रथश्चामिशिको विष्णुसंजय एव च ॥६९॥

अकंपनो महासेनो धीरो गंभीरनामकः । उद्धिगींतमश्रापि वसुधर्मा प्रसेनजित् ॥७०॥ सूर्यश्च चंद्रवर्मा च चारुकृष्णश्च विश्वतः । सुचारुर्देवदत्तश्च भरतः शंखसंज्ञकः ॥७१॥ प्रद्यस्मगंबनामाद्या केशवस्य शरीरजाः । शस्त्रास्त्रशास्त्रिनिष्णाता सर्वे युद्धविशारदाः ॥७२॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च यादवानां यशस्विनां । पेतृश्वस्तीया स्वस्त्रीयाः कुमारास्ते सहस्रशः ॥७२॥ तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च कुमाराणां महौजसां । मनोभवस्वरूपाणां रमंते रमणित्रयाः ।

नित्यं द्वारवती पुरी परिगता वीरैः कुमारेरिमैः

निर्गच्छिद्धिरतस्ततो रथग्जारु है विशक्तिस्तथा

नानावेषधरैः प्रचंड चरितैः पौरप्रजाह्यादिभि-

बिभाजे भवनामरेरिव पुरी पाताललोकस्थिता ॥७५॥

प्रायः स्वर्गेच्युतानां जिनपथचिरतोदारपुण्योदयानां

कीत्यानां कीत्यमानं चरितमिद्मिहश्रीकुमारोत्तमानां

संश्रृण्वंत्येकमत्या मतिविभवयुताः श्रद्धाना जना ये

कौमारं यौवनं च व्यपगमितरुजस्ते वयो निर्विशंति ॥ ७६॥

इति अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ यदुकुलकुमारोद्देशवर्णनो नाम अष्टचत्वारिंश: सर्गः ।

एकोनपंचाशः सर्गः ।

अथ मधुसूद्नावरज्ञया वरया जगताम।वेतथकन्यया शशिविशुद्धयशोधरया प्रथितसुदुर्मरप्रथमयौवनभूरिमरः प्रकटमभारि हारिगुणभूगणभूषितवा ॥१॥ नखमणिमंडलेंदुरतिनिमलपल्लवयोरकृत करकृता हसितभास्वदलक्तकयोः मृदुपद्पद्मयोः प्रमद्भागसमन्त्रितयोर्जगति यदीययोरुपमयापगतं त्रपया ॥२॥ दृद्गुणगूद्गुल्फनिजजानुमनोहरयोः प्रतिपदमानुपूर्विपरिवृत्तविलोमशयोः निरुपमजंघयोर्जघनभूरिभरक्षमयोः सविरसमल्पयोर्न हि यदीयकयोरुपमा ॥३॥ मृदुपरिवृत्तपांडुरगुणं विगलद्वहलस्थिरकरकांतिदीप्तिरसपूरितमूरुयुगं। करिकरयष्टिवृत्तकदलीपृदिमानमतिपथितमतीत्य सत्यगुणचारि यदीयमभात् ॥४॥ बहुरसपूर्णवर्णकुलशैलभवप्रमदा प्रमद्विधायि पुण्यसरितः कलहंसगतेः। गुरुजघनस्थलीपुलिनभूमिरभूमिरसौ कुसुमरथस्य शुंभितनितंत्रतटेत बभौ ॥५॥ तनुमृदुरोमराजिलतयातिविनीतरुचा जननयनाभिरामनिजनाभिगभीरतया । तनुमध्यबंधनवलित्रयविचित्रतया ललितवध्यजनेष्वतिविराजितमत्रपया ॥६॥

उरसि नितातनीलनिजचूचुकयोरसकौ कठिनसुवृत्तपीवरपयोधरयोर्भरतः। अमृतरसक्षयक्षरणभीहरिनीलमणि स्थिरतरमुद्रिकोत्कनककुंभवहेव बभौ ॥७॥ भुजलतयोः शिरीषमृदुपीनवरांसकयोः वरकमलप्रभापटलपाटलपल्लवयोः। कुरुवकताम्रकम्मनखपुष्पकयोर्वपुष्रतनुकृतमुद्रकोशकरशाखकयोर्विबभी ॥८॥ अकठिनकंबुकंठिचबुकाधरबिंबफलप्रसहितपांडुगंडकुटिलभुललाटतटी । द्विगुणितकोमलोत्पलसुनालसुकर्णभूता चिरमनयात्यभासि धवलासितदीर्घदशा ॥९॥ प्रमितशिरस्यतिभ्रमरकांतिकनत्कृटिलप्रकटकटीतटीपतितकेशकलापमसौ । शशिवदना प्रकाशमवहद्विहसद्शना प्रशिथलकामपाशमिव लोकवशीकरणं ॥१०॥ करपदमुद्रिकाकटकनूपुरपूर्वकसत्प्रथितचतुर्दशाभरणभूषणभूततनुः । प्रविलसदंगरागमृदुवस्वमहास्रागियं स्थगयति कन्यकोचितसुखा वपुता युवती ॥११॥ पिनृसुतपूर्वकस्य यदुस्वकुलस्य जनै-रुचितसपर्यया विहितगौरवभूमिरसौ । सकलकलाकलगुणकलापमहावसतिः सकलसरस्वती स्वयमिव स्वजनोपविधी ॥१२॥ इति समये प्रयाति तु कदाचिदसौ प्रणतैरुपहासिता प्रयादिरवशाहरुराजसुतैः।

विचिपिटनासिकं रहसि द्र्पणके स्वमुखं स्फुटमवलोक्य तद्भवविरागमगात्त्रपिता ॥१३॥ पुरि विधृतार्जिकागणमहत्तरिकापदया त्रतथरपादमुलिमतया सह सुत्रतया । सुरगुरुरपृछचत प्रणतया निजपूर्वकृतं स्फुरदवधीक्षणः क्षणमसाविति तां न्यगदीत् ॥१४॥ तव दुहितः सुराष्ट्रविषये विषयेद्रियजैविंगतभये सुखैरतिविमुर्छितमृढिभया । पुरुवतयाभिरूपपद्मुद्रहतांगभृता निभृतमनंकुशं निभृतमात्ममनोनयनं ॥१५॥ अतिविषमं तपो घटयतो मृतशायिकया शकटमृपेरुपर्युपरि हितं तदा त्वकया। विमृदितनाशिकापुटतटस्य मुनेः स्खलनं मनसि न जातमीषद्पि धीरतया धृतया ॥१६॥ अजनितजीवघातगुणतो नरके पतनं तव हि मनाय जातमृषिगात्रवधादिह तु । अजनि विनाशिकस्य वदनस्य महाविऋतिः फलति फलं स्वकर्मजगतां हि यथाविहितं ।१७। सकृदपि जीवघातकृद्घादसकृत्परतः परवशघातदुःखमभियास्यति जंतुरिह । अवयवघातकृत् सकृदिप स्वकृतैरसकृद्वयवघातमेष्यति सदेति जिनस्य वचः ॥१८॥ वचनमनस्तनुभिरभि यः पुरुषः परुषा पुरुषवधादिषु प्रभुतया प्रयतंत इह । दुरितमहाप्रभुः परभवेषु जनेषु पुनः प्रभवति दुःखदानचरश्रतुरेश्वपि हि ॥१९॥

अत इह जंतुभिः परवधादिनिवृत्तिपरैः स्वपरिहतैः सदापि भवितव्यमपि प्रभुभिः। न हि भवपद्भतौ भवभृतामिह संसरतां सुकृतभुजां सतां प्रतिभवति सदा प्रभुता ॥२०॥ इति वचनं गुरोरिभनिशम्य कृतावनितः प्रगतवती तया सह महत्तरिकार्यकया । व्रतमद्धाद्विमोच्य हि सकाखिलबंधुजनं सितवसनावृतस्तनभरोद्धृतकालकुचा ॥२१॥ व्यपहृतभूषणस्रगियमात्मकरांगुलिभिर्निकचितकेशभारनिखिलोत्खननं तु तदा । प्रविद्धती बभी कुसुमकोमलबाहुलता स्फुटमिव धीकुटीकुटिलश्चयमिवोद्धरणं ॥२२॥ जधनप्ररः कुचानुदरमाचरणं च वपुः सुमृदुदुकूलकैकवसनेन कृतावरणं। स्वविद्धती सती चिरमराजत सा च तदा वृतसिकतास्थलाच्छपयसा शरदीव नदी।।२३।। स्वजनकृताभिनिष्क्रमणपूजनिकां जनिकां पुरुतपसं निशाम्य नवसंयतिकां हितकां । अजानि महाजनस्य सकलस्य तदेतिमातिः सधृतिः सरस्वती किम्रु तपस्यति किं नु रतिः ।२४। व्रतगुणसंयमोपवसनादितपोभिरसौ प्रतिदिनभावनाभिरपि भावितभावयुता । वसति तपस्यया वसतिरागमगीतिगरां पुरुगुणसंयता गणनिवासगता सततं ॥२५॥ बहुषु तु वर्षवासरगणेषु गतेषु ततो जिनजननाभिनिष्क्रमणनिर्देतिभूमिषु सा ।

कृतविहृतिः कदाचन गता पृथुसार्थवशाञ्जिजसहधर्मिणीभिरुरुविध्यमहागहनं ॥२६॥ निशि निशितासिनिर्मलनिशातमनास्त्वसकौ प्रतिपथया स्थिता प्रविशया प्रतिमा प्रतिमा । वरशवरसेनया स्फुटमदार्शे निर्शानिभया बहुघनसार्थपातविधेयद्वतमागतया ॥२७॥ इह वनदेवतास्थितवतीयमिति प्रणतैः शबरशतैरितिस्ववरदानमयाच्यत सा । भगवति वः प्रसादनिरुपद्रविणो द्रविणं यद्भिलभेमहि प्रथमिकंकरका वयकं ॥२८॥ इति तु वनेचरैः कृतमनोरथकैः पृथुकैः प्रबलतयासुसार्थमभितः पुनरापतितैः । विनिहितसार्थसार्थकतयांतिमतैः प्रतिमा-स्थितियुतसंयतास्थितियुवीदमद्शिं त तैः॥२९॥ प्रशमसमाधिभागनशनस्थितिमामरणादुपगतपुंडरीकादुरुपल्लवचंडतया । स्वयमुपपद्य सा दिवमगात्प्रतिमाप्तमृतिर्मधुमथनस्वसा स्वलति न स्थितितः सुजनः॥३०॥ नखग्रुखदंष्ट्रिकाविकटकोटिविपाटितया यदपि कलेवरखंडग्रुपार्जितधर्मतया । मृतिमितया विम्रुक्तमविम्रुक्तसमाधितया तदपि करांगुलित्रिकश्चेषमशेषमभूत् ॥३१॥ रुधिरविद्धप्तगुप्तपथभूतलमाकुलिताः सकलीमतस्ततस्तदभिवीक्ष्य तदा शवराः।

१ रात्रिप्रभातुत्यया-कृष्णया ।

धृतिरिह वध्यते वरददेवतया रुधिरे इति विनिधाय दैवतमदस्त्रिकरांगुलिभिः ॥३२॥ वनमहिषं निपात्य विषमं विषमाः परितः परुषिकरातका रुधिरमांसविष्ठप्रकरं। विचकरुरुद्रमग्रशकमिक्षकमिक्षविषं प्रविततविस्रगंधदुरभीकृतदिग्वलयं ॥३३॥ सुगतगताममूं परमकारुणिकां तपसा जगति जनस्ततः प्रभृति निरागसमत्र जडः। वनचरदक्षितेन नु यथा नरकाभिमुखः पिशितवशो निर्हति हि पशून्महिषप्रभृतीन् ॥३४॥ न हि महिषास्त्रपानवधिका न हि गूलकरा न हि सुरदुर्गताविप परस्परघातकता । रचयति भित्तिमात्रमुपलभ्य कविः कवितां सदैसतीं यथा च लिखति स्फुटचित्रकरः॥३५॥ सदिप दुरीहितं रहसिजं हि परस्य परैः सदिस निगद्यमानमघमावहतीहि सतां। मतिमदमस्य तु प्रकटनं जगतामसतो न नरकपातहेतुरिति कस्य सतो वचनं ॥३६॥ अवितथमित्यमी वितथमेव शठा कवयः स्वपरमहारयो विदधते विकथाकथनं । परवधकापथेषु भावि तेषु तथेति जनः सुररवमृदधीः पतित गर्डरिकाकटवत् ॥३७॥ क परदयापरः परमधर्मपथो भुवने विधिवदनुष्ठितस्तनुभृतां सुखदः प्रकटः।

१ निष्पापम् । २ ससदमतीं इति क पुस्तके ।

क च परघातजो नरकहेतुरधर्मकलिः कुकविविकल्पितः खलकलौ खलु धर्मतया ॥३८॥ प्रकटितलोकपालचिरताः खलु लोकभयात्तनुभृदनुग्रहं विद्धतः परिरक्षणतः। सम्हिष्मेष्घातम् धिदैवतमत्र नृपाः विद्धति यत्र तत्र कुजनेषु तु कैव कथा ॥३९॥ कथमपि कार्यसिद्धिम्रपलभ्य हि दैववशास्त्रतिनिधिदेवताकृतमिति प्रतिपद्य नरः । निजवपुरायुधैः सुविनिकृत्य ददद्रधिरं परतनुकर्तने भवति वा स कथं सपृणः ॥४०॥ विपुलसपर्यया प्रणतलोकसुतोषितया विगतविपर्ययत्वगुणया जगतीष्टवरः। यदि हि वितीर्यते वरदया वरदेवतया न भवति कश्चिदप्यभिमतेन जनो विकलः ॥४१॥ प्रतिनिधिराश्रयश्च सधनस्य परस्य कृतिः प्रतिदिनदीपतैलवलिपुष्पविधिः परतः। अथ च वरं परस्य नियतं प्रददाति वृतं जडजनदेवता जगति हास्यमिदं परमं ॥४२॥ प्रतिकृतिरचिता भुवि कृतार्थजिनाधिपतेरधिगतभक्तिभिद्रविणभावविधार्थतया । फलति फलं परत्र परिणाय विशेषवशादिभमतकल्पवृक्षलिकेव जनाभिमतं ॥४३॥ अपथनिघातघातनघनानुमतैरशुभैस्त्रिभिरशुभास्त्रवो भवति दुर्गतिहेतुरलं। पथि यतिभाषिते स्वकृतकारकतानुमतैर्भवति शुभास्रवः सुगतिहेतुरपीह शुभैः ॥४४॥

मनसि शुभे निजे वचसि वा वपुषि प्रगुणो किमिति न पुण्यमेव जगदेकगतं कुरुते। घटयति पापमेव विगुणैः सुकृतैः करणैर्गुरुतरमत्र कारणमहो गुरुकर्मकृतं ॥४५॥ तिमिरभरं त्रिमृढिमयमत्रदृढं जगतः स्थगयद्लं पवित्रनेत्रमनौषधकं। तदिह जनो दिदृक्षरिप तत्त्वमतत्त्वमपि प्रतिपदमाञ्चलः किम्रु निरूपियतुं क्षमते ॥४६॥ अतिनिचितामिवायुजलभूमिलतातरुभिः क्षितिरपचेतनैश्च गृहकल्पितदैवतकैः। रविविधुतारकाग्रहगणैर्जननेत्रपथैर्गगनमतोस्तु मूढिरिह कस्य जनस्य न वा ॥४७॥ सदसदनेकमेकमथ नित्यमनित्यमपि स्वकपररूपभेदमपि शेषमशेषपरं। गुणगुणिकार्यकारणभिदाद्यखिलात्मतया जगदिदमित्यमी नियमिनो दृढमूढतया ॥४८॥ यदि च परस्परच्युदसनच्यसनाः स्युर्मृषा स्फुटिमततरेतरेक्षणतया न मृषा हि तथा। निगमनसंग्रहव्यवद्दतिप्रमुखाश्च नयाः सकलनयप्रमाणपरिनिश्चितवस्तुनि याः ॥४९॥ पुरुषपुरस्सरोभिरुचिरन्यनिवृत्तिरुचेर्ध्वनिपतिशासना शासनाभिरतस्य जनस्य हि सा ।

सुगतिमयत्नतो विश्वति सिद्धिसुखान्वियनं शुभमखिलार्थगोचरमुदारचरित्रमपि ॥५०॥

व्रतगुणशीलराशिरतिघोरतपो विविधं विमलमिदं यतो भवति दर्शनशुद्धियुतं । भवपारमपारमनंतं यियासु च चेन्मैनः भजतु जनस्ततो जिनगुणग्रहणाभिरतः ॥५१॥ इति "अरिष्टनेमि'भ्युराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ दुर्गोत्पत्तिवर्णनो नाम एकोनपंचाशः सर्गः ।

पंचाशत्तमः सर्गः ।

इतः केनचिद्रणिजा अन्ध्यैर्मणिराशिभिः। जरासिधो नृपो दृष्टः स्वक्रयाणकदेतुना ॥१॥ दृष्ट्वा कस्मात्समानीताः प्रोवाच मगधेश्वरः । नारायणः क्षमां शास्ति द्वारावत्याः प्रभो बली॥२॥ यादर्वेद्रशिवादेव्योर्नेमिस्तीर्थकरोऽभवत् । मासान् पंचदश्च तत्र रत्नवृष्टिः कृता सुरैः ॥३॥ यादवानां च माहात्म्यं श्रुत्वा राजगृहाधिपः । वणिजः तार्किकेभ्यश्च जातः कोपारुणेक्षणः ॥४॥ यदुवृद्धिमिति श्रुन्वा श्रुतवृद्धिविलोचनं । प्रणम्य गणिनं भूपः श्रेणिकोऽपृच्छिदित्यसौ ॥५॥ मणिराशिष्विवांमोधौ महागुणमरीचिषु । प्रख्यातेष्विखिले लोके यादवेष्वतिभूरिषु ॥६॥ अनेकाहवनिव्यूढद्दवीर्ये हरी श्रुते । किमचेष्टत राजासी भगवानमगघाधिपः ॥७॥

१ " जननजरामृतिक्षयकरीं सुखदां भुवि तां " इति ख पुस्तके पाठान्तरम् ।

ततो गणभृदाचख्यावनयोर्नरमुख्ययोः । वृत्तं श्रेणिकभूपाय शुश्रुषावहितात्मने ॥८॥ बुद्धवार्ती जरासंधः संधि प्रति पराङ्मुखः । प्रमुख्यैमैत्रिभिः सत्रा मंत्रमारभ्यतेस्म सः ॥९॥ उपेक्षिताः कृतो हेतो मंत्रिणो भरतारयः । वाधौं प्रवृद्धसंतानास्तरंगा इव भंगुराः ॥१०॥ मंत्रिणो हि प्रभोश्रक्षनिर्मलं चारचश्रुषः । ते कथं स्वामिनं स्वं च वंचयंति पुरः स्थिताः ॥११॥ यदि नाम महैश्वर्यप्रमत्तेन महाद्विषः । नालक्ष्यंत प्रतन्वाना युष्माभिस्तु कथं तु ते ॥१२॥ नोरिच्छद्येरन्महोद्योगैर्जातमात्रा यदि द्विषः । दुःखयंति दुरंतास्ते व्याधयः कुविता इव ॥१३॥ कंसं जामातरं हत्वा भ्रातरं चापराजितं । प्रविष्टाः शरणं दुष्टा यादवा यादसां प्रति ॥१४॥ यद्यपनवगाद्याब्धिगंभीरोद्रमाश्रिताः । उपायानायनिः कृष्टा वध्यास्ते मे झषा यथा ॥१५॥ द्वारिकावधि तिष्ठंतः संतिष्ठंते कृतोध्भयाः । तावदेव हि ते यावश्व मे कोपानलो ज्वलेत ॥१६॥ इयंतं कालमञ्जाता ज्ञातिभिः सह सुस्थिताः । ज्ञातानामधुना तेषां सुस्थितिर्मदृद्धिषां कुतः ॥१७॥ सामश्रोपपदानस्य न ते स्थानं कृतागसः । ततो युष्माभिरेकांतात्स्थाप्यतां भेददंडयोः ॥१८॥ दंडोपायप्रधानं तं स्वामिनं मंत्रिणस्तथा । प्रशास्य प्रणताः प्रोचुः प्रसादपदवीस्थिताः ॥१९॥ आकर्ण्यतां यथा नाथ विंदंतोऽपि वयं द्विषां। द्वारिकायां महावृद्धिः कालयापनया स्थिता ॥२०॥

वंचाशतमः सर्गः ।

यादवान्वयसंभूताः स्वर्भवामिप दुर्जयां श्रीनेमिवीसुदेवश्र बलदेवश्र ते त्रयः ॥२१॥ स्वर्गावतारकाले यः पृजितो वसुवृष्टिभिः । सुरेंद्रैरिमिषिक्तश्च जिनो जन्मनि मंदिरे ॥२२॥ स कथं युधि जीयेत भवतामररक्षितः । युक्तेनापि समस्तेन राजकेन भुवस्तले ॥२३॥ षलकेशवयोश्रापि सामर्थ्य भवता न किं। तच्छूतं बहुयुद्धेषु शिशुपालवधादिषु ॥२४॥ यत्पक्षाः पाडवाश्रंडाः प्रतापार्जितकीर्तयः । विद्यापराश्च बहवो वैवाहिकपथस्थिताः ॥२५॥ कोट्यो यत्र कुमाराणां प्रसिद्धा रणशालिनां । स्वामिन्नर्धचतुर्थास्ते जीयंते यादवाः कथं ॥२६॥ अंतस्थानप्यपां पत्युस्तान् कदाचिदपेक्षया । मद्भीता इति मामंस्था नयमार्गविदो यदून्।।२७॥ दैवकालवलोपेता देवताकृतरक्षणाः । सप्तव्याघोषमा देव ! तावत्तिष्ठंतु यादवाः ॥२८॥ आस्महे वयमप्यत्र कालयापनया प्रभो !। स्वाज्ञस्वपरकालानां याप्यावस्था हि शस्यते ॥२९॥ अनयावस्थयाऽऽसीने त्विय तेषां प्रकोपिनां । द्विषां प्रतिविधानाय प्रतिपद्यस्व पौरुषं ॥३०॥ इत्यादिमंत्रिभिः पथ्यं तथ्यं विज्ञापितं प्रभुः । नाग्रहीत्क्षयकाले हि ग्राही ग्राहं न मुंचित ।।३१।। सचिवानपकर्णाञ्च प्रकोपाय नृपो द्विषां । दूतं सोजितसेनारुयं प्रहिणोद्द्वारिकां पुरी ॥३२॥ स प्राच्यानां प्रतीच्यानामपाच्यानां च भूभूतां। उदीच्यानामगस्थानां मध्यदेशाधिवासिनां ॥३३॥ चतुरंगबलेशानां शासनानतिलंघिनां । दूतानजीगमितक्षप्रमायांत्विति पराक्रमी ॥३४॥ दतदर्शनमात्रेण कर्णद्योधनादयः । ते संप्राप्ता जरासंधं सत्यसंघाहितैषिणः ॥३५॥ नुपैस्तरनुयातोसौ तनयाद्यैर्महाबलैः । निमित्तैर्वार्यमाणोऽपि प्रतस्थेऽरिजिगीषया ॥३६॥ स दृतों जितसेनो अपि स्वामिकार्यहितः पुरीं । सुद्वारां द्वारिकां प्राप सुकृतीव दिवं कृती ॥३७॥ प्रविषय नगरीं रम्यामनेकाद्भृतसंकुलां । दृश्यमानो जनैः पौरेराससाद नृपालयं ॥३८॥ अशेषयादवाकीणों भोजपांडवसंयुतां । सभां स प्राविशद्विष्णोः प्रतीहारनिवेदितः ॥३९॥ कृतप्रणितरध्यास्य दापितासनमग्रतः । वक्तुं प्रारभत स्वामिबललाभावलेपतः ॥४०॥ आकर्ण्यतां समाधाय मनः सकलयादवैः । यथा शास्ति महाराजो मागधः परमेश्वरः ॥४१॥ युयमेव स्फुटं ब्रुत किमनिष्टं कृतं मया । युष्माकं येन सार्शका प्रविष्टाः सागरोदरं ॥४२॥ सापराधतया युयं यद्यप्युद्धतभीतयः । दुर्गे श्रितास्तथाप्यस्मन्भमयं नमतैत्य मां ॥४३॥ अथ दुर्गबलाद्यूयं तिष्ठतानतिवर्जिताः। एषोऽहं सागरं पीत्वा बलैः कुर्वे कदर्थनां ॥४४॥ अज्ञातावस्थितीनां च कालदेशबलं बलं। अधुना ज्ञातवार्तानां कालदेशबलं कृतः ॥४५॥ वचोहरवचः श्रुत्वा कुपिता निखिला नृपाः । कृष्णादयो जगुस्तत्र भृकुटीकुटिलाननाः ॥४६॥

आयात्यासन्नकालोऽसौ समस्तबलसंयुतः । रणातिथ्यं ददामे। उसमै संग्रामोरकंठिता वयं ॥४७॥ इत्युक्त्वा सविसृष्ट्रस्तै सक्षवाग् वज्रताडितः। गत्वा स्वस्वामिने पूर्वी निवेद्य कृतितां गतः ॥४८॥ विमलामलकाईला समुद्रविजयं ततः । मंत्रिणो मंत्रनिपुणा संमञ्येति व्यजिज्ञपन् ॥४९॥ शांतये सामदंडस्य स्यात्स्वपक्षविपक्षयोः । मागधेन समं साम तस्माद्राजन् प्रयुंजमहे ॥५०॥ ज्ञातिवर्गः समस्तोयं कुमारनिकरादिकः । अपायबहुले युद्धे संशयः कुशलं प्रति ॥५१॥ संति योधा यथास्माकममोघशरवर्षिणः । साधनो मागधस्यापि तथैव भ्रुवि विश्वतः ॥५२॥ तदेकस्यापि हि ज्ञातेरपायो रणमूर्धनि । यथा शत्रोस्तथास्माकमतिदुःखकरे। भवेत् ॥५३॥ अतो विश्वजनीनार्थं साम तावत्प्रशस्यते । तद्थे प्रेष्यतां दूतो माधवांतिकमस्मयात् ॥५४॥ मागधः साम्यमानोऽपि साम्ना यदि न साम्यति। तदा तद्चितं कुर्मः को दोषः सामयोजने ॥५५॥ इति मंत्रिभिरामंत्र्य राजा विज्ञापितस्तदा । को दोष इति संमंत्र्य लोहजंघमजीगमत् ॥५६॥ स दक्षः शौर्यसंपन्नः कुमारो नीतिलोचनः । जगाम निजसैन्येन जरासंघेन संघये ॥५७॥ पूर्वमालवमासाद्य कृतसैन्यनिवेशनः । प्राप्तौ कांतारभिक्षार्थं कांतारे सार्थयोगिनौ ॥५८॥ मासोपवासिनौ दृष्ट्वा तिलकानंदनंदकौ । प्रतिगृद्धान्तपानाद्यैः पंचाश्रयीणि लब्धवान् ॥५९॥

पंचाशत्तमः सर्गः।

तीर्थे देवावताराख्यं ततः प्रभृति भूतले । भूतं भूतसहस्राणां पापोपशमकारणं ॥६०॥ दतो गत्वा जरासंधं संधानं प्रत्यसन्मुखं । प्रत्यवोधयदेकांते प्रतिबोधनपंडितः ॥६१॥ लोहजंघवचोत्यंतप्रसन्नः प्रतिपन्नवान् । स संधानं जरासंधः षण्मासावधिकं ततः ॥६२॥ दतः पूजां नृपात्प्राप्य स प्राप्य द्वारिकां ततः । समुद्रविजयाद्यर्थे निवेद्य स्थितवान् कृती ॥६३॥ साम्येनैव ततो वर्षे सामग्रीप्रत्यपेक्षया । पूर्णे पूर्णमहासंघौ महासामंतसन्नतिः ॥६४॥ जरासंघोऽत्र संप्राप्तः सैन्यसागररुद्धदिक्। दुरुक्षेत्रं महाक्षत्रप्रधानप्रधनोचितं ॥६५॥ पूर्वमभ्येत्य तत्रैव केशवोऽपरसागरः । तस्थावापूर्यमाणः सन् वाहिनीनिवहैनिंजैः ॥६६॥ तत्रापाच्या नृपाः केचिदुदीच्याश्रापरांतिकाः । संबंधिनः सृता विष्णुं सकलैः स्ववलैर्युताः॥६७॥ द्शाही सांत्वना भोजाः पांडवाश्वापि बांधवाः। अन्ये च नृपशार्द्लाः प्रसिद्धा हरये हिताः॥६८॥ अक्षौद्दिणीपतिस्तत्र समुद्रविजयो नृपः । उग्रसेनोग्रणीः पुंसा तथैवाक्षौहिणीप्रभुः ॥६९॥ मेरुरक्षौहिणीस्वामी श्रीमानिक्ष्वाकुवंशजः । अक्षौहिण्यर्धेनाथस्तु राष्ट्रवर्धनभूपतिः ॥७०॥ तथार्घाक्षौहिणीनाथः सिंहलानामधीश्ररः राजा पद्मरथश्चापि तत्समानवलो वली ॥७१॥ दायादः शकुनेवीरः चारुदत्तः पराक्रमी । अक्षौहिणीचतुर्थाशपतिः कृष्णहितेरितः ॥७२॥

वर्वरा यमना भीरा कांबोजा द्रविडा नपाः । अन्ये च हवः स्रराः शौरिपक्षमुपाश्रिताः ॥७३॥ अक्षाहिण्यो वर्गुणा जरासंधमुपागताः । चक्ररत्नप्रभावेन वशीभावितभारतं ॥७४॥ अक्षोहिणीप्रमाणं तु सप्रमागमुदीरितं । वाजिवारणपत्तीनां रथानां गुणनायुतं ॥७५॥ नवहस्तिसहस्राणि नवलक्षा रथा मताः । नव कोट्यस्तुरंगास्तु शतकोट्यो नरा नव ॥७६॥ यद्ष्वतिरथो नेमिस्तथैव बलकेशवौ । अतिक्रम्य स्थितान् सर्वात्र भारतेऽतिरथांस्तु ते ॥७७॥ समुद्रविजयो राजा वसुदेवो युधिष्टिरः । भीमकर्णार्जुनो रुक्मी रौक्मणेयश्च सत्यकः ॥७८॥ धृष्ट्युम्नोप्यनावृष्टिः शल्यो भूरिश्रवा नृषः । राजा हिरण्यनाभश्र सहदंवश्र सारणः ॥७९॥ शस्त्रशास्त्रार्थिनिपुणाः परांमुखद्यापराः । महात्रीर्या महार्थयो राजानोऽमी महारथाः ॥८०॥ अक्षोभ्यपूर्वकाश्राष्टी शंबो भोजा विद्रथः। द्वपदः सिंहराजो अपि श्रुल्यो बज्जः सुयोधनः ॥८१॥ पौंदुः पद्मरथश्चापि कपिलो भगदत्तकः । क्षेमधूर्त इमे सर्वे समाः समरथा रणे ॥८२॥ महानेमिधराकूरनिषधोल्मुकदुर्मुखाः । कृतवर्या वराटाख्यश्चारुकृष्णश्च यादवाः ॥८३॥ शकुनियवनो भानुर्दुक्शासनशिखंडिनौ । वाल्हीकसोमदत्तश्च देवशमी वकस्तथा ॥८४॥

वेणुदारी च विक्रांतो राजानोऽर्धरथा इमे । विचित्रयोधिनो धीराः संग्रामेष्वपराङ्मुखाः ॥८५॥ अतः परं नुपाः सर्वे कुलमानयशोधनाः । रथिनः प्रथिताश्रामी यथायोग्यं बलद्वये ॥८६॥ अर्णवोपमयोस्तत्र तदाभ्यर्णनिवेशयोः । सनयोस्तूर्णमागत्य कर्णस्याभ्यर्णमाकुलाः ॥८७॥ कुंती निष्णातसंबंधतनयानुमता मता । कानीनस्नेहसंभारपरायत्तशरीरिका ॥८८॥ कंठलया रुदंती तं प्रतिबोधयति सम सा । मातापुत्रस्वसंबंधमादिमध्यावसानतः ॥८९॥ ततः कंबलवृत्तांतः कुरुवंशावतारवित् । कुंती पांडुसुतत्वं तु निश्चिकायात्मनस्तदा ॥९०॥ सांतःपुरेण कर्णेन निर्णीतनिजबंधुना । पूजिताग्रात्मजं कुंती जगाद जनितादरा ॥९१॥ उत्तिष्ठ पुत्र गच्छामो यत्र ते भ्रातरोऽखिलाः । तिष्ठंत्युत्कंठिताश्चान्ये वैकुंठप्रमुखा निजाः॥९२॥ कुरूणामीश्वरः पुत्र त्वमेव भुवि सांप्रतं । कुष्णस्य रामभद्रस्य संप्रति प्राणवत् प्रियः ॥९३॥ त्वं राजावरजाग्रस्ते छत्रधारी युधिष्ठिरः । भीमश्रामरधारी तु मंत्रिमुख्यो धनंजयः ॥९४॥ नकुलः सहदेवेन प्रतीहारः सहस्फुटं । अहं तु जननी नीत्या नित्यं तव हितोद्यता ॥९५ ! इति मातृवचः श्रुत्वा भ्रातृस्नेहवशोऽपि सः। जरासंधोपकारैस्तैः स्वामिकार्यधरोऽवदत् ॥९६॥ पितरी भ्रातरी लोके बांधवाश्व सुदुर्लभाः । यद्यस्त्येवं तथाप्यत्र प्रस्तावे समुपस्थिते ॥९७॥

स्वामिकार्ये परित्यज्य बंधुकार्यमसांप्रतं । अप्रशस्यं च हास्यं च संमुखे सांप्रतं रणे ॥९८॥ एतावदत्र कार्यं तु युद्धे भ्रातृवशादते । योद्धव्यमन्ययोधिर्द्धं स्वामिकार्यकृता मया ॥९९॥ निवृत्ते युधि जीवामो यदि देववशाद्वयं । भविता निश्वयोऽस्माकमंब भ्रातृसमागमः ॥१००॥ प्रयाहि भ्रातृबंधूनामेतदेव निवेद्यतां । इत्युक्त्वा पूजिता गत्वा कुंती सर्वे तथाकरोत् ॥१०१॥ जरासंधवले तत्र समभूभागवर्तिनि । चक्रव्युहो द्विषां नित्यै रचितः कुशलैर्नृपैः ॥१०२॥ चक्रस्यारसहस्रे हि राजैकैकः समास्थितः । तस्य राजसहस्रस्य करिणां तु शतं शतं ॥१०३॥ एँकेकस्य नरेंद्रस्य द्विसहस्ररथाः स्थिताः । वाजिपंचसहस्राणि भटानां तानि षोडश् ॥१०४॥ अतश्रतुर्थभागेन संयुताः सपदि स्थिताः । नरेंद्राः पट् सहस्राणि निविष्टास्तत्र नेमिषु ॥१०५॥ मध्यत्वं च समासाद्य सुस्थितो मागधः स्वयं । राजपंचसहस्नः स श्रीमान् कर्णपुरस्तरैः॥१०६॥ तस्येव मध्यभागे तु सैन्यं गांधारसैधवं । दुर्योधनसमेतं तु धार्तराष्ट्रशतं स्थितं ॥१०७॥ मध्ये च मध्यदेशास्तु स्थितास्तत्र नरेश्वराः। पूर्वभागे स्थितास्तस्य शेषा नृपगणास्तथा।।१०८॥ कुलमानधरा धीरा नरेशा बलशालिनः । पंचाश्वत्सकलब्यूहा नेमिसंधिष्विवस्थिताः ॥१०९॥ अंतरांतरसंस्थास्तु गुल्मेर्गुल्मेर्नरोत्तमैः । व्यृहस्य वाह्यतश्चापि नानाव्यृहैर्नृपाः स्थिताः ॥११०॥ चक्रव्यृहस्तदा दक्षेरचितोऽसौ व्यराजत । स्वसाधनमनस्तोषी परसाधनभीतिकृत् ॥१११॥ चक्रव्युहं विदित्वा तं वसुदेवो विनिर्मितं । चकार गरुडव्युहं तद्भेदाय विशारदः ॥११२॥ अर्धकोटीक्रमाराणां मुख्ये तस्य महात्मनां । स्थापिता रणजूराणां नानाशस्त्रास्त्रधारिणां ॥११३॥ बली हलधरस्तत्र शार्क्सपाणिश्र मूर्धनि । स्थितावतिरथौ वीरौ स्थैयानिर्जितभूधरौ ॥११४॥ अकृरः कुमुदो वीरः सारणो विजयो जयः। पद्मो जरत्कुमारोऽपि सुमुखोऽपि च दुर्मुखः॥११५॥ सूनुर्मदनवेगाया दृढमुष्टिर्महारथः । विदृरथोप्यनावृष्टिर्वसुदेवस्य तेंऽगजाः ॥११६॥ रथरक्षान्वितो रामकृष्णयोः पृष्ठरक्षिणः । रथकोट्या समेतस्तु पृष्ठभोजः प्रतिष्ठितः ॥११७॥ पृष्टरक्षा नृपास्तस्य भोजस्य नृपतेस्ततः । यारणः सागरश्चान्ये रणशौंडा व्यवस्थिताः ॥११८॥ दक्षिणं पक्षमाश्रित्य सुतैः सार्कं महारथैः । समुद्रीवजयोऽतिष्ठद्बलेन महता वृतः ॥११९॥ तत्पक्षरक्षणे दक्षाः कुमारा रिषुमारणाः । सत्यनेमिर्महानेमिर्दहनेमिः सुनेमिना ॥२०॥ निर्मिहारथश्वापि जयसेनमहीजयो । तेजःसेनो जयसेनो नयो मेघो महाद्युतिः ॥१२१॥ द्शाहिश्वापि विख्याताः शतशोन्ये च भूभृतः । रथकोटी चतुर्भागसहिताः समवस्थिताः ॥१२२॥ वामपक्षम्रपाश्चित्य रामस्य तनयाः स्थिताः । पांडवाश्च महात्मनः पंडिता युद्धकर्मणि ॥१२३॥

उल्ग्रुको निषधश्रापि प्रकृतिद्युतिरप्यतः । सत्यकः शत्रुदमनः श्रीध्वजो ध्रुव इत्यपि ॥१२४॥ राजा दशरथाश्रापि देवानंदोथ शंतनुः । आनंदश्र महानंदश्रंद्रानंदो महाबलः ॥१२५॥ पृथुः शतधनश्रापि विपृथुश्रा यशोधनः । दृढवंधानुवीर्यश्र सर्वशस्त्रभृतांबरः ॥१२६॥ अनेकरथलक्षास्ते शस्त्रास्त्रेषु कृतश्रमाः । धार्तराष्ट्रा वधं युद्धे समाधाय व्यवस्थिताः ॥१२७॥ पृष्टे चंद्रयशा भूपः सिंहलो वर्वरोऽपि च । कंबोजाः केरलाश्चापि कुशला द्रमिलास्तथा ॥१२८॥ रथषष्टिसहस्रेस्तु शांतनः समवस्थितः । पक्षिणो रक्षिणो ह्येते स्थिता विक्रमशालिनः ॥१२९॥ अशितश्रापि भानुश्र तोमरः समरप्रियः । संजयो कल्पितश्रापि भानुर्विष्णुर्वृहष्वजः ॥१३०॥ शत्रुंजयो महासेनो गंभीरो गौतमोऽपि च । वसुधर्मादयश्चापि कृतवर्मा प्रसेनजित् ॥१३१॥ दृढवर्या च विक्रांतश्रंद्रवर्मा च पार्थिवः। एते गणसहायस्तु कुलं रक्षंति शार्ङ्गिणः ॥१३२॥ एषोऽसी गरुढच्युहो वसुदेवेन निर्मितः । महारथकृतोत्साहश्चक्रच्यूहं बिभित्सित ॥१३३॥ चक्रव्यूहे दुर्विगाहे कृतेऽपि व्यूहे व्यूहे पक्षिराजेऽपि दक्षैः।

युद्धे जेता नायकः कश्चिदेको धर्मात्प्रायाद्यजिताज्जेनमार्गे ॥१३४॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनेसनाचार्यकृतौ चक्रगरुढव्यूहवर्णनो नाम पंचाशत्तमः सर्गः |

एकपंचाशत्तमः सर्गः।

अत्रांतरे सहप्राप्ताः समुद्रविजयं नृपाः । विद्याधरसमस्तास्ते वसुदेविहतैषिणः ॥१॥ श्वसुरोऽशनिवेगोसौ हरिग्रीवो वराहकः । सिंहदंष्ट्रः खर्गेद्रश्च विद्युद्वेगो महोद्यमः ॥२॥ तथा मानसवेगश्र विद्युदंष्ट्रः खगाधिपः । राजा पिंगलगांधारो नारसिंहो नरेश्वरः ॥३॥ इत्याचाश्वार्यमातंगा वासुदेवार्थसिद्धये । वसुदेवं पुरुकत्य समुद्रविजयं श्रिताः ॥४॥ तान्सन्मान्य यथायोग्यं समुद्रविजयादयः । सिद्धार्था वयमद्येति प्रहृष्टमनसो जगुः ॥५॥ वसुदेवरिपूणां ते खगानां क्षोभमूचिरे । जरासंघार्थसिद्धचर्थं तेषामागमनं तथा ॥६॥ तच्छ्त्वा यादवाः सर्वे सन्मंत्र्यानकदुंदुभि । प्रद्युम्नशंबसंयुक्तं सपुत्रं तैरमामुचन् ॥७॥ जिनकेशवरामादीन् परिश्वज्य स वेगवान् । पुत्रनप्तृखगैः साकं खचराचलमाययौ ॥८॥ सिंहविद्यारथं दिव्यं दिव्यास्त्रपरिपूरितं । धनदेवसमानीतमारुरोह हलायुधः ॥९॥ गारुडं रथमारूढस्तथागरुडकेतनः । नानाप्रहरणैर्दिच्यैः परिपूर्णे जयावहः ॥१०॥ मातल्यधिष्ठितं सास्त्रं सुत्रामप्रहितं रथं । नेमीश्वरः समास्त्रहो यद्गनामर्थः सिद्धये ॥११॥ सेनानां नायकं शूरमनावृष्टिं कपिष्वजं । अभ्यिषचन्नृपाः सर्वे समुद्रविजयादयः ॥१२॥

राजा हिरण्यनाभस्तु मागधेन महाबलः । सेनापतिपदे शीघ्रमभिषिक्तस्तदा मुदा ॥१३॥ युद्धे भेर्यस्तथा शंखा नेदुधीरं बलद्वये । चतुरंगबलं योद्धमाससाद परस्परं ॥१४॥ अन्योन्याह्वानपूर्वे ते योद्धं लग्ना यथायथं । राजानं क्रोधसंभारभूभंगविषमाननाः ॥१५॥ गजा गजैः समालग्रास्तुरंगास्तुरगैः सह । रथा रथैः समं योद्धं पत्तयः पत्तिभिः सह ॥१६॥ ज्यारवैरथनिर्घोषेर्गजानां गर्जिनेन च । भटानां सिंहनादैश्व दंलंतीव दिशो दश ॥१७॥ ततः परबलं दृष्टा प्रबलं स्वबलाशनं । नेमिपार्थबलाधीशा वृषहस्तिकपिध्वजाः ॥१८॥ तार्क्षकेतुमनोभिज्ञाः स्वयं योद्धं सम्रुचताः । ऊरीकृत्य सुसन्नाहाश्रक्रव्यृहस्य भेदनं ॥१९॥ दध्मी नेमीश्वरः शंखं शाकं शत्रुभयावहं । देवदत्तं पृथापुत्रः सेनानीश्च बलाहकः ॥२०॥ शंखानां निनदं श्रुत्वा ततो व्याप्तदिगंतरं । स्वमैन्येऽभूनमहोत्साहः परसैन्ये महामत्रं ॥२१॥ मध्यं विभेद सेनानीर्नेमिर्दक्षिणतः क्षणात् । अपरोत्तरदिग्भागं चक्रव्युहस्य पांडवः ॥२२॥ सेनानी परसेनान्या नेमिनाथोऽपि रुक्मिणा । पार्थो दुर्योधनेनासौ स धैर्येण पुरस्कृतः ॥२३॥ महायुद्धमभूत्तस्य ततस्तेषां यथायथं । संबंधबलयुक्तानां पंचायुधविवर्षिणां ॥२४॥ नारदोऽप्सरेसां संघेर्दरेण नमासे स्थितः । ग्रुंचन् पुष्पाणि तुष्टात्मा ननर्ते कळइप्रियः ॥२५॥

निपात्य शरवर्षेण रुक्मिणं चिरयोधनं । रिपुराजसहस्राणि नेमिश्रिक्षेप संयुगे ॥२६॥ सम्रद्भविजयाद्याश्र भ्रातरस्तत्सुतास्तथा । यथायथं रणे प्राप्ता निन्युर्मृत्युमुखं रिपून् ॥२७॥ रामकृष्णसुतैः संख्ये निःसंख्यशस्वर्षिभिः। यथेष्टं ऋीडितं मेघैः पर्वतिष्वित्र वैरिषु ॥२८॥ पांडवानां सपुत्राणां घृतराष्ट्रसुतैः सह । कदनं यद्वभूवात्र तत्कः कथायितुं क्षमः ॥२९॥ युधिष्ठिरोऽत्र शल्येन भीमो दुश्शासनेन तु । सहदेवः शकुनिना ह्युल्को नकुलेन हि ॥३०॥ दुर्योधनार्जुनौ योद्धं लग्नौ युद्धं ततस्तयोः । बभूव भूतवित्रासी शरसंधानदक्षयोः ॥३१॥ निहिताः पांडवैः केचिद् धृतराष्ट्रशरीरजाः । रणे दुर्योधनाद्यास्तु केचिज्जीवन्मृताः कृताः ॥३२॥ आकर्णाकृष्टचापौर्यः कर्णोऽभिमुखमागतान् । योधान् विभेद संग्रामे कृष्णपक्षाननेकशः ॥३३॥ द्वंद्वयुद्धे तदा जाते बहुभूतक्षयावहे । सेनापत्यारभूद्रौदं कदनं विविधायुर्धः ॥३४॥ हिरण्यनाभवीरेण स सप्तभिः शरेः शतैः । नवत्या सप्तविशत्या विद्धोऽनावृष्टिराहवे ॥३५॥ प्रज्ञवान शतेनासौ सहस्रेण च पत्रिणां । अनावृष्टिर्हिरण्यामं कुशलः प्रतिकर्मणि ॥३६॥ यादवस्य ध्वजं तुंगं चिच्छेद रुधिरात्मजः। सोऽपि चास्य विभेदाशु चापं छत्रं च सार्राथं ॥३७॥ भनुरन्यद्वपादाय शरवर्ष ववर्ष सः । परिषं तु यदुःक्षिप्त्वा रथं शत्रोरपातयत् ॥३८॥

खडुखेटकहरतं तं आपतंतमिर्यदुः । खडुखेटकहरतोऽगाद्रथादुत्तीर्य सन्भुखः ॥३९॥
प्रहारवंचनादानलाघवातिशयात्मनोः । असियुद्धमभूद्घोरं सेनापत्योस्ततस्तयोः ॥४०॥
वाष्ण्येयखडुघातेन प्रदत्तेन भुजे रिपुः । छिन्नवाहुद्रयोरुष्कः पपात वसुधातले ॥४१॥
हते सेनापतौ तत्र चतुरंगबलं दुतं । विद्वतं शरणं प्राप्तं जरासंधमहारणे ॥४२॥
तुष्टोनाचृष्टिरप्याश्च रथमारुह्य सैनिकैः । स्त्यमानो गतोभ्याशं रामकेशवयोस्ततः ॥४३॥
बलकेशववीराभ्यां वृषहस्तिकपिध्वजाः । चक्रव्यृहस्य भेत्तारः परिश्वक्ता महौजसः ॥४४॥
विषादविषदृषितं मगधराजसैन्यं ततो निवेशमगमं निजे लघुदिवाकरेऽस्तंगते ।

नितांतपृथुहर्षपूर्णमतिघूर्णमानार्णव—प्रमाणमरिभंगतो यदुबलं जिनश्रीयुतं ॥४५॥ इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ हिरण्यनाभवर्णनो नाम एकपंचाशः सर्गः ।

द्वापंचाशः सर्गः ।

अन्येयुद्धिमणिद्योतद्योतिते भ्रुवनोदरे । सन्नद्धौ निर्गतौ योद्धं बलैर्मागधमाधवौ ॥१॥ विधाय पूर्ववद्वव्यूहौ बलद्वयमधिष्ठितं । नानाराजन्यविन्यासमन्योन्यं हंतुमुद्यतौ ॥२॥ रथस्थो मागघो युद्धे इंसकं निजमंत्रिणं । अंतिकस्थमिति प्राह् यादवानभिवीक्ष्य सः ॥३॥ प्रत्येकं नामचिद्वाद्यैर्यूनां चक्ष्व हंसक । किमन्यैरत्र निहतैरित्युक्ते संजगाविति ॥४॥ फेनपुंजप्रतीकाशैहयैः कांचनदामभिः । रथोर्करथवददृश्यः कृष्णस्य गरुडध्वजः ॥५॥ शुकवर्णसमैरश्वेर्युक्तोऽयं स्वर्णशृंखलैः । अरिष्टनेमिवीरस्य वृषकेतुर्महारथः ॥६॥ कुष्णदक्षिणपार्श्वेत्वरिष्टवर्णेस्तुरंगमैः । रथस्तालध्वजो राजन् बलदेवम्य राजते ॥७॥ कृष्णवर्णेहियेर्युक्तो भाजतेऽयं महारथः । अनीकाधिपतेरत्र कपिकेत्पलक्षितः ॥८॥ नीलकेसरबालाग्रैईयहेंमपरिष्कृतैः । रथो युधिष्ठिरस्यायं पांडवस्य विराजते ॥९॥ श्रशांकविश्वदैरश्वेर्यातरिश्वजवैर्वृतः । गजध्वजयुतो भाति सव्यसाचिरथो महान् ॥१०॥ नीलोत्पलनिभैरेष युक्तो युयुभिरीक्ष्यते । रथो वृकोदरस्यापि मणिकांचनभूषणः ॥११॥ शोणवर्णेहियैभीति समुद्रविजयस्य हि । मध्ये यादवसैन्यानां महासिंहध्वजो रथः ॥१२॥ अकूरस्य कुमारस्य रथोसौ कदलीध्वजः । सबलैर्वाजिभिर्माति रुक्मविद्यमभास्वरः ॥१३॥ ह्यस्तितित्रकल्माषैः सत्यकस्य महारथः । महानेमिकुमारस्य कौमुदैर्वाजिभी रथः ॥१४॥ चामीकरवृहदंडपताकाध्वजभूषितः । शुकदंडिनभैरश्वैभीजस्यैष महारथः ॥१५॥

अश्वैः कनकपृष्टेर्यो युक्तभीति महारथः । असौ जरत्कुमारस्य मृगकेतोर्विराजते ॥१६॥ शुक्लः सोमसुतस्यैष सिंहलस्य विराजते । कांवोजैर्वाजिभिर्युक्ता रथोश्वरथभास्वरः ॥१७॥ अश्वेरारक्तसबर्लेर्मरुराजस्य राजते । रथः कांचनचित्रांगैः शंशुमाराकृतिध्वजः ॥१८॥ रथः पद्मरथस्यैष पद्माभैस्तुरगैर्युतः । शोभते रणशूरस्य बलानामग्रतः स्थितः ॥१९॥ पारावतीनिभैः पत्रैः सारणस्य त्रिहायनैः। तपनीयच्छदैर्भाति रथोऽसौ पुष्करध्वजः॥२०॥ शशलोहितसंकाशैनाजिभिः पंचहायनैः। रथो नग्नजितः सुनोर्मेरुदत्तस्य काशते ॥२१॥ वाजिभिः पंचवणैयो रथो भाति दृहध्वजः । विदूरथकुमारस्य जवनः कलशध्वजः ॥२२॥ सर्ववर्णनिभैरश्वेर्यादवानां तरस्विनां । न शक्यंते रथान् प्रोक्तं शतशोथ सहस्रशः ॥२३॥ अस्माकं नृपवीराणां रथान्वेत्सि यथायथं । कुमाराणां च सर्वेषां नानाचिह्नान्महारथान् ॥२४॥ क्षत्रियैर्बहुर्भिर्युक्तो नानादेशसमागतैः । शोभते भवतो व्युहो रिपुसेनाभयंकरः ॥२५॥ तदाकण्यं निजं प्राह सारथिं मगधेश्वरः । यादवान् प्रति शीघं त्वं रथं नोदय सारथे ! ॥२६॥ नोदितेथ रथे तेन लग्नश्छादियतुं नृपेट्। यादवानिभतः सर्वान् शरासारैर्निरंतरैः ॥२७॥ जरासंधसुतास्तत्र यादवैः सह कोपिनः । यथाययं रथादिस्था रणकीडां प्रचिकरे ॥२८॥

स कालयवनः काल इव स्वयमुपागतः। गर्जं मलयनामानमारूढो युयुधेधिकं ॥२९॥ सहदेव इति ख्यातो दुमसेनोद्रमस्तथा । जलचित्रादिकौ केतू धनुर्धरमहीधरौ ॥३०॥ स मानुः कांचनरथो दुर्घरो गंधमादनः । सिंहांकश्चित्रमाली च महीपालवृहद्ध्वजौ ॥३१॥ सुवीरादित्यनागाख्यौ सत्यसत्वसुदर्शनौ । धनपालशतानीकौ महाशुक्रमहावसू ॥३२॥ वीराक्ष्यो गंगदत्तश्च प्रवरः पार्थिवामिधः । चित्रांगदो वसुगिरिः श्रीमान् सिंहकटिस्फुटः ॥३३॥ मेघनादमहानादौ सिंहनादवसुध्वजौ । वज्रनाभमहाबाहू जितशत्रुपुरंदरौ ॥३४॥ अजिताजितशत्रू च देवानंदशतद्वतौ । मंदरो हिमवान्नाम्ना तौ विष्णुकेतुमालिनौ ॥३५॥ कर्कोटकद्वषीकेशौ देवदत्तधनंजयौ । सगरस्वर्णबाह् च मद्यवानच्युतोऽपि च ॥३६॥ दुर्जियो दुर्भुखश्चापि तथा वासुकिकंबलौ । त्रिशिरा धारणाभिख्यो माल्यवान् संभवाभिधः ॥३७॥ महापद्मी महानागी महासेना महाजयः । वासवी वरुणाभिष्यः शतानीकोऽपि भास्करः ॥३८॥ गरुत्मान् वेणुदारी च वासुवेगशिश्रमौ । वरुणादित्यधर्माणौ विष्णुस्वामी सहस्रदिक् ।।३९॥ केतुमाली महामाली चंद्रदेवो बृहद्वलिः । सहस्रश्चिष्मान् जघ्नो मागधस्नवः ॥४०॥ तपनमनुजमातंगतुरंगरथसंकटे । स कालयवनो युद्धे निरुद्धो वसुदेवजैः ॥४१॥

तेषां तस्य च संग्रामो यशःसंग्रहकारिणां । अन्योन्याक्षेपि वाक्यानां प्रवृत्तो वार्तसंकथं ॥४२॥ छना तेन कुमाराणां शिरोभीरुधिरारुणैः । चक्रनाराचनिर्भिन्नैः पंकजैरिव भूरभात् ॥४३॥ सारणेन कुमारेण स कालयवनो रुषा । नीतः खडुप्रहारेण कालस्य सदनं चिरात् ॥४४॥ कृष्णेनाभिमुखीभूता मागधस्य सुताः परे । जूरा मृत्युमुखं नीतास्तेऽर्धचंद्रैः शिरिश्छिदा ॥४५॥ ततः स्वयं जरासंघः कृष्णस्याभिमुखं रुषा । दधाव धनुरास्फाल्य रथस्थो रथवर्तिनः ॥४६॥ अन्योन्याक्षेपिणोर्युदं तयोरुद्धतवीर्ययोः । अस्त्रैः स्वाभाविकैर्दिव्यैरभूदत्यंतभीषणः ॥४७॥ अस्त्रं नागसहस्राणां सृष्टप्रज्वलनप्रभं। माधवस्य वधायासौ क्षिप्रं चिक्षेप मागधः॥४८॥ अपूढमानसः शौरिर्नागनाशाय गारुडं । अस्त्रं चिश्लेप तेनाशु ग्रस्तं नागास्त्रमग्रतः ॥४९॥ अस्त्रं संवर्तकं रौद्रं विससर्ज स मागधः । तन्महाश्वसनास्त्रेण माधवोऽपि निराकरोत् ॥५०॥ वायव्यं व्यमुचच्छस्रमस्रविन्मगधेश्वरः । अंतरिक्षेण वास्रेण व्याक्षिपत्तद्धोक्षजः ॥५१॥ अप्रिसात्करणे सक्तमस्त्रमाप्नेयमुज्वलं । मागधक्षिप्तमाक्षिप्तं वारुणास्त्रेण शौरिणा ॥५२॥ अस्त्रं वैरोचनं मुक्तं मागधेंद्रेण रोषिणा । उपेंद्रेणापि तद्द्रान्माहेंद्रास्त्रेण दारितं ॥५३॥

१ 'उपेंद्रेण च दारितं । इति ख पुस्तके ।

राक्षसास्त्रं रिपुक्षिप्तं क्षिप्रं नारायणो रणे। क्षिप्त्वा नारायणास्त्रेण शौरिणां धृतिमाहरत् ॥५४॥ तामसास्त्रं परिक्षिप्तं भास्करास्त्रेण सोऽभिनत् । अश्वग्रीवास्त्रमत्युग्रं चिक्षेपारुणदारुणः ॥५५॥ दिव्यान्यन्यानि चास्त्राणि क्षिप्तानि प्रतिश्रृत्या। प्रतिक्षिप्य निरायामो वासुदेवोऽधितिष्ठते ॥५६॥ तथा व्यर्थप्रयासोसौ क्षितिक्षिप्तशासनः । रक्षं यक्षसहस्रेण चक्ररत्नमचितयत् ॥५७॥ चिंतानंतरमेवात्र सहस्राकिरणप्रभं । चक्रं दिक्चकविद्योति मागधस्य करे स्थितं ॥५८॥ नानास्त्रव्यर्थताकुद्धश्रकं प्रणम्य मागधः । मागधं प्रतिचिक्षेप क्षिप्रं भूभंगभीषणः ॥५९॥ नभस्यागच्छतस्तस्य विच्छायीकृतभास्वतः।यथास्वं चिक्षिपुः सर्वे चक्राण्यन्येऽपि भूभृतः॥६०॥ शाङ्गी शक्तिगदाद्यानि हलं सम्रुसलं हली । गदां वृकोदरः पार्थी नानास्त्राण्यस्त्रपार्थिवः ॥६१॥ सेनानी परिषं शक्ति युधिष्ठिरनृपस्तथा । तस्य तु प्रतिघातार्थमुद्रीणीशीसमं ययौ ॥६२। समुद्रविजयाक्षोभ्यप्रभृतिभ्रातरो भूशं । अप्रमत्ता महास्त्राणि प्रतिचकं प्रचिक्षिपुः ॥६३॥ नेमीशस्त्वधिज्ञातभाविक।र्यगतिस्थितिः । चक्रस्याभिमुखश्रके विष्णुनैव सहस्थिति ॥६४॥ वार्यमाणं तु तचक्रमस्रचक्रेण भूभृतां । विस्फुरद्विस्फुलिंगौधं शनैरागत्य मित्रवत् ॥६५॥ सह मदक्षिणीकृत्य भगवश्रेमिना हरिं। तत्करे दक्षिणे तस्थी शंखचक्रांकुशांकिते ॥६६॥

व्योम्नि दुंदुभयो नेदुरपतन्युष्पवृष्ट्यः । नवमो वासुदेवोयमिति देवा जगुस्तदा ॥६७॥ सुगंधिवायुभिः सार्धमनुकूलैरलं तदा । हृद्यैर्यदुवीराणां समुच्छसितमायुधं ॥६८॥ चक्रहस्तहरिं दृष्टा संयुगे मगधाधिपः । दध्यौ चक्रपरावृत्तिरन्यथेयमभूदिति ॥६९॥ चक्रविक्रमसंभारसमाकांतदिगंतरः । त्रिखंडाधिपतिश्रंडो जातः खंडितपौरुषः ॥७०॥ चतुरंगबलं कालः पुत्रा मित्राणि पौरुषं । कार्यकृत्तावदेवात्र यावदैवबलं परं ॥७१॥ दंवे तु विकले कालपीरुवादिनिरर्थकः । इति यत्कथ्यते विद्विस्तत्तध्यमिति नान्यथा ॥७२॥ गर्भेश्वरोहमन्येषामलंध्यो महतामि । प्रारब्धो जेतुमल्पेन गर्भादिक्लेदिना कथं ॥७३॥ मज्जेतापि यदीदक्षो दृष्टोऽत्र विधिना ततः। किमर्थे क्रेशितो बाल्ये गोकुले धिग्विधीहितं ॥७४॥ लोकांधीकरणे दक्षां धीरधैर्यविलोपिनीं । वंधंकीिमव धिग्लक्ष्मीं परसंक्रमकाक्षिणीं ॥७५॥ ध्यायन्नित्यादि निश्चित्य मृत्युकालमुपस्थितं । प्रकृत्यैव जरासंधः कृष्णमित्याह निर्भयः ॥७६॥ क्षिप चक्रं किमर्थं त्वं गोप ! कालमुपेक्षसे। कालस्योत्क्षेपको मुग्ध ! दीर्घमुत्री विनश्यति।।७७॥ इत्युक्तस्तं प्रति प्राह प्रकृत्या प्रश्रयी हरिः । चक्रवर्चहमुद्भूतः शासने मम तिष्ठ भोः ॥७८॥

अपकारे प्रवृत्तस्त्वमस्माकं यद्यपि स्फुटं । तथापि मृष्यतेस्माभिर्नातिमात्रप्रसादिभिः ॥७९॥ तथोदितः स तं प्राह प्रसभं गर्भनिर्भरः । चक्रं नालातचक्रं मे किमनेन स्मयं गतः ॥८०॥ अथवा दृष्टकल्याणः स्वलेपनाल्पः स्मर्याभवेत् । न महान् दृष्टकल्याणः सस्मयो महतामपि ॥८१॥ सह दशाईचक्रेण चक्रेणानेन च त्वकं । नृपचक्रेण त्वामाशु समुद्रे प्रक्षिपामि भोः ॥८२॥ इत्युक्ते कुपितश्रकी चक्रं प्रश्नाम्य सोऽमुचत्। प्रभृतस्तेन गत्वारं वक्षोभित्तिरभिद्यत ॥८३॥ आगतं च पुनः पाणि चक्रपाणेः क्षणेन तत्। प्रयुक्तस्य कृतार्थस्य कालक्षेपो हि निष्फलः ॥८४॥ पांचजन्यं हरिः शंखं दध्मी यदुमनोहरं । नेमिपार्थबलाग्रण्या गण्या दध्युनिजाबुजं ॥८५॥ वादित्रध्वनयो धीरा क्षुभिताब्धिस्वनोपमाः । प्रभूता प्रादुरभवंस्तर्थवाभयघोषणाः ॥८६॥ स्वसैन्यं परसैन्यं च संन्यस्तस्वभयं ततः । अनुक्तमप्यभूदेत्य वासुदेवस्य शासने ॥८७॥ नृपो दुर्योधनो द्रोणस्तथा दुःशासनादयः । निर्विण्णा विदुरस्यांते जैनीं दीक्षां प्रपेदिरे ॥८८॥ कर्णः सुदर्शनोद्याने दीक्षां दमवरांतिके । जग्राह रणदीक्षांते निर्वाणफलदायिनीं ॥८९॥ तत्सुवर्णाक्षरं यत्र कर्णकुंडलमत्यजत् । कर्णः कर्णसुवर्णाख्यं स्थानं तत्कीर्तितं जनैः ॥९०॥ गतो मातलिरापुच्छच सेवेयं स्वामिनोंऽतिकं। याद्वाः शिविरस्थानं निजं जग्मुः सपार्थिवाः ॥९१॥

त्रिपंचादाः सर्गः।

निरीक्ष्य मधुस्रदनेन युधि भारते मागधं हतं दिनकृदंबुधाव हत मज्जनं सज्जनः ।

शुचा प्रकटरोदनादिव दधन्मुखं दिग्मुखंजिपाकुमुमपाटलं त्विव जलांजलेदिंत्सया ॥९२॥
वर्जाति खल्ज जंतवः कृतशुभोदयं संपदां प्रचंडपुरुषांतराक्रमणकारिणीं तत्क्षये ।

भजेद्रिपदमप्यतो जिनमते जना निर्मलं कुरुध्वमपुनर्भवप्रभवहेतुभूतं तपः ॥९३॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतो जरासंधवधवर्णनो नाम द्वापंचाशः सर्गः ।

त्रिपंचादाः सर्गः ।

अथाभ्यदयपमभ्येते हरिदश्चे हरावेव । परालंघ्यमहत्तेजः प्रसाधितहरिन्मुखे ॥१॥ कृतेषु व्रजभंगेषु प्रवीराणामितोमुतः । संस्कारेषु तथान्येषु जरामंधादिभूभृतां ॥२॥ आस्थाने ते यथास्थानं समुद्रिक्षजयादयः । राजानो हरिणामीना वसुदेवागमोन्मुखाः ॥३॥ किमर्थं क्षेमवार्ता नो नाद्याप्यानकदुंदुभेः । सपुत्रनप्तृकस्याद्रिं गतस्यति हि खेचरं ॥४॥ इत्यन्योन्याश्रितालापास्ते नृपा यावदासते । धनुवत्ससमस्यांता बालवृद्धपुरःसराः ॥५॥ तावदुद्योतिताशास्ता विद्याधर्यः खिवद्यतः । वेगवत्या सहागत्य नागवध्वा कृताशिषः ॥६॥

जग्मुरद्य कृतार्था वो गुरुद्त्ताशिषोऽखिलाः । सुतेन मागधो ध्वस्तो यच पित्रा नभश्वराः ॥७॥ सपुत्रनप्तृकः क्षेमी क्षेमिणां प्रणयी स तः । यथाज्येष्ठं नमत्यंत्रीन् सुतानाश्चिषयत्यपि ॥८॥ इति श्रुत्वा प्रमोदेन ते प्रकृष्टतनूरुहाः । पप्रच्छुः खेचरास्तेन विजिता कथिमत्यमूः ॥९॥ ऊचे धनवती देवी वसुदेवहितोद्यताः । श्रूयतां वसुदेवस्य रणे सामर्थ्यमित्यसौ ॥१०॥ गत्वा स विजयार्धाद्वि श्रमुरस्यालपूर्वकैः । एकीभूय खगैः खेटानरुणद्राक्षणः ॥११॥ समग्रबलयुक्तांस्ते ततस्तेन पुरस्कृताः । रणे मागधसाहाय्यं विरहय्य युधि स्थिताः ॥१२॥ बलद्वयस्य संपाते जाते तत्र ततोन्वभूत् । प्रजानां प्रलयाशंका भयव्याकुलचेतसा ॥१३॥ द्वंद्वयुद्धे प्रवृत्तेऽतो नृवाजिरथ हस्तिनां । अन्योन्यं न्यायतोऽन्योन्यमवधीरसैन्ययोर्द्वयं ॥१४॥ आनकेन संप्रत्रेण प्रद्यम्नेनाभिमानिना। तथा शंबेन पक्षेण खेचराणां जनेन च ॥१५॥ हेतिज्वालावहैरेभिः शत्रुभूभृत्कदंवकं । भस्मीकुर्वद्भिरुद्धतेलेलिदेवानलायितं ॥१६॥ अत्रांतरे सुरैस्तुष्टैस्तिसमञ्जरकृष्टसंगरे । नवमो वासुदेवोभूद्रसुदेवस्य नंदनः ॥१७॥ निहतश्र जरासंधस्तचकेणैव संयुगे । प्रतिशत्रुगुणद्वेषी वासुदेवेन चकिणा ॥१८॥ इत्युक्त्वा वसुदेवस्य रथस्योपरि पातिता । नानारत्नमयीवृष्टिः कौम्रदीव दिवः सुरैः ॥१९॥

गिरस्ता मरुतां श्रुत्वा ततस्ते रिपुखेचराः । त्रस्ताः शरणमायाता वसुदेवमितोम्रुतः ॥२०॥ वसदेवस्य प्रत्राणां शंबप्रद्युम्तवीरयोः । वसुदेवमुपाश्रित्य कन्या विद्याधरा ददुः ॥२१॥ वयं तु वसुदेवोक्ता युष्मदंतिकमागताः । क्षेमोदंतं तथैवास्य निवेदयितुमागताः ॥२२॥ नानाविद्याधराधीशा नानाप्रभृतपाणयः । आनकेन सहायांति ते नारायणभक्तितः ॥२३॥ यावद्भनवती तेषामितीष्टं कथयत्यसौ । तावद्भिमानसंघातैः खेटानामादृतं नभः ॥२४॥ अवतीर्य विमानेभ्यो दसुदेवानुयायिनः । वासुदेवं बलोपेतं प्रणेमुः प्राभृतान्विताः ॥२५॥ अभ्यत्थाय ततो भक्तौ पितरं रामकेशवौ । प्रणमतुरनेनापि तावाश्विष्याभिनंदितौ ॥२६॥ ज्येष्ठानपूजयत्सर्वानप्रणम्यानकदुंदुभिः । प्रद्युम्नाद्या यथायोग्यं प्रणेमुर्गुहवांधवान् ॥२७॥ यथाक्रमं नभोयानाः केशवेन चलेन च । प्रतिसन्मानिताः सर्वे सफलं जन्म मेनिरे ॥२८॥ समस्तबलसंयुक्तौ प्रतीचीं बलकेशवौ । प्रयातौ प्रमदापूणी पूर्णसर्वमनोरथौ ॥२९॥ आनंदे ननदुर्यत्र यादवा मागधे हते । आनंदपुरमित्यासी तत्र जैनालयाकुलं ॥३०॥ ततश्रक्रमहं कृत्वा सर्वरत्नान्वितो हरिः । दक्षिणं भारतं जिग्ये सदेवासुरमानुषं ॥३१॥ बर्षेरष्टामिरिष्टाथैर्सेवमानो नु वासरं । जितजेयो ययौ कृष्णः स कोटिकशिलां प्रति ॥३२॥

यतस्तस्यामुदारायामनेका ऋषिकोटयः । सिद्धास्ततः प्रसिद्धात्र लोके कोटिशिला शिला ॥३३॥ शिलायां तत्र कृत्वादौ पवित्रायां बलिकियां । दोभ्योमुत्क्षिपतिस्मासौ तां विष्णुश्रतुरंगुलं।।३४।। सा शिला योजनोच्छाया समायोजनविस्तृता । अर्घभारतवर्षस्थदेवतापरिरक्षिता ॥३५॥ उद्घाहुनोर्द्धमुतिक्षमा त्रिष्ट्रेन शिला पुरा । मूर्द्धद्मं द्विष्ट्रेन कंठद्मं स्वयंभुरा ॥३६॥ वक्षोद्वयम्रिक्षप्ता च पुरुषोत्तमचित्रणा । क्षिप्ता पुरुषसिंहेन हृद्याविधहारिणी ॥३७॥ पुंडरीकः कटीमात्रमुरुद्धं हि दत्तकः । जानुमात्रं च सौमित्रिः कृष्णोऽधाचतरंगुरुं ॥३८॥ प्रधानपुरुषादीनां सर्वेषां हि युगे युगे । भिद्यते कालभेदेन शक्तिः शक्तिमतामपि ॥३९॥ शिलाबलेन विज्ञातो महाकायबलो बलैः । सानुयातो ययौ चक्री द्वारिकां प्रतिबांधवैः ॥४०॥ प्रविष्टश्च विधिष्टानामाशीभिरभिनंदितः । द्वारिकां द्वारकांतां स कृतशोभां दिवं यथा ॥४१॥ यथायोग्यं सभोग्यास्ते भूनभोयानभूभृतः। प्रासादेषु स्थिताः सुस्था द्वारिकायां यथाविधि॥४२॥ अभिषिक्ती ततः सर्वेर्भूपैर्भूचरखेचरैः । भरतार्धविश्वत्वे तौ प्रसिद्धौ रामकेशवौ ॥४३॥ संस्थाप्य सहदेवं स चकी राजगृहे नृपं। मागधानां चतर्भागं ददौ तस्मै गतस्मयः ॥४४॥ ज्यसेनसुतायादाद्वराय मथुरां पुरीं । स महानेमये शौर्यनगरं प्रददौ नृपः ॥४५॥

श्रीहस्तिनपुरं प्रीत्या पांडवेभ्यः प्रियं हरिः । कोशलां रुक्मनाभाय रुधिरात्मजसूनवे ॥४६॥ भूचरान् खेचरान्भूपानौचित्येन समागतान् । स्थानेषु स्थापनां चक्रे चक्रपाणिर्यथायथं ॥४७॥ विसृष्टाश्च यथास्थानं यातास्ते पांडवादयः । आरेमुद्रीरकायां तु यादवास्त्रिदशा यथा॥४८॥ चकं सदर्शनमदृष्टुसुखं रिपूणां शार्कं धनुर्ध्वननधूतविपक्षपक्षं। सौनंदकोऽपि च गदापि च कौमुदी सा मोघतरा रिपुषु शक्तिरमोषमूला ॥४९॥ शंखश्च शंखखचितस्य सपांचजन्यः श्रीकौस्तुभो मणिरसावनणुप्रतापः । रत्नानि सप्त महितानि हरेहिंतानि व्याभांति दिव्यमयमूर्तियुतानि तानि ॥५०॥ दिच्यायुधं इलमभादपराजिताख्यं दिच्या गदा ग्रुसलशक्त्यवतंसमालाः। रत्नानि पंच महितानि हलायुधस्य हेलाविध्तरिषुमंडलविश्रमस्य ॥५१॥ राज्ञां स षोडशसहस्रगुणैर्गुणक्रैर्गण्यैर्गुणी प्रणतमूर्धभिरर्धचक्री। भक्तेस्तदर्धगुणनैर्गणबद्धदेवैराज्ञाकरैः सुखमसेवत सेव्यमानः ॥५२॥ शाङ्गी स षोडशसहस्रवरांगनानां देवांगनालितविश्रमहारिणीनां। संघैः क्रमेण रतिषूपनिषेवितांगो रेमे तदर्भगणनैस्तु हली सुदारैः ॥५३॥

हिमिशिशिरवसंतग्रीष्मवर्षीसरत्सु प्रिययुवतिसहाया यादवा द्वारिकायां । जिनमतकृतधर्मा योग्यदेशेषु योगैरविरतरितरागा रेमिरे सार्वभौमाः ॥५४॥ इति "अरिष्टनेमिर्भुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ कृष्णविजयवर्णनो नाम त्रिपंचाशः सर्गः ।

चतुःपंचाशः सर्गः ।

श्रेणिकेन पुनःपृष्टश्रेष्टितं पांडवोद्धवं । संदेहध्वांतघाताकीं गौतमः स जगौ गणी ॥१॥ स्थितेषु हास्तिनपुरे पांडवेषु यथाक्रमं । निजस्वामिपरिप्राप्त्या तुतुषुः कुरवोऽिक्कं ॥२॥ सौराज्ये पांडपुत्राणां वर्तमाने सुखावहे । सर्वे वर्णाश्रमा राष्ट्रे धार्तराष्ट्रान्विसस्मरुः ॥३॥ अखंडितगतिः प्राप्तः कदाचित्पांडवास्पदं । नारदश्रंडिचित्तोसौ प्रकृत्या कलहिषयः ॥४॥ आदरेण स तिर्देष्टः प्रविश्विक्तस्सरकापि । व्यग्रयालंकृतौ तन्व्या द्रौपद्या तु न लक्षितः ॥५॥ ततो जज्वाल कोपेन तैलासंगादिवानलः । सज्जनावसरक्षो न प्राणी सन्मानदुःखितः ॥६॥ स तदुःखिवधानाय कृतेच्छः कृतिश्रथः । धातकीखंडपूर्वार्धभारतं प्रति खे ययौ ॥७॥ अंगेश्वमरकंकायां पुरि शंकाविवर्जितः । स्नीलोलं पश्चनाभारूयं साभिरूपं दृष्ट्वासृपं ॥८॥

६१४

तेनांतःपुरमात्मीयमात्मीयस्यास्य दिशंतं । पृष्टश्च दृष्टमीदृशं स्त्रीरूपं किचिदित्यसौ ॥९॥ पर्यस्तं मन्यमानोयं पायसेऽभिमतं धृतं । द्रौपदीस्वपलावण्यं लोकातीतमवर्णयत् ॥१०॥ तं द्वीपदीमयं ग्राह्यं ग्राह्यित्वा स नारदः । द्वीपक्षेत्रपुरावासकथनः कापि यातवान् ॥११॥ आराध्यदसौ तीव्रतपसा द्रौपदीप्सया । सुरं संगमकाभिरूयं पातालांतर्वासिनं ॥१२॥ आराधितेन देवेन पद्मनाभपूरीं निशि । सा सुप्तैव समानीता पार्थस्य वनिता प्रिया ॥१३॥ निवेदिता सुरेणासी भवनोद्यानवर्तिनी । अद्राक्षीद् द्रौपदीं गत्वा साक्षादिव सुरांगनां ॥१४॥ प्रबुद्धा सर्वतोभद्रे शयने सा पुनः पुनः। स्वपित्येव विनिद्रापि स्वप्नोयमिति शंकिनी।।१५॥ विनिभी लितनेत्राया ज्ञात्वाकूतमसौ नृषः। शनैः समीपमाश्रित्य वदतिस्म प्रियंवदः ॥१६॥ आयताक्षि निरीक्षस्व नैष स्वप्नो घटस्तिन । द्वीपोयं धातकीखंडः पद्मनाभस्त्वहं नृपः ॥१७॥ नारदेन समाख्यातं तव रूपं मनोहरं । मयाराधितदेवेन त्वं मदर्थमिहाहता ॥१८॥ श्रुत्वा चिकतिचत्ता सा किमतिदितिवादिनी । अचितयदहो दुःखं दुरंतं मे समागतं ॥१९॥ पार्थदर्शनपर्धतमाहारत्यागमात्मनि । कृत्वा पार्थविमोच्यं च वेणीवंधं दधार सा ॥२०॥ द्रौपदीशीलिनर्भेदवज्रप्राकारमध्यगा । पद्मनाभम्रवाचेत्थं वाच्यवानं मनोभुवा ॥२१॥

आतरी रामकृष्णी मे भर्ता पार्थी धनुर्धरः । भर्तुं द्वेष्टी महावीरावनुजी च यमोपमी ॥२२॥ जलस्थलपथैस्तेषामनिवारितगोचराः । विचरंति भूवं सर्वो मनोरथरया रथाः ॥२३॥ क्षेमं यदि नुपैस्तेभ्यो बांछिसि त्वं सबांधवः । तद्विसर्जय मां शीघ्रमाशीविषवधूपमां ॥२४॥ इत्युक्तोन्यनिवृत्तेच्छः स्वग्राहं नेष मुंचित । यदा तदा दृढा प्राह प्रत्युत्पन्नमितिः सती ॥२५॥ मासस्याभ्यंतरे भूप यदीह स्वजना मम । नागच्छंति तदा त्वं मे कुरुष्व यदभीप्सितं ॥२६॥ तथास्त्वित निगद्यतां पद्मनामोऽनवर्तयत् । सांतःपुरःश्रियशतैर्विलोभनपरः स्थितः ॥२७॥ विस्रव्धा भयग्रजिझत्वा स्थित्वा साश्चविलोचना । विनिहारा निराहारा पत्युः पंथानमीक्षते॥२८॥ अद्दयायामकस्मात्तु तस्यां पांडवपंचकं । किकर्तव्यतया मृदमभूदत्यंतमाकुलं ॥२९॥ निरुपायास्ततो गत्वा चिक्रणे ते न्यवेदयत् । दुःखी स यादवः सोत्र क्षेत्रेश्वश्रावयत्तदा ॥३०॥ क्षेत्रांतरहतां मत्वा केनचित्क्षुद्रवृत्तिना । तत्त्रवृत्तिपरिप्राप्तौ यादवास्ते सतत्पराः ॥३१॥ आस्थानस्थितमागत्य कदाचिन्नारदो हरिं। पूजितो यदुलोकस्य जगादेति प्रियोदितः ॥३२॥ ईक्षिता धातकीखंडे कृष्णा कृष्णकृशांगिका । पुर्यामममरकंकायां पद्मनाभस्य सम्रनि ॥३३॥ अनारतगलद्वाष्पधाराविलविलोचना । सा तस्यांतःपुरस्त्रीभिः सादराभिरुपास्यते ॥३४॥

शीलमात्रमहाश्वासा दीर्घनिश्वासमोचिनी । सत्सु बंधुषु युष्मासु कथमास्ते रिपोर्प्रहे ॥३५॥ लब्ध्वेति द्रीपदीवार्ता हरिप्रभृतयस्तदा । शशंसुनीरदं द्रष्टाः सापकारोपकारिणां ॥३६॥ द्रौपदीहरणं कृत्वा क प्रयाति स दुष्टधीः । प्रेषयामि दुराचारं मृत्यवे मृत्युकांक्षिणां ॥३७॥ इति द्विष्टो द्विषे कृष्णः कृष्णामानेतुमुद्यमी । दक्षिणो दक्षिणांभोधेस्तटं ससकटो गतः ॥३८॥ लवणाब्धिपति देवं सस्थितं नियमस्थितं । आराध्य पांडवैः सार्धं धातकी खंडवीप्सया ॥३९॥ देवेन नीयमानः सन् रथैः १इभिः सर्पांडवः । द्रागुह्णंच्याव्धिमापत्तद्वातकी खंडभारतं ॥४०॥ प्रयोस्ते अमरकंकाया बहिरुद्यानवर्तिनः । कृष्णाद्याः पद्मनाभाय तिन्नयुक्तेर्निवेदिताः ॥४१॥ चतुरंगबलं तस्य पुर्या निर्यातमुद्धतं । भ्रातृभिपेचभिर्युद्धे भग्नं नगरमाविशत् ॥४२॥ नुपः स नगरद्वारं पिधाय सनयः स्थितः । अलंघ्ये पांडुपुत्राणां ततश्रकी स्त्रयं रुषा ॥४३॥ बिभेद पादनिर्घातैर्निर्घातैरिव नागरं । बहिरंतर्भुवं विश्वां भ्रव्यत्प्राकारगोपुरां ॥४४॥ पतत्त्रासादशालीधैर्श्राम्यदानेभवाजिनि । वित्रलापमहारावे पुरे जाते जनाकुले ॥४५॥ स पौरांतः प्ररो राजा निरुपायो भयाकुलः । प्रविष्टः शरणं द्रोही द्रौपदीं द्वतमानतः ॥४६॥ श्वम्यतां श्वम्यतां सौम्ये ! देवि ! देवतया समे । दाप्यतामभयं मेऽद्य सवाच्यस्य पतिव्रते ॥४७॥

चतुःपंचादाः सर्गः ।

तं सा कृपावती प्राह द्रौपदी शरणागतं । गच्छ भुकुंशवेशेण शरणं चक्रवर्तिनः ॥४८॥ कृतदोषेष्वपि प्रायः प्रणतेषु नरोत्तमाः । सकृपा स्युविंशेषेण भीरुवेषेषु भीरुषु ॥४९॥ सस्रीकः स्त्रीकृताकारः श्रुत्वा पार्थागनाग्रणीः । प्रविष्टः शरणं गत्वा विष्टरश्रवसं नृपः ॥५०॥ दत्वाऽसावभयं तस्य शरणागतभीहरः । विसम्ज निजं स्थानं स्थाननामादिभेदिनं ॥५१॥ कृष्णा कृष्णपदं नत्वा क्षेमदानपुरस्सरं । प्रायुंक्त विनयं योग्यं पंचस्विप यथाक्रमं ॥५२॥ आश्विष्य दियतां पार्थो विरहव्यथितां ततः । स्वयं प्रस्वेदिहस्ताभ्यां तद्वेणीग्रुदमोचयत् ॥५३॥ स्नात्वा भुक्त्वा कृतातिथ्या मनसा पांडवैः सह। निवेद्य निजदुःखं सा भुमोचास्नः समं ततः॥५४॥ रथमारोप्य तां वाधीं दध्यौ शंखं निजं हरिः। आपुपूरे दिशां चकं चिक्रशंखस्य निस्वनः॥५५॥ कपिलो वासुदेवोऽपि तदा चंपाविहःस्थितं। जिनं नंतुं गतोऽपृच्छत्-श्रुत्वा तं कंपितक्षिति॥५६॥ केनायं पूरितः शंखो नाथ ! मत्समशक्तिना । न चाद्य माद्दशोऽस्तीह भारते मद्धिष्ठिते ॥५७॥ जिनेन कथिते तत्वे प्रश्नतोत्तरवादिना । दिदृश्चस्तं यियासुः स भाषितो धर्मचिक्रणा ॥५८॥ नान्योन्यद्श्वंन जातु चक्रिणां धर्मचित्रिणां । हलिनां वासुदेवानां त्रैलोक्यप्रतिचित्रिणां ॥५९॥ गतस्य चिह्नमात्रेण तव तस्य च दर्शनं । शंखास्फोटनिनादेश रथध्वजानिरीक्षणैः ॥६०॥

आयातस्य ततस्तस्य किपलस्यानु यादवं । साफल्यमभवद्द्राज्जिनोक्तिविधिनांबुधौ ॥६१॥ आगत्य किपलश्चंपामसांप्रतिविधायिनं । कोपादमरकंकेशं केशवः सोत्यतर्जयत् ॥६२॥ पूर्वेणैव क्रमेणामी लघूत्तीर्णा महार्णवं । वेलातटे विश्वश्चाम केशवः पांडवा गताः ॥६३॥ नौभिर्गगां समुत्तीर्थ तस्थुस्ते दक्षिणे तटे । व्यपनीता च भीमेन क्रीडाशैलेन नौस्तटी ॥६४॥ आगतोन्तुपदं विष्णुः कृष्णया सहितस्तदा । अप्राक्षीत्कथमुत्तीर्णा गंगां यूयिमतीमिकां ॥६५॥ वृकोदरोऽवदद्दोभिरिति जिज्ञासुरीहितं । स सत्यिमिति मत्वा तदुत्तरीतुिषिति त्वरी ॥६६॥ रथमुद्धृत्य हस्तेन साश्वसारिथमच्युतः । जानुद्द्रामिवोत्तीर्णस्तां जंघाभ्यां भुजेन च ॥६७॥ ततो विस्मिततुष्टास्ते त्वरयाभ्येत्य सन्नताः । शिक्तिभक्ष्यास्तुतिव्यग्रा समाश्चिष्यक्षांक्षजं॥६८॥

स्वयंकृतं नर्म ततो वृकोदरः स्वयं च विश्वश्वतया जगाद सः ।
तदैष कृष्णोऽतिविरक्ततामगाददेशकालं न हि नर्म शोभते ॥६९॥
अमानुषं कर्म जगत्यनेकशः कृतं मया दृष्टवतामि स्वयं ।
मदीयसामध्येपरीक्षणक्षमं किमत्र गंगोत्तरणे कृपांडवाः ॥७०॥

निगद्य तानेवमसौ जनार्दनः सहैव तैरेत्य तु हास्तिनं पुरं। समद्रया लब्धसुतार्यस्नवे वितीर्य राज्यं विससर्ज तान्कुधा ॥७१॥ समस्तसामंतकृतानुयानकः कृताभियानो यदुभिः कृतार्थकः। प्रविक्यं कृष्णो नगरीं गरीयसीं निजां निजात्रीनिवहाद्यमानयत् ॥७२॥ सतास्त पांडोईरिचंद्रशासनादकांड एवाशनिपातानिष्दुरात्। प्रगत्य दाक्षिण्यभृता सुदक्षिणां जनेन काष्टां मथुरां न्यवेशयन् ॥७३॥ समुद्रवलास् मनोहरासु ते लवंगकृष्णागुरुगंधवायुषु । सुचंदनामोदितदिश्च दक्षिणा विजहरुचैर्मलयाद्रिसानुषु ॥७४॥ क वार्धिजंबृदुममंडिता क्षितिः । क धातकीखंडधरा दुरासदा ॥ गतागताद्धगतिस्तथापि तु । प्रसिद्धचिति प्राक्तनजैनधर्मतः ॥ ७५ ॥

इति अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ द्रौपदीहरणाहरणदक्षिणमथुरानिवेशवर्णनो नाम चतुःपंचाशः सर्गः ।

पंचपंचाशः सर्गः।

अथ स नेमिकुमार युवान्यदा धनदसंभृतवस्रविभूषणैः। स्रगनुरुपनकैरतिराजितो नृपसुतैः प्रथितैः परिवारितः ॥१॥ समविश्वत्समदेभगतिर्नृपैरभिगतैः प्रणतैश्वलितासनैः। कुसुमचित्रसमां बलकेशवप्रभृतियादवकोटिभिराचितां ॥२॥ हरिकृताभिगतिईरिविष्टरं स तदलंकुरुते हरिणा सह । श्रियमुवाह परां तदलं तदा धृतहरिद्वयहारि यथासमं ॥३॥ सदिस सभ्यकथामृतपायिभिः प्रकटशौर्यशरीरविभूतिभिः। सह हरिनृवरैः समुपासितः धणमरंस्त रुचा स्थगिताखिलः ॥४॥ बलवतां गणनास्वथ केचन प्रतिशशंसुरतीव किरीटिनं। युधि युधिष्ठिरमुत्रवृकोदरं युगलमुद्धतमप्यपरे परान् ॥५॥ हलधरं बलवंतमलं तथा हरिमथोद्भतदुर्धरभृधरं।

६२१

स्ववलद्रीनतत्परराजकं चलियतुं स्वपदानु राशायिकं ।) ६ ।। हरिसभागतराजकभारतीरिति निशम्य सलीलदृशा हली। जिनमुदीक्ष्य जगा जिननेमिना भगवता न समोऽस्ति जगत्त्रये ॥७॥ करतलेनमहीतलपुद्धरेज्ञलनिधीनपि दिक्षु लघु क्षिपेत्। प्रचलयेदिरिराजमवज्ञया ननु जिनः कतमः परमोऽमुतः ॥८॥ इति निशम्य वचोऽथ निशाम्य तं स्मितमुखो हरिरीशमुवाच सः । किमिति युष्मदुदारवपुर्वलं भूजरणे भगवन् न परीक्ष्यते ॥९॥ सह समाभिनयोर्द्धमुखो जिनः किमिहमस्रयुधित तमत्रवीत्। भुजबलं भवतोग्रज बुध्यते चलय मे चरणं सहसासनात् ॥१०॥ परिकरं परिवध्य तदोक्तितो भुजबलेन जिनस्य जिगीषया। चलियतुं न शशाक पदांगुलिप्रमुखमस्य नखेंदुहरिं हरिः ॥११॥ श्रमजवारिलवांचितविग्रहः प्रबलनिश्वसितोच्छ्रसितासनः । बलमहो तव देव जनातिगं स्फुटिमितिस्मयमुक्तमुवाच सः ॥१२॥

बलरिपुथ तदा चलितासनः स्त्रयमुपेत्य सुरैः सहसा सह । कृतजिनार्चनकः कृतसंस्तवः कृतनतिः प्रययौ पदमात्मनः ॥ १३॥ निजमगारमगाज्जिनचंद्रमाः परिवृतः क्षितिपैः ज्ञपितस्मयः। हरिरपि स्फुटमात्मनि शंकितः क्रिशितधीहिं जिनेश्वपि शंकते ॥१४॥ उपचरत्रनुवासरमादरात्प्रियशतैर्जिनचंद्रमसं हरिः। प्रणयदेशनपूर्वकमर्थयन् स्वयमनर्घगुणं जिनमुन्नतं ॥१५॥ अथ पुनर्विजयार्धनगोत्तरे पुरवरेऽभिधया श्रुतशोणिते । जगति बाण इति प्रथितः खगः स खलु तिष्ठति गर्वितमानसः ॥१६॥ स्वयमुषा दुहितास्य खगेशिनो गुणकलावरणाविदितावनौ । मद्नस्नुमुदारगुणैः श्रुतं तमनुरुद्धमधत्त चिरं हृदि ॥१७॥ सुमृदुनापि तदा मृदुनि स्वयं विनिहितेन कृतं तनुपातनं। मनसि संवसता कुटिलभुवः कुटिलगृत्तिरनेन निजीकृता ॥१८॥ अनुदितेन परस्य महाधिना कुशतरां परिपृच्छच हितां हितां।

निशि निनाय सखी खचरीवरं खचरलोकमनंगशरीरजं ॥ १९ ॥ प्रतिविबुध्य युवा सहसा ह्युषामुषिस रत्नमयुखचित गृहे । मृदुतले शयने शयितः स्वयं स खलु पश्यति तत्र तु कन्यका ।। २०।। सुपरिदृश्य सतां सुविहारिणीं चिरमचितदंगजधारिणीं ॥ २१ ॥ हरति केथमिह प्रवरा मना हरिवधूरुतनागवधूरियं। न हि मनुष्यवधूमहमीदशीं कचिदपीह कदाचन दृष्टवान् ॥ २२ ॥ पदमपीदमपूर्विमिवेश्यते नयनहारिसुरेंद्रपदोपमं । किमिइ सत्यमसत्यमिदं तु कि अमित हि स्वपतां भुवनं मनः ॥ २३ ॥ इति वितर्कमतर्कितदर्शनं सुपरिबोध्यतया तमयोजयत्। रहिस कन्यकया कृतकंकणं विदित्तिचत्रपदादिकलेखिका ॥ २४ ॥ अविरहं सुरतामृतपायिनोरमृतपायिवधूवरयोरिव । वरवधूवरयोः समये तयोर्विदितवृत्तामिदं विदितं हरेः ॥ २५ ॥

हरिरतो बलशंबमनोभवप्रभृतिभिर्यदुभिः सह संगतैः। मदनजानयनं प्रतियातवान् खगकवाणपुरं स विहायसा ॥ २६ ॥ नरतुरंगरथद्विपसंकुले युधि विजित्य स तत्र खगाधिपं। तमनिरुद्धभुषासहितं हि तं निजनिवासपुरं हरिरानयत् ॥ २७ ॥ विरदृदुः खमपोह्य ततोऽखिलः समनिरुद्धसमागमसंभवं। अनुदिनं स्वजनो जनतासखः सुखमरंस्त सैमस्तसुखाश्रयः ॥ २८ ॥ निजवधूजनललितनेमिना हरिरमा तृपपौरपयोधिना। कुमुमितो पवनं स मधौ यया विदितरेवतकं रमणेच्छया ॥ २९ ॥ पृथुभिरश्वयुतैर्ययुरीश्वरा रुचिरभूपणनेमिबलाच्युताः। धृतसितातप्रवारणहारिणो वृषभतालवृहद्गरुडध्वजाः ॥ ३० ॥ दशदशाईकुमारगणावृतः करितुरंगरथैर्मदयन् जनं । कुसुमवाणधनुर्मकरध्वजैः पथि रथेन ययौ मकरध्वजः ॥ ३१ ॥

१ ' सुखाश्रययादवः ' इति क पुस्तके ।

पुरजनोऽय यथाईसुवाहनैविंविधवस्राविभूषणभूषितः । इरिपुरस्सरराजवधूजनः पथि जगाम तथा शिविकादिमिः ॥ ३२ ॥ उपचितो जनताभिरसौ गिरिः श्रियमुवाह सहोपवर्नस्ततः । मुरगिरेः सुरसंगवधूजनैरुपाचितस्य चितस्य वनांतरैः ॥ ३३ ॥ समयनीत्यथोचितवाहना वनविहारमतो जनताखिला। सपदि कर्तुमसाबुपचक्रमे गिरिनितंबवनेषु यथायथं ॥ ३४॥ सुरभिपुष्परजःसुरभौ श्रमव्यपगमव्यसने श्वसने दिशः। वहति शीतलदक्षिणमारुते स्मररतिश्रम एव नृणामभूत् ॥ ३५ ॥ रसितचृतलतारसकोकिला कलरवाः कलकंठतया गिरौ । जनमनांस्यपहर्तुमतिक्षमाः परिचुकूजुरिह स्मरदीपिताः ॥ ३६ ॥ मधुलिहां मधुपानजुषां कुलैः कुरुवका वक्कलाः सुभगा कृताः। ।द्विपद्वद्पद्मेद्वतां रवैः श्रयति वाश्रयमाश्रयिणो गुणान् ॥ ३७॥ करिकटेषु युगच्छदगंधिषु स्थितिमपास्य मद्भ्रमराश्रिताः।

स सहकारसुरदुममंजरीरभिनवासु रतिर्महती भवेत ॥ ३८ ॥ कुसुमभारभृतः प्रणता भृशं प्रणयभंगाभियेव नता द्वमाः । युवतिहस्तयुता कुसुमोच्चये तनुसुखं तरुणा इव भेजिरे ॥ ३९ ॥ अनतिनम्रतया निजशाखया कथमपि प्रमदाकरलब्धया। तरुगणः कुसुमग्रहणे भजद्दढकचग्रहसौख्यमिव प्रभुः ॥ ४० ॥ नवपरिश्रमसौख्यमितस्ततः समनुभूय चिरं वनितासखः । युवजनः कुसुमोत्करकारिपते अभजत तरुपतले सुरतामृतं ॥ ४१ ॥ मतिवनं प्रतिगुल्मलतागृहं प्रतितरु प्रतिवापि विहारतः। विषयसौरूयमसेवत सौरूयवानखिलयादवपौरजनो मधौ ॥ ४२ ॥ द्विगुणिताष्टसहस्रवधूगणैर्बहुगुणीकृतभोगनभोगतः । सुमधुमाधवमासममानयत्सुभगताधरमाधवचंद्रनाः ॥ ४३ ॥ पतिनिदेशजुषो हरियोषितो मुषितमानवमानसवृत्तयः। सइ विजद्भिश्वरनेमिना तरुलतारमणीयवनेषु ताः ॥ ४४ ॥

पंखपंचाशः सर्गः।

वनलताः कुसुमस्तवकोचये मधुमदालसमानसलोचनाः । मुखसुगंधितया मुखरालिभिवेलयिताऽधृत काचन देवरं ॥ ४५ ॥ उरिस चुंबति तं कठिनस्तनी स्वृश्चति काचन जिघति तं परा । मृदुकरेण करे परिगृह्य तं शशिमुखं कुरुतेऽभिमुखं परा ॥ ४६ ॥ विटपकरिप सालतमालजैव्यंजनकरिव काश्चिद्वीजयन्। विद्धुरस्य परास्त्ववतंसकश्रियमशोकतरोर्नवपह्नवैः ॥ ४७ ॥ विरचितां कुसुमेविविधेः स्रजं निजपरिश्वजनस्पृहया परा। शिरसि मालयतिस्म गले परा कुरुवकान्यपरा शिरसे अकरत् ॥ ४८ ॥ इति वसंतमनंतमसौ युवा हरिवधूभिरमा प्रतिमानयत् । स ऋतुना तदनंतरभाविना विभुरसेव्यत सेवकवृत्तिना ॥ ४९ ॥ प्रतिदिनं वसति स्म हरिस्तदा खरनिदाघमृतं प्रतिमानयत्। स्वधृतिकारिणि रेवतिके गिरौ शिशिरशीकरनिई।रहारिणि ॥ ५० ॥ हरिवधूनिवहैरुपरोधितः प्रकृतिरागपरागपराङ्गुखः ।

शिशिरवारिणि तत्र जलास्पदे जलविहारमसेवत तीर्थकृत् ॥ ५१ ॥ तरणद्रानिमज्जनकियाः सिललयंत्रकराश्च परस्परं। स्वमुखवारिसुसेकवधूजनाः प्रतिविचिक्षिपुरंबु मुखांबुजे ॥ ५२ ॥ विभूमपि प्रति ता व्यकिरन्नपः करतलांजलिभिजलयंत्रकैः। प्रलघु तेन सता किरतापगाः जलियनेव मुहुर्विम्रखीकृताः ॥ ५३ ॥ अजिन मज्जनकं जनरंजनं न खळु केवलमेवमनीदशं। अपि त चित्रसमालभने भ्रेमत्परिमलैरपि तज्जलरंजनं ॥ ५४ ॥ उदतरत्प्रभुणा तरुणीघटा गतिनिदाघजघर्मघनश्रमाः। मृदितपुष्करिणी करिणी चिरादिव महाकरिणा करिणी घटा ॥ ५५ ॥ च्युतवतंसिवशेषकमाकुलं तरलदृष्टि विधूसरिताधरं। शिथिलमेखलिमष्टकचप्रहं रत इवाप पुरंधिकुलं भियं ॥ ५६ ॥ परिजनाहृतवस्त्रविभूषणैस्तदनुभूषिततोषितयोषितः ।

🎙 यदुनृपस्य मुदा वरयोषितः । इति ख पुस्तके ।

विभुवपुर्वसनैः सममार्जयन् सुपरिधाय परं परिधानकं ॥ ५७ ॥ सपदि मुक्तजलांबरपीलने स्फुटकटाक्ष्युणेन विलासिता। मधुरिषु स्थिरगौरवभू मिकामतुल जांबदतीं समनोदयत् ॥ ५८ ॥ कृतककोपविकारकटाक्षिणी मललितभ्र विलोक्य तु चधुषा। विभुमुवाच वचःपथपंडिता ज्वरितजांबवती स्फुटिताधरा ॥ ५९ ॥ भुमगकोटिमणिद्यतिमंडलद्विगुणितांगतिरीटमणिप्रभः। समिघरुष्य स कौस्तुमभासुरः स्वहरिवाहमहाशयनं हरिः ॥ ६० ॥ **धन**निनादततांवरमंबुजं जगति पूरयते च निजांबुमाः । (?) कठिनक्रार्ङ्गघनुः सगुणं करोत्यखिलभूपविभुः सुमगांगनः ॥ ६१ ॥ पतिरसौ मम कोऽपि कदाचन प्रति न शास्ति हि वेद्दशशासनं । तदिह कश्चिदयं किल शास्ति मामपि भवान् सजलांबरपीलने ॥ ६२ ॥ इति निश्चम्य तु काश्रन तद्वचः प्रतिजगुर्जगतीपतियोषितः। किमिति नाथमिक्षिपसि त्रिभूत्रभुमनंतगुणं विगतत्रपे ॥ ६३ ॥

कियदिदं जगतीपतिपौरुषं जगति दुष्करमित्यभिधाय सः। सरभसं पुरमेत्य नृपालयं द्वतगतिः प्रविवेश हसन्मुखः ॥ ६४ ॥ चलभूजंगमभोगविभूषणं तद्धिरुह्य महाश्यनं हरेः। तदकरोद्विगुणं सगुणं धनुस्तमपि शंखमपूरयदीश्वरं ॥ ६५ ॥ मुखरशंखरवेण दिशां मुखान्यखिलमंबरमंबुनिधिश्र भूः। निखिलमेतदतीव विप्रितस्फुटदिवस्फुटमाविरभृत्तदा ॥ ६६ ॥ पदुमदा करिणः भुभिता निजानभिवभंजुरितस्तत आश्रयान्। ब्रुटितबंधतुरंगमकोटयः पुरि सहेषितकासुरितो भ्रमन् ॥ ६७ ॥ भवनकूटतटान्यपतन् इरिः स्वकमकर्षदसिं धुभिता सभा । पुरजनः प्रलयागमशंकया भयसगात्परमाकुलितस्तदा ॥ ६८ ॥ हरिरवेत्य निजांबुजनिस्वनं त्वरितमेत्य कुमारमवज्ञया । स्फुरदहीशमहाशयने स्थितं परिनिरीक्ष्य नृपैः सुविसिस्मिये ॥ ६९ ॥ परुषजांबवतीवचसो रुपा स्फुटमवेत्य कुमारकृतं हरिः।

परितुतोष सबंधुरधीशितुर्विकृतिरप्यतितोषकरी तदा ॥ ७० ॥ कृतपरिश्वजनः स्वजनैः स तं समभिपूज्य युवानमगाद्गृहं। स्वयुवतिं प्रति दीपितमन्मथं समवबुध्य हरिर्भुमुदेधिकं ॥ ७१ ॥ सविधि याचितभा नसुताकरग्रहणहेतुविबोधितबांधवः। नरपतीन् सकलान् सकलत्रकानकृत सिन्नहितान् कृतगौरवः ॥ ७२ ॥ विहिततत्समयोचितमञ्जनौ परमरूपधरौ धृतमंडनौ । पुरि यथास्त्रमगारमधिष्ठितौ जनमनो हरतां सुवधूवरौ ॥ ७३ ॥ ऋतरियाय स धर्ममयस्ततो भुवि धनागमकालभयादिव। नभसि दीनमदर्शि घनावली मरुपथे पिथकैस्तृषितैरपि ॥ ७४ ॥ प्रथमगर्जितशीतपयः कणा जलमुचां शिविचातकसौष्यदाः। भुवि बभूवुरशेषवियोगिनां द्विगुणताप जुषामतिदुःसहा ॥ ७५ ॥ दवदिवाकरदग्धवनावली-प्रथमनिर्गतवाष्पसुसौरमे । अभवतामिव सौद्ददर्शने नमसि वर्षति मेघकदंवके ॥ ७६ ॥

चलति दित्सबलाकवलाहके सुरपचापवरे शरवर्षिणि। क्षितिरमात्सुरगोपञ्चतैश्विता पतितपांयमनोभिरिवाभितः ॥ ७७ ॥ कूटजनीयकदंवकदंवकैः कुसुमितैः ककुभैः ककुभोऽखिलाः। नवशिलिंधदर्लेश्व मनोहराः स वनरंधिगिरिक्षितयो बश्चः ॥ ७८ ॥ धनधनाधनगर्जिततर्जिता मुखरवाहुलतावलयार्वैः। युवतयः प्रियकंठदृढप्रहेर्विद्धुरुप्रभयत्रहानिग्रहं ॥ ७९ ॥ गिरिशिलातपयोगविमोचितास्त्रिविधयोगधरा मुनयो वन । शिशिरमारुतवर्षसहक्षमास्तरुलताभिमुखास्त्ववतस्थिरे ॥ ८० ॥ पृथुरयं चतुरश्चयुतं तदा ध्वजपताकिनमर्करयप्रभं । समधिरुद्य सनेमियुवान्वितो नृपसुतैश्वलितो वनभूमिकां ॥ ८१ ॥ म्रुदितभोजसुतानगरांगना-नृषितनेत्रनिपीतवपुर्जेलः ो विपुलराजपथेन स तैरगात्सकृपयेव मनोहरदर्शनः ॥ ८२ ॥ जलनिधिर्मुखरः स्वतरंगकैलीलतनर्तनदोभिरिवाकुलैः।

अतितरां विषमी विभुसिक्षधी विधृतनर्तकनर्तनवत्तदा ॥ ८३ ॥ उपवनं सम्रुपेत्य वनश्रियं सपदि यूनि विलोक्यतीश्वरे । विततशाखवनद्वमजातयो विचकुरः कुसुमांजलिमानताः ॥ ८४ ॥ स खद्ध पश्यति तत्र तदा वने विविधजातिभृतस्तृणमक्षिणः। भयविकंपितमानसगात्रकान् पुरुषरुद्धमृगानतिविद्वलान् ॥ ८५ ॥ लघु निरुध्य रथं सहसारथिं निजनिनादिजतांबुदिनिस्वनः। अपि विदन्नवदन्प्रगजातयः किमिह रोधिममाः प्रतिलंभिताः ॥ ८६ ॥ अकथयत्प्रणतः स कृतांजिलः श्वितिभुजामिह मांसभुजां विभो । तव विवाहविधौ मृगरोधनं विविधमांसनिमित्तमनुष्ठितं ॥ ८७ ॥ इति निशम्य निशाम्य मृगवजानप्रकृतिभूतद्यास्थितमानसः। नृपसुतानभिवीक्ष्य विभुर्जगावभिनिबोधविजुंभणसावधिः ॥ ८८ ॥ गृहमरण्यमरण्यतृणोदकान्यशनपानमतीव निरागसः । मृगकुलस्य तथापि वधो नृभिर्जगति पश्यत निर्घृणतां नृणां ॥ ८९ ॥

रणमुखेषु रणाजितकीतयः करितुरंगरथेष्वपि निर्भयान् । अभिमुखानभिहंतुमधिष्ठितानभिमुखा प्रहरंति न हीतरान् ॥ ९० ॥ शरभसिंहवनद्विपयथपान् प्रकुपितानपरिहृत्य विदूरतः । मृगश्चान् पृथुकान् प्रहरत्यमृन् कथमिवात्र प्रमान विलज्जते ॥ ९१ ॥ चरणकंटकवेधभयाद्रटा विद्धते परिधानम्पानहां। मृदुमुगान् मृगयासु पुनः स्वयं निशितशस्त्रशतैः प्रहरंति हि ॥ ९२ ॥ विषयसौरूयफलप्रसवोदयः प्रथम एष मृगौधवधोऽधमः। अनुभवे पुनरस्य रसप्रदे षडसुकायनिपीडनमध्यधि ॥ ९३ ॥ विपुलराज्यपद्स्थितिमिच्छता सकलसत्त्ववधोऽभिम्रुखीकृतः । दुरितबंधुफलस्तु वधा ध्रुवं कटुफला स्थितिरस्य वरा यतः ॥ ९४ ॥ प्रकृतिदेशरसानुभवस्थितिः प्रचितवंधचतुष्कवशीकृतः। भजति दुर्गतिषु क्रमतो भ्रमन् विविधदुःखमयं भवभृद्रणः ॥ ९५ ॥ प्रतिभवं भयदुः खखनीयुतैर्विषमजेः कुसुखरितभावितः।

नरभवेष्यसुमानतिमोहितो न यतते भवदुःखनिवृत्तये ॥ ९६ ॥ भवसुखानि वहिर्विषयोद्भवान्यतिमहांत्यपि संततितान्यपि । भवभूतो न भवंति हि तुष्ट्ये जलनिधरिव सिंधुशतान्यपि ॥ ९७ ॥ खचरदेवनृपामरजन्मजं नृपजयंतविमानभवोद्भवं। न हि सुसंभवसागरजीवितः समनुभूतमभूनमम तृप्तये ॥ ९८ ॥ कतिपयाहभवं वत किं पुनः सुलभमप्यतिमान्षमप्यलं। भवति तृप्तिकरं मम सांप्रतं सुखमसारमसारतयायुषः ॥ ९९ ॥ अत इदं क्षयि तापकरं सुखं विषयजं प्रविद्याय महोद्यमः। क्षयविम्रुक्तमतापजमात्मजं शिवसुखं महता तपसार्जये ॥ १०० ॥ इति तदा मनसा वचसा समं सुपरिचितयति ध्रवमीश्वरे । शशिनिमाः खलु पंचमकल्पजास्तुषितवद्यरुणार्कपुरस्सराः ॥ १०१ ॥ लघु समेत्य नता नतमौलयः कृतकरांजलयस्त्रिदशा जगुः। समय एष विभो भरते उधुना त्विमह वर्तय तीथामिति प्रश्नं ॥ १०२॥ प्रतिविबुद्धपथः स्वयमेव स प्रतिविबोधकदेवीगरोऽस्य ताः। अनुषदंत्यति ताः पुनरुक्ततां फलति चावसरे पुनरुक्तता ॥ १०३॥ लघु विमुच्य मृगान्मृगवधिवो नृपसुतैः प्रविवेश पुरं प्रभुः। सपदि तत्र नृपासनभूषणं ननृतुरेत्य पुरेव सुरेश्वराः ॥ १०४ ॥ तम्रुपवेश्य ततःस्नपनासने सम्रुपनीतपयःपयसा सुरैः। समभिषिच्य विभूष्य सुरोचितस्रगनुलेपनवस्रविभूषणैः ॥ १०५ ॥ सुहरिविष्टरवार्तितमीश्वरं हरियुगान्वितभृपसुरासुराः । बभुरतीय तदा परितः स्थिताः प्रथममेरुमियोरुकुलाचलाः ॥ १०६ ॥ जिगमिषुं तपसे जिनमादता हरिपुरःसरभाजयद्त्रमाः । अनुनर्येर्न निरोद्धमलं तदा प्रबलसिंहमिबोद्धतपंजरं ॥ १०७ ॥ पितृपुरःसरबंधुजनं जिनः सुपरिबोध्य जगत्स्थितिकोविद । धनदाशिल्पिकृतां शिविकां पर्देरगमदुत्तरकुर्वभिधातकं ॥ १०८ ॥ ष्वजसितातपवारणमंडितां सुमणिभित्तिमुपाहितभक्तिकां।

विविधरूपधरामधिरूढवान् विधिरिवोदयभूधरभित्तिकां ॥ १०९ ॥ क्षितिभृतः क्षितितः शिविकां शिवामुदहरन्प्रथमाः प्रथमं ततः । मुरपथे मुरनाथपुरोगमाः सुरवरा सुखपूहुरमृं मुदा ॥ ११० ॥ अभवद्रद्भुदारमुदारवः सुरगणैविंहितो विहितो श्रियां (?)। श्रुतिमधोग्रुखरो मुखरोधितो व्यधिमुवो जगतो जगतोऽरुणत् ॥ १११ ॥ ननृतुरप्सरसः सहसा रसैः सशिखमप्सरसः सहसा रसैः। यमभिसामरसं घनतां गतं तिमव शांतरसं घनतां गतं ॥ ११२ ॥ गिरिमितः सहितामरसेनया जिनवरः सहितामरसेनया । समरुचिगिरिराष्ट्रचमूर्जयंत इति योऽस्ति हि पापचमूर्जयन् ॥ ११३ ॥ र विनिशाकरयोरुभयांतयोविंचरतोस्तिमिरोरुभयांतयोः। दिवि न यत्र महात्मनिदर्शनं किमिह तुंगतयास्य निद्रश्चनं ॥ ११४ ॥ मुखरिनई। । क्समनिर्श्वरपादपजातिभिः कुसुमनोरहितोऽतिविराजते ॥ ११५ ॥

मणिमुवर्णमुवर्णधराधरे विविधधातुरसौषधराधरे । शिखररंजितकिन्नरदेवके वनभुवा हतधीनरदेवके ॥ ११६ ॥ उपवने द्वजिने शिविकामतः स्वमतमाप्य जिने शिविकामतः। द्रवति यद्रहितो हरिणां हरिः स निद्धे सहितो हरिणा हरिः ॥ ११७ ॥ इह जहाँ वसुधाशिविकासनं पुरुतपोमि सुधाशिविकासनं। निमसमः स शिलातलमायया-वपगमार्थमिलातलमायया ।। ११८ ॥ स्रजमितोथ सबस्रमलंकृतीरपगमय्य सबस्रमलंकृती। प्रविलसत्कमलासनधीरतः प्रियबधूकमलासनधीरतः ॥ ११९ ॥ मृदुकरांगुलिभीरुचिरासितान् धनकचानतिभीरुचिगसितान्। च्युदहरद्दढपंचपरिग्रहैः स रहितः सकृपं च परिग्रहैः ॥ १२० ॥ नुपसहस्रममा निमना तपः श्रितमिवैनममा निमना तपः । तपति नातपवारणवारितः प्रपतदातपवारणवारितः ॥ १२१ ॥ निकचितां कचसंपदमात्मना प्रकुटिलांगतकोपद्मात्मना ।

व्यपनयिनव शल्यपरंपरां नृपगणः श्रियमैत्स्वपरंपरां ॥ १२२ ॥ मणिगणांशुलसत्पटलीकृतान् जिनकचा कुलिशी पटलीकृतान् । अकृत दुग्धमये स महोदधा वपुरलं समये समहोदधी ॥ १२३ ॥ समवतारमिनोंगिकुपावनं स्वकृतवस्त्रमयस्य सुपावनं । सपदि यत्र तदत्र यथाश्रुतं जगित तीर्थमभूच यथाश्रुतं ॥ १२४ ॥ मतिषु बोधचतुष्कविराजितस्त्रिदशकोटिमहाकविराजितः। विधुरिवोपगतग्रहतारकः प्रभुरभादपरिग्रहतारकः ॥ १२५ ॥ नभसि शुक्कत्रीयतया तिथौ कमभूतीशिन षष्टतया तिथौ। विहितनिष्क्रमणे नृसुराऽसुराः सुविद्धुर्महमेषु सुरासुराः ॥ १२६ ॥ मदनभंगकृतप्रभव भवे भवभृतां श्ररणाय हिते हिते । इतरुष वितृषे मुनये नये स्थितवते नम इत्यसुरासुराः ॥ १२७ ॥ स्तवनपूर्वममी च समंततः प्रणतिमेत्य नृपाश्च समं ततः । स्वहृदयस्थतपस्थितनेमयः स्वपदमीयुरिरास्थिरनेमयः ॥ १२८ ॥

पुरि वितीर्य नु तत्र जिनायताः सुपरमात्रमथावृजिनायताः । प्रवरदत्त इतो महिमा हिताः सुरगणैः सुमहामहिमाहिता ॥ १२९ ॥ पथि तपस्यति तत्र कृते हिते नृपसुतामनसि त्रिपते हिते । न्यभूत तापमपारवियोगिनी कुमुदिनीव दिवारवियोगिनी ॥ १३० ॥ प्रवलशोकवशा प्रविलापिनी शिथिलभूषणकेशकलापिनी। परिजनेन वृता प्ररुदोद सा करुणशब्दततात्पुरुरोदसा ॥ १३१ ॥ विधिमुपालभते वरहारिणं वरवधूर्वरमप्यतिहारिणं। जघनपीनपयोधरहारिणी नयनवारिकणाविलहारिणी ॥ १३२ ॥ शमितशोकभरा वचनैहिंतैर्गुरुजनस्य तपोवचनैहिंतैः। मतिमधत्त तपस्यनपायिनि प्रशमसौख्यतपस्यनपायिनि ॥ १३३ ॥ राजीमत्याश्वारुराजीवलक्ष्मी राजीमत्याः पाणिपादस्य कांत्या । तापस्यातं ज्ञातयो वेत्य वृत्तं तापस्यांतं भानसस्यापुरंते ॥ १३४॥ श्लीणामाद्यं पारतंत्र्यं विदुःखं दौर्लभ्यमूर्भर्तुरंगं विदुःखं ।

सापत्न्यं वा पुष्पवच्यं च वाध्यं वैधव्ये वा सूतिरोगेऽपि वाध्यं ॥ १३५ ॥ दौर्भाग्ये वा भाग्यहीने स्वनाथे स्नागर्भत्वे मत्रपत्ये स्वनाथे गर्भश्रावे गर्भभारे वियोगे जीवद्भत्री मर्मरोगाभियोगे ॥ १३६ ॥ स्यान्मिध्यात्वं स्नीत्वहेतुः स्वतंत्रं वस्तस्येवातानतिर्यक् स्वतंत्रं स्नीदुःखानामंतकृद्भव्यसत्वेजीनी दृष्टिः सेव्यतां सेव्यसत्वेः ॥ १३७ ॥ इति "अरिष्टनेमियुगणसंग्रहे" हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ भगवित्रक्तमणकल्याण-

षद्पंचाद्याः सर्गः ।

अथ नेमिम्रुनींद्रोऽिप रत्नत्रयतपःश्रिया । त्रतगुप्तिसिमत्युचै रेजे सोढपरीषहः ॥ १ ॥ अप्रदास्तमपोद्यासात्रातं रौंद्रचं च शुक्लधीः । ध्यानं धम्यं च शुक्लं च प्रशस्तं ध्यातुमुद्यतः॥२॥ ध्यानमेकाग्रचिताया घनसंहननस्य हि । निरोधोंतर्भुहूर्तं स्याचिता स्यादास्थिरं मनः ॥३॥ तत्रातिरर्दनं वाधा हार्तं तत्रभवं पुनः । सुकृष्णनीलकापोतलेक्यावलसमुद्भवं ॥४॥

लक्षणं द्विविधं तस्य बाह्यमाकंदनादिकं । परश्रीविस्मयं प्राप्तं विषयासंजनादिकं ॥५॥ तदातमनः स्वयं वेद्यं परेषामानुमानिकं । अभ्यंतरं चतुर्भेदं स्वलक्षणसमन्वितं ॥६॥ विषयस्यामनोज्ञस्य यद्जुत्पत्तिर्चितनं । उत्पन्नस्य वियोगाय संकल्पाध्यवसायकं ॥७॥ मनोज्ञविष्रयोगस्य यत्रानुत्पत्तिचितनं । उत्पन्नस्यांतिचिता च चातुर्विध्यमितीरितं ॥८॥ तत्रामनोज्ञस्य दुःखस्य साधनं चतनादिकं । मत्यीदि विषशस्त्रादि बाह्यमेतदुर्दारितं ॥९॥ आध्यात्मिकं तु वातादिप्रकोपजमनेकथा। कुश्याक्षिदंतशुलादिशारीरमितिदुस्सहं ॥१०॥ शोकारतिभयोद्वेगविषादविषद्विषतं । जुगुप्सादौर्मनस्यादि मानसं दुःखसाधनं ॥११॥ सर्वस्यास्यामनोज्ञस्य माभूदुत्पत्तिरित्यलं । चिताप्रवंध आद्यं स्यादातेध्यानमलाविलं ॥१२॥ उत्पन्नस्यास्य चाभावः कथं मे स्यादितीदृशं । संकल्पाध्यवसानं तु द्वितीयं तत्प्रकीर्तितं ॥१३॥ पशुपुत्रकलत्रादिमनोइं सुखसाधनं । बाह्यं स्याद्धनधान्यादि सचेतनमचेतनं ॥१४॥ आध्यात्मिकं च पित्तादि साम्यादाराग्यसांगिकं। मानसं सौमनस्यादि रत्यशोकाभयादिकं॥१५॥ विष्रयोगश्च मे माभूदैहिकामुत्रकस्य तु । मनोज्ञस्येति संकल्पस्तृतीयं चार्तमुच्यते ॥१६॥ मनोक्षविप्रयोगस्य पूर्वोत्पन्नस्य यत्पुनः । अभावेऽध्यवसानं तु तुर्यमार्तमनोक्कजं ॥१७॥

अधिष्ठानं प्रमादोस्य तिर्यग्गतिफलस्य हि । परोक्षं मिश्रको भावः षङ्गुणस्थानभूमिकं ॥१८॥ रुद्रः कराशयः प्राणी रौद्रं तत्रभवं ततः । हिंसासंरक्षणस्तेयपृषानंदेश्वतुर्विधं ॥१९॥ आनंदोभिक्षचिर्येषां हिंसादिषु यथायथं । हिंसानंदादयस्तेतो निरुच्यंते समासतः ॥२०॥ लक्षणं द्विविधं तत्र पारुष्याक्रोशनादिकं । स्वसंवैद्यं परैर्मेयं बाह्यमाध्यातिमकं पुनः ।।२१।। स्यात्सरंभसमारंभारंभलक्षणमात्मना । हिंसायां रंजनं तीत्रं हिंसानंदं तु नंदितं ॥२२॥ श्रद्धये परलोकस्य सविकल्पितयुक्तिभिः । विव्रलंभनसंकल्पो मृषानंदं सुनंदितं ॥२३॥ प्रतीक्षया प्रमादस्य परस्वहरणं प्रति । प्रसद्य हरणं ध्यानं स्तेयानंदमुदीरितं ॥२४॥ स्वपरिग्रहभेदे तु चेतनाचेतनात्मनि । संरक्षणाभिधानं तु स्वस्वामित्वाभिचितनं ॥२५॥ सुकृष्णनीलकापोतवलाधानं प्रमादगं । अधःपंचगुणस्थानं रौद्रध्यानचतुष्टयं ॥२६॥ अंतर्भ्रहर्तकालं तु दुर्धरत्वादतः परं । क्षयोपश्चमभावस्तु परोक्षज्ञानभावतः ॥२७॥ भावलेक्याकषायस्वातंत्र्यादौद्यिकोऽपि वा । उत्तरं फलमेतस्य नारकी गतिरुच्यते ॥२८॥ परिहृत्यार्तरौद्रे द्वे पापध्याने मुमुक्षवः । धर्म्यशुक्लिधयः संतु शुद्धिभक्षादिभिक्षवः ॥२९॥ एकांतं प्राप्तुकं क्षेत्रं क्षुद्रोपद्रववर्जितं । दिव्यं संहननं द्रव्यं कालोत्युष्णादिवर्जितः ॥३०॥

भावशुद्धिरिप श्रेष्ठा यदा भवति योगिनः । आरभेत तदा ध्यानं सर्वद्वंद्रसहः सं हि ॥३१॥ गंभीरः स्तंभसूर्तिः सन्पर्यकासनबंधनः । नात्युनमीलनिमीलश्च दत्तदंताप्रदंतकः ॥३२॥ निवृत्तकरणग्रामव्यापारः श्रुतपारगः । मंदं मंदं प्रवृत्तांतःप्राणापानादिसंचरः ॥३३॥ नाभेरुद्धे मनोवृत्ति मुर्क्षि वा हृदि वालके । मुमुक्षुः प्रणिधायाक्षं ध्यायेद्ध्यानद्वर्षं हितं ॥३४॥ बाह्यात्मिकभावानां याथात्म्यं धर्म उच्यते । तद्धर्मादनपेतं यद्धम्यं तद्ध्यानमुच्यते ॥३५॥ लक्षणं द्विविधं तस्य वाह्याध्यात्मिकभेदतः । सूत्रार्थमार्गणं शीलं गुणमालानुरागिता ॥३६॥ मंजाकृंभाक्षितोद्गारप्राणापानादिमंदता । निभृतागत्रतात्मत्वं तत्र बाह्यं प्रकीर्तितं ॥३७॥ दशधाध्यात्मिकं धर्म्यमपायविचयादिकं । अपायो रहोविचयो मीमांसास्तीति तत्त्रथा ॥३८॥ संसारहेतवः प्रायस्त्रियोगानां प्रवृत्तयः । अपायो वर्जनं तासां स मे स्यात्कर्यामत्यलं ॥३९॥ चिताप्रबंधसंबधः शुभलेश्यानुरंजितः । अपायित्रचयाख्यं तत्प्रथमं धर्म्यमीप्सितं ॥४०॥ उपायविचयं तासां पुण्यानामात्मसात्रिया। उपायः स कथं मे स्यादिति संकल्पसंततिः ॥४१॥ अनादिनिधना जीवा द्रव्यार्थादन्यथान्यथा । असंख्येयप्रदेशास्ते स्वोपयोगत्वलक्षणाः ॥४२॥ अचेतनोपकरणाः स्वकृतोचितभोगिनः । इत्यादिचेतनाध्यानं यज्जीवविचयं दि तत् ॥४३॥

द्रच्याणामि जीवानां धर्माधर्मादिसंज्ञिनां । स्वभावित्तनं धर्म्यमजीवविचयं मतं ।।४४॥ यचतुर्विधबंधस्य कर्मणोऽष्टविधस्य तु । विपाकिचितनं धर्म्यं विपाकविचयं विदुः ॥४५॥ शरीरमञ्जिभींगा किंपाकफलपाकिनः । विरागबुद्धिरित्यादि विरागविचयं स्मृतं ॥४६॥ प्रेत्यभावो भवोमीषां चतुर्गतिषु देहिनां । दुःखात्मेत्यादिचिता तु भावादिविचयं पुनः ॥४७॥ सप्रतिष्ठितमाकाशमाकाशे वलयत्रयं । संस्थानध्यानिमत्यादि संस्थानिवचयं स्थितं ॥४८॥ अतींद्रियेषु भावेषु वंधमोक्षादिषु स्फुटं । जिनाज्ञा निश्चयध्यानमाज्ञाविचयमीरितं ॥४९॥ तर्कानुसारिणः पुंसः स्याद्वादप्रकियाश्रयात् । सन्मार्गाश्रयणध्यानं यद्वेतुविचयं तु तत् ॥५०॥ अप्रमत्तगुणस्थानभूमिकं द्यप्रमादजं । पीतपद्मलसह्नेक्यावलाधानमिहाखिलं ॥५१॥ कालभावविकल्पस्थं धर्म्यध्यानं दशांतरं । स्वर्गापवर्गफलदं ध्यातव्यं ध्यानतत्परैः ॥५२॥ ग्रहं शुचित्वसंबंधाच्छींचं दोषाद्यपोढता । शुक्तं परमशुक्कं च प्रत्येकं ते द्विधा मते ॥५३॥ सवीचारविवीचारपृथक्त्वैक्यवितर्कके । स्रक्ष्मोिच्छन्नकियापूर्वप्रतिपातिनिवर्तके ॥५४॥ लक्षणं द्विविधं बाह्यं जंभारतंभाद्यपोहनं । प्राणापानप्रचारस्याच्युत्पन्नाप्रहृष्यतः ॥५५॥

१ व्यक्त्युच्छिन्नाप्रवृष्यतः इति स पुस्तके ।

परेषामनुमेयं स्यात्स्वसंवेद्यं यदात्मनः । आध्यात्मिकं तयोरेव लक्षणं प्रतिपद्यते ॥५६॥ पृथाभावः पृथवत्वं हि नानात्वमिभिधीयते । वितर्को द्वादशांगं तु श्रुतज्ञानमनाविलं ॥५७॥ अर्थव्यंजनयोगानां वीचारः संक्रमः क्रमात्। ध्येयोऽर्थो व्यंजनं शब्दो योगो वागादिलक्षणः॥५८॥ पृथवत्वेन वितर्कस्य वीचारार्थादिषु क्रमात्। यश्मिकास्ति तथोक्तं तत्प्रथमं शुक्लमिष्यते ॥५९॥ तद्यथा पूर्वविद्ध्यायस्रविक्षिप्तमना मुनिः । द्रव्याणुं चापि भावाणुमेकमालंब्य संवृतः ॥६०॥ अतीक्ष्णेनापि शस्त्रेण शनै श्रिष्ठदिश्वव दुमं । मोहस्योपशमं कुर्वन् क्षयं वा बहुनिर्जरः ॥६१॥ द्रव्याद्द्रव्यांतरं याति पर्यायं चान्यपर्ययात्। व्यंजनाद् व्यंजनं योगाद्योगांतरमुपैति यत्।।६२॥ शुक्लं तत्त्रथमं शुक्लतरलेक्यावलाश्रयं । श्रेणीद्वयगुणस्थानं क्षयोपश्चमभावकं ॥६३॥ सर्वपूर्वधरस्येदमंतमीं हुर्तिकस्थिति । श्रेणीद्वयवशाद्वेद्यं स्वर्गमोक्षफलप्रदं ॥६४॥ एकत्वेन वितर्कोऽस्ति यस्मिन्वीचारवार्जिते । तदेकत्वीवतकीवीचारं शुक्लं तदुत्तरं ॥६५॥ एकमेवाणुपर्यायं विषमीकृत्य वर्तते । मोहादिघातघातीदं पूर्विणः स कृती ततः ॥६६॥ ज्ञानदर्शनसम्यक्तववीर्यचारित्रपूर्वकैः । मासते क्षायिकैमीवैस्तीर्थकृद्दान्यकेवली ॥६७॥ सोर्चनीयोऽभिगम्यश्र त्रिभुवां परमेश्वरः । देशोनां विरद्दत्येकां पूर्वकोटीं प्रकर्षतः ॥६८॥

अंतम्रहूर्तशेषायुः स यदा भवतीश्वरः । तत्तुल्यस्थितिवेद्यादित्रितयश्च तदा पुनः ॥६९॥ समस्तं वाङ्गमनोयोगं काययोगं च वादरं। प्रहाप्यालंब्य स्रक्षमं तु काययोगं स्वभावतः ॥७०॥ वृतीयं शुक्लसामान्यात्प्रथमं तु विशेषतः । सूक्ष्मिक्रयाप्रतीपाति ध्यानमास्कंतुमहिति ॥७१॥ सोंतर्ग्रहर्तशेषायुरिकान्यत्रिकस्थितः । यदा भवति योगीशस्तदा स्वाभाव्यतः स्वयं ॥७२॥ स्वोपयोगविशेषस्य विशिष्टकरणस्य हि । सामायिकसहायस्य महासंवरसंगते ॥७३॥ शक्तस्य शातने शेणकर्मणां परिपाचने । दंडं चापि कपाटं च प्रतरं लोकपूरणं ॥७४॥ चतुर्भिःसमयैःकृत्वा स्वप्रदेशविसर्पणात् । ताविद्धरेव संहृत्य कृतकर्मसमस्थितिः ॥७५॥ पूर्वकायप्रमाणः सन् भूत्वा निष्ठापयित्रदं । प्रथमं शुक्लमध्यास्ते द्वितीयं परमं पुनः ॥७६॥ स्वप्रदेशपरिस्पंदयोगप्राणादिकर्मणां । समुच्छिन्नतयोक्तं तत्समुच्छिन्निव्रयाख्यया ॥७०॥ सर्वबंधास्रवाणां हि निरोधस्तत्र यत्नतः । अयोगस्य यथाख्यातचारित्रं मोक्षसाधनं ॥७८॥ सोयोगकेवली ह्यात्मा प्रध्वस्ताखिलकर्मकः । जात्यहेमवदुद्भृतचेतनाशक्तिभास्वरः ॥७९॥ सिद्धशिक्षहैव संसिद्धस्वोद्धिवज्यास्वभावतः । पूर्वप्रयोगासंगत्वबंधच्छेदगतिभ्रमैः ॥८०॥ अग्नेः शिखावदाविद्धचक्रालांवुवदुत्पतन् । एरंडबीजवचोर्द्वं लोकं समयतो व्रजेत् ॥८१॥

धर्मास्तिकाथाभावान्न लोकांतमतिगच्छति । धान्नि संतिष्ठते नाग्ने सोनंतसुखसंतिः ॥८२॥ चतुर्वर्गे हि देहिभ्यो मोक्षोतिशयतो हितः । स चोक्तादेव सद्ध्यातात्स्वकर्मक्षयलक्षणः॥८३॥ कमैत्रकृतभावो हि मोक्षोनंतसुखावहः । सयत्नायत्नसाध्यत्वादुद्विधा भवति देहिनः ॥८४॥ चरमोत्तमदेहस्य प्रागसत्वादयत्नतः गत्यंतरायुषामेषामभावो भवतीतरः ॥८५॥ उच्यते तु गुणस्थानात्सम्यग्द्षष्टेरसंयतान् । समारभ्याप्रमतांते कचिदेकत्र मानुषः ॥८६॥ मोहस्य प्रकृतिः सप्त क्षपयित्वा विशुद्धधीः सम्यग्दर्शनमकीमं क्षायिकं प्रतिपद्यते ॥८७॥ आरोढा क्षपकश्रेणीमप्रमत्तः प्रकृत्य सः । अथाप्रवृत्तकरणमपूर्वकरणत्वकृत् ै।।८८॥ अपूर्वकरणो भूत्वा स पापप्रकृतिस्थिति । तनूकृत्यानुभागं चानिवृत्तिकरणाप्तितः ॥८९॥ अनिवृत्तिगुणस्थाने क्षपकव्यपदेशभाक् । शुक्लध्यानानलाक्रांतकर्मप्रकृतिकक्षकः ॥९०॥ सिन्द्रानिद्र।प्रचला-प्रचलास्त्यानगृद्धिभिः । दुर्गती सानुपूर्वीके पूर्वो जातिचतुष्टयी ॥९१॥ सस्थावरातपोद्योतसूक्ष्मसाधारणाभिधाः । सहैव क्षपयत्येताः षोडश प्रकृतीः कृती ॥९२॥ अत्रैवांतः परं स्थानं कषायाष्ट्रकमस्यति । ततो नपुंसकं वेदं स्त्रीवेदं च ततः परं ॥९३॥

१ श्वाभ्रतिर्यचदेवायुस्त्रयं क्षपयते सुधी: अयमधिकः पाठः क पुस्तके ।

पुंचेदे नोकषायाणां षट्वं प्रक्षिप्य वे सह । निरस्याक्षिप्य पुंचेदं क्रोधसंजलनानले ॥९४॥ मानसंज्वलने तं च मायासंज्वलने त्वम्रं। लोभसंज्वलने त्वेनं निक्षिप्य दहति क्रमात्।।९५॥ लोभसंज्वलनं सूक्ष्मं कृत्वा सूक्ष्मकषायगः। लोभसंज्वलनस्यांतमंते कृत्वा विमोहकं ॥९६ भूत्वा क्षीणकषायस्योपांतिमे समयेऽस्यति । निद्रां च प्रचलामंत्ये ज्ञानावृत्यंतराययोः ॥९७॥ प्रत्येकं प्रकृतीः पंच चतस्रो दर्शनावृतेः। दग्ध्वैकत्ववितकीियः सयोगः केवली भवेत् ॥९८॥ सद्वेद्यं चाप्यसद्वेद्यं नामदेवगतिश्चतिः । औदारिकशरीरादिनाम्ना पंचतयं तथा ॥९९॥ संघातपंचकं चापि पुनर्वधकपंचकं । वैकियोद्वारिकाहारकायांगोपांगकत्रिकं ॥१००॥ संस्थाननामषद्कं च षद्संहनननाम च । वर्णपंचकनामापि रसपंचकनाम च ॥१०१॥ अष्टधा स्पर्शनामापि गंधनाम पुनर्द्धिधा । तत्त्रयोग्यानुपूर्वी च नामदेवगतेः पुनः ॥१०२॥ नामागुरुलघूच्छासपरघातोपघातकं । प्रशस्ताशस्तभेदस्थं विहायोगति नाम च ॥१०३॥ प्रत्येककायापर्याप्तिस्थरास्थिरश्चभाश्चमं । तथा दुर्भगनामापि पुनः सुस्वरदुस्वरं ॥१०४॥ अनादेययगुःकीर्तिनाम निर्माणनाम च । प्रकृतीद्वीसप्तातिनीचैगोत्रेण च सुपिंडिताः ॥१०५॥ सयोगकेवली स्थानमतीत्य पदमास्थितः । अयोगकेवली हंति स्वोपांत्यसमयेहेतः ॥१०६॥

वेद्यमकं मनुष्यायुर्मनुष्यगतिरेव च । तत्प्रायोग्यानुपूर्वी च जातिः पंचेद्रियाभिधा ॥१०७॥ त्रसवादरपर्याप्तसुभगादेयसंज्ञिका । उच्चेगीत्रं यशःकीर्तिस्तत्तीर्थंकरनाम च ॥१०८॥ एतास्त्रयोदश्रख्याताः प्रकृतीः प्रकृतिस्थिरः । अयोगकेवली हंति चरमे समये ततः ॥१०९॥ सहस्वाचारणवृत्तीः पंच स्थित्वा स्वकालतः।सिद्धिः सादिरनंता स्यादनंतगुणसिन्निधिः॥११०॥ धर्म्यध्यानप्रकारं स ध्यायक्रमिययोचितं । षद्पंचाशदहोरात्रकालं सुतपसानयत् ॥१११॥ पूर्वोहे स्वयुजस्यातः शुक्लप्रतिपदि प्रभुः । शुक्लध्यानाग्रिना दग्ध्वा चतुर्घोतिमहावनं ॥११२॥ अनंतकेवलज्ञानदर्शनादिचतुष्ट्यं । त्रैलोक्येंद्रासनाकंपि संप्रापत्परदुर्लभं ॥११३॥

घंटाराबोरुसिंहस्फुटपटहरबोदारशंखस्वनैस्तां

जैनीं कैवल्यलिंध सकलसुरगणा द्राग्विदित्वा यथास्वं

इंद्राः सिंहासनोचैर्प्रकुटविचलनैः स्वान प्रयुज्यावधान् स्वैः

प्राप्तानिकैः सहायुः धुभितसिललिधित्रातवद्भित्त्वोक्याः ॥११४॥

आपूर्यावार्यवेगर्गगनजलनिधि वाहनानां समूहैः

सप्तानीकैरनीकैस्त्रिद्शपतिगणस्तं परीत्य प्रपेदे

प्रोचैपूर्घावलेपं गिरिपतिमधिपस्नानकल्याणमात्रं भूयः कल्याणकंठे गुणभरणगुणाद्र्जयंतं जयंतं ॥११५॥ मंदारादिद्वमाणां सुरभितककुभां पुष्पवृष्टचा सुराणां दिव्यस्त्रीगीतमूर्छन् मुखरितभुवनेदुँदुभीनां निनादैः भेत्रा लोकस्य शोकं फलकुसुमभृताशोकशाखाभृता च श्वेतच्छत्रत्रयेण त्रिभुवनविभुताचिह्नभूतोरुभुम्ना ॥११६॥ हंसालीपातलीलैर्घवलितखचलैश्वामराणां सहस्रैः भाभिभामंडलेन प्रतिहतविकसद्भानुभामंडलेन नानारत्नौघरोचिजीनतसुरधनुईमसिंहासनेन भाषाभेदस्फुरंत्या स्फुरणविरहितस्वाधरोद्धाषया च ॥११७॥ अष्टाभिः प्राप्तिहार्थेरतिशमितपरैः स्वैर्विशेषेरशेषैः कर्मापायस्वभावत्रिदिवपतिमवैस्तैश्रतुस्त्रिशता च

त्रैलोक्योद्धारणाय प्रकृतधृतधृतिर्नेमिनाथो जगत्यां द्वाविशो हारिवंशो गुणगणवृहतात्तीर्थकृत्प्रादुरासीत् ॥११८॥

इत्यस्ष्टिनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ भगवन्नेमिनाथकेवलज्ञानवर्णनो नाम षट्पंचाशः सर्गः।

सप्तपंचादाः सर्गः ।

समवादि समापादि शरणं शरणं क्षणात् । त्रिजगत्प्राणिनां देवैः पाकशासनशासनात् ॥१॥ सर्वो द्वारवतीलोको यदुभोजकुलांबुधिः । आहरोह गिरि भूत्या रामकेशवपूर्वकः ॥२॥ अवलोक्य जिनेद्रस्य शरणं समवादिकं । बहिरंतःपरं प्रापद्विस्मयं जनसागरः ॥३॥ यादशी समवस्थानभूमिस्तीर्थकृतामिह । तादशी श्रोतृलोकस्य समासेन निगद्यते ॥४॥ भूमेः स्वभावभूताया दिव्यारित्नप्रमोच्छृतिः । भूमिस्तावत्समुच्छ्राया कल्पभूमिरुपर्यतः ॥५॥ स्वर्गश्रियं श्रिया जेत्री चतुरस्रा सुखप्रदा । सैकांतद्वादशाद्यात्मयोजना कालदेशतः ॥६॥ उचैगधकुटीदेशकाणिका पद्ममूर्तिवत् । माति भूमिरसौ वाद्यभूश्रीपत्रपरंपरा ॥७॥ इंद्रनीलमयी भूमिबीह्यादर्शतलोपमा । भूयसामिष भूयस्त्वं विश्रतां विद्धाति सा ॥८॥

द्रादिंद्रादयो यस्यामानयंति नमस्यया । मा नाहीस्त्रिजगन्नायं साभूमीनांगणाभिषा ॥९॥ महादिश्च चतस्रोस्या गव्यतिद्वयविस्तृताः । वीध्यस्तत्मध्यगानीयुर्मानपीठान्पुरःप्रमाः ॥१०॥ स्वोत्सेधत्रिगुणात्मीयविस्तराण्युक्तिविस्तरैः । सीवर्णरत्नमूर्तीनि मान्यंते नृसुरासुरैः ॥११॥ नुसुरा मानवस्तंभानास्थायाचेति यत्र भूः। सा त्वास्थानांगणाभिख्या ज्वलह्योहितरत्नभा॥१२॥ मध्ये वापि चतस्रोत्र त्रिभंगा हैमपीठिकाः । भांत्युरोद्वयसोच्छाया वृत्ता क्रोशार्धविस्तृता॥१३॥ चापोनपीठिका व्यासा योजनान्यधिकोच्छ्याः। छुंभिता मानवस्तंभाश्रत्वारः पीठिकास्वधि १४ द्विषड्योजनदृश्यास्ते पालिकस्यांबुजस्थिता । वज्रस्फटिकवैद्वर्यमुलमध्याप्रविग्रहा ॥१५॥ द्विसहस्रस्यो नानारत्नरिमविमिश्रिताः । चतुर्दिश्चर्ष्वसिद्धार्चाः रत्नभूतोरुपालिका ॥१६॥ पालिकामुखपद्मस्थतपनीयस्फुरद्घटाः । घटस्यावद्धफलका श्रीभामाभिषवश्रियः ॥१७॥ श्रीचूलारत्नभाचकभास्य विंशतियोजनाः । साभिमानमनोदेवमानवस्तंभना बभुः ॥१८॥ ततः सरांसि चत्वारः शुभदंभोजभांज्यलं । इंससारसचकाह्यरावरम्यकदुप्स्वलं ॥१९॥ अते। वज्रमयो वन्नो वक्ष्यो दभ्नो घनद्यतिः । द्विगुणीभूतविस्तारः परीयाय समंततः ॥२०॥ परीत्य परिखातोऽस्थाज्जलप्रभमणिक्षितिः । जानुद्रघांबुगंभीरा कृष्णसाटीव भूक्षियः ॥ ११॥

हेमांभोजरजः पुंजा पिंजरीभावितांभसि । स्वच्छायां दिङ्गुखान्यस्यां सांगरागाणि चात्यभान् २२ वल्लीवनमतोप्यंतःपरीत्य स्थितमित्यभात् । कुसुमामादिता सांतं शंकुतालिकुलाकुलं ॥२३॥ प्राकारीतः परीयाय कनत्कनकभास्वरः । विजयादिवृहद्रौप्यचतुर्गोपुरमंडितः ॥२४॥ तत्र दौवारिका भौमा कटकादिविभूषणाः । प्रभावोत्सारितायोग्या मुद्ररोद्धतपाणयः ॥२५॥ मणितोरणपार्श्वेषु गोपुराणां स्फुरन्विषां । छत्रचामरभूंगारपूर्वाष्ट्रशतकान्यभान् ॥२६॥ तद्रोपुरपुरो भांति प्रेक्षाशालास्त्रिभूमिकाः। द्विद्विवींध्यंतयोर्नृत्यद्द्वात्रिशत्मुरकन्यकाः ॥२७॥ भात्यशोकवनं प्राच्यां सप्तपर्णवनं त्वपाक् । प्रतीच्यां चंपकवनमुदीच्यामाम्रसद्वनं ॥२८॥ ससिद्धप्रतिमाशोकः सप्तपर्णश्च चंपकं । तथैवाम्रतहस्तेषां वनानामधिपाः ऋमात् ॥२९॥ त्रिकोणाः मंडलाकाराश्रतुरस्राश्र वापिकाः । वनेषु रत्नतद्योताः शुद्धस्फटिकभूमयः ॥३०॥ विश्वाः सतोरणाः लक्ष्यास्तीर्थ्यास्तू चैर्त्ररांडकैः । मंडितागाहमानेष्वगाधाद् द्विक्रोशविस्तृताः ३१॥ नंदा नंदोत्तरानंदानंदवत्यिमनंदिनी । नंदघोषत्यमूर्वोप्यः षडशोकवनस्थिताः ॥३२॥ विजयाभिजया जैत्री वैजयंत्यपराजिताः । जयोत्तरेति षड्डाप्यः सप्तपर्णवनाश्रिताः ॥३३॥ कुमुदा नलिनी पद्मा पुष्करा विकचोत्पला । कमलेत्यपि षड्डाप्यश्रंपकारुयवने मताः ॥३४॥

त्रभासा भारवती भासा सुत्रभा भानुमालिनी । स्वयंत्रभेति पड्डाप्यः सहकारवनोदिताः ॥३५॥ डदयो विजयः प्रीतिः ख्यातिश्चेति कमोदितैः। फलैः पूर्वादयो वाष्यः पूज्यंते तत्फलार्थिमिः॥३६॥ तद्वापीपुष्पसंदोहं यथोक्तं प्राप्य भाक्तिकाः । आस्तूपं क्रमशोभ्यच्ये विशंति क्रमकेविदा ॥३७। अंतरेणोद्यं प्रीतिं चाभितास्त्रिभुवोध्वसु । भांति नाटकशालास्ता हाटकोज्ज्वलमूर्तयः ॥३८॥ अध्यर्धकोशविस्तारा द्वात्रिंशद्भक्तिभाजिताः । तद्भवोरत्ननिर्माणाः स्वच्छस्फटिकभित्तयः॥३९॥ तासु भक्तया प्रनृत्यंति द्वात्रिंशज्ज्योतिषां स्त्रियः । हावभावविलासाद्या रसपुष्टिसपुष्टयः ॥४०॥ सचतुर्गोपुरातो अपि पर्येति वनदेविका । दिच्या वज्रमयी वीथी पार्श्वयोध्वेजपंक्तयः ॥४१॥ त्रिदंडविस्तृताश्रित्राः पीठिका प्रतिभक्तिगाः।योजनाधीच्छितास्तासु वंशारत्नात्मपूर्वकाः ॥४२॥ तदग्रपालिकानद्भक्तकाधिष्ठिता ध्वजाः । महातो दश चित्राः सर्तिकिणीचित्रपट्टकाः ॥४३॥ शिखि हंसगरुत्मत्स्रविंसहेभमकरांबुजैः । वृषद्भपेण चक्रेण समिधिष्ठितपूर्त्तयः ॥४४॥ तेपामष्ट्रशतं जातिद्वीत्रिशच चतुःशती । ध्वजसंख्या भवेदेषां सामान्येन समासतः ॥४५॥ सद्वात्रिश्वत्सहस्राः म्युर्लक्षाः पंचाशदष्ट च । साधिका ध्वजसंख्येयं सैकदिका द्विसंगुणा ॥४६॥ षर्पंचाशत्सहस्राणि लक्षा पर्षष्टिरष्टसु । ध्वजकोट्यश्रतस्रः स्युश्रतुर्दिक्ष्विप साधिका ॥४७॥

प्रीतिकल्याणमध्ये स्युर्भितः पंचभूमिकाः । वृत्तशालाः प्रवृत्यंति यत्र भावनयोषितः ॥४८॥ प्राकारोतः परीयाय द्वितीयो हेमनिर्मितः । पंचभूमिकरत्नश्रीचतुर्गोपुरभूषितः ॥४९॥ हटद्वाटकपीठस्था कंबुकंठगुणोज्वलाः । शातकंभमया कुंभाः सांभोजास्या सहांभसः ॥५०॥ शोभंते तद्द्विपार्श्वेषु द्वौ द्वौ मंगलदर्शनाः । वेत्रदंडधरा द्वास्थास्तद्द्वाःसु भवनाधिषाः ॥५१॥ पुरस्ताद्रोपुराणां च द्वे द्वे नाटकवेश्मनी । पुरस्ताचु ततो हेमौ द्वी द्वी धूपघटी स्फुटौ ॥५२॥ चतुर्दिक् सिद्धरूपाळां द्विद्धिः सिद्धार्थपादपं । कल्पवृक्षवनं तत्र वीध्यंतेषु यथाययं ॥५३॥ सचतुर्गोपुरातींतर्वेदिका वनपाठतः । तोरणांतरिताः सर्वाः स्तूपा नव नवाध्वस् ॥५४॥ पद्मरागमहास्तूपपर्यंतेषु समागृहाः । हेमरत्नमयाश्रित्रमुनिदेवगणोचिताः ॥५५॥ नभःस्फटिकनिर्माणस्ततः सालस्तृतीयकः । चतुश्चित्रा महारत्नसप्तभूमिकगोषुरः ॥५६॥ विजयो विश्वतं कीतिविमलोदयविश्वधुक् । वासवीर्यं वरं चेति पूर्वीख्या ख्यापिताष्ट्रधा ॥५७॥ वैजयंत्यं शिवं ज्येष्ठं वरिष्ठानधधारणं । याम्यभन्नतिषं चेति दक्षिणाख्याष्ट्रधा मताः ॥५८॥ जयंतामितसारं च सुधामाक्षोभ्यसुप्रमं । वरुणं वरदं चेति पश्चिमाख्याष्ट्रधा स्पृतीः ॥५९॥ अपराजितमची रूयमतुलार्थममो घकं । उदयं चाक्षयं चोदकौवेर पूर्णकामकं ॥ ६०॥

सुरत्नासनमध्यस्था दृष्ट्णां भवदर्शिनः । तद्द्वारोभयपार्थेषु भांति मंगलदर्पणाः ॥६१॥ यैः प्रध्वस्तमहाध्वांतप्रभावलयभास्वरैः । भास्वतो भासमुद्रय भासंतो गोपुराण्यलं ॥६२॥ विजयादिपुरद्वाःसु द्वास्था तिष्ठांते कल्पजाः । यथायथं ज्वलद्भूषा जयकल्याणकारिणः ॥६३॥ शालास्त्रयोप्यमी त्वेकद्वित्रिक्रोशोच्छ्योनिमताः । मूलमध्योपरिन्यासेस्तदर्धार्धेसु सम्मिताः॥६४ स्वरतिनत्रयहीनोक्तप्रमाणजगतीतलाः । हस्तो द्विद्वाक्षविस्तीणीक्षांतरौः कपिशीर्षकाः ॥६५॥ ततोष्यंतर्वणं नानातरुवल्लीगृहाकुलं। मंचप्रेंखानिरिप्रक्षागृहकोटिपराजितं ।। ६६ ॥ वेदिकावद्भवीधीषु कल्याणादिजयाजिरं । कदल्यः कदलीकल्या प्रकाशंतेंऽतरस्थिताः ॥६७॥ अंतर्नाटकशाला स्यात्ततः कल्याणसप्रभाः। लोकपालविलासिन्यो यत्र नृत्यंति संततं ॥६८॥ तदंतरे भवत्यन्यत्वीठं पीठगुणास्पदं । प्रोदशुरत्नजालास्ततिमिरावलिमंडलं ॥६९॥ सिद्धार्थपादपाः संति सिद्धरूपविराजितैः । विटपैर्च्याप्य दिक्प्रांतिमच्छयेव स्थितास्ततः ॥७०॥ स्तुपा द्वादशभूषा भूषयंत्यथ मंदिरं । हिरण्मया महामेरुं चत्वारो मेरवो यथा ॥७१॥ चतुर्दिग्गोपुरद्वारवेदिकालंकृता ग्रुभा । चतस्रो दिस्वथ ब्रेयाश्रतसृष्विप वापिकाः ॥७२॥

१ व्यासार्धकपिशीर्षका इति क पुस्तके।

नंदाभद्राजयापूर्णेत्यभिष्याभिः ऋमोदिताः । यज्जलाभ्युक्षिता पूर्वो जातिं जानंति जंतवः ॥७३॥ ताः पवित्रजलापूर्णसर्वपापरु नाहराः । परापरभवा सप्त दृश्यंते यासु पश्यतां ॥७४॥ अथ गव्युतमुद्धिदं योजनाधिकविस्तृतं । कटीमात्रवरंडस्थकदलीध्वजसंकुलं ॥७५॥ निरंतरविशिनिर्यज्जनद्वारोचतोरणं । त्रिलोकविजयाधानमहो भाति जयाजिरं ॥७६॥ मुक्तावालुकविस्तीर्णप्रवाणसिकतांतरं । सुरत्नकुमुमैश्चित्रं हेमां भौजैस्तदर्चितैः ॥७७॥ तपनीयरसालिप्तेस्तपनैरिव भूगतैः । तत्र तत्र यथा दैश्यं मंडचंते पृथुमंडलैः ॥७८॥ प्रासादैर्मेडपैश्वान्यैः सुखावासैः सुशोभते । देवासुरनरापूर्णेस्तत्र तत्र विचित्रितं ॥७९॥ कचिदालेख्य हद्यानि वेक्मानि कचिदंतरे । पुराणाद्भतभूतीनि चित्राख्यानान्वितानि च ॥८०॥ कचित्पुण्यफलप्राप्त्या पापपाकेन च कचित्। धर्माधर्मगति साक्षाइर्शयंतीव पत्रयतः ॥८१॥ दानशीलतपःपूजापारंभास्तत्फलानि च । तद्वियोगविपत्तीश्च तानि श्रद्धापयंत्यमून् ॥८२॥ स्फुरत्पुलकसंसक्तमुक्तादामोनिमवन्मणिः । पताकाघंटिकारावो रमणीयानिलेरितः ॥८३॥ उदंशुरत्नमालेव स्फुरंती वीचिरणेव । वीक्ष्यते व्योमनींद्राद्येः कौतुकाद्येन वीक्षिता ॥८४॥ राजतींद्रध्वजः सोयं तन्मध्ये हेमपीठिका । अलंकुर्वन यथामूर्तो देहो देवजयश्रियः ॥८५॥

ततःस्तंभसहस्रस्थो मंडपोऽस्ति महोदयः । नाम्ना मूर्तिमती यत्र वर्तते श्रुतदेवता ॥८६॥ तां कृत्वा दक्षिणे भागे धीरैर्बहुश्रुतैर्द्वतः । श्रुतं व्याकुरुते यत्र श्रायसं श्रुतकेवली ॥८७॥ तदर्घमानाश्चत्वारस्तत्परीवारमंडपाः । आक्षेपण्यादयो येषु कथ्यंते कथकैः कथा ॥८८॥ तत्प्रकीर्णकवासेषु चित्रेष्वाचक्षते स्फुटं । ऋषयः स्वेष्टमर्थिभ्यः केवलादिमहर्द्धयः ॥८९॥ तपनीयमयं पीठं ततश्चित्रलताचितं । यत्तद्वल्युपहारेण यथाकालं समर्च्यते ॥९०॥ पीठाही श्रीपदद्वारं सरत्नकुसुमोत्करं । मंडलः पूर्यते मध्ये मार्गश्चंदार्कसप्रमैः ॥९१॥ अभितः स्वारूयया द्वा तं मंडपौ स्तः प्रभासकौ । अत्यध्वं राजतो यत्र निधीशौ कामदायिनौ ॥९२॥ प्रेक्षाशाले विशाले स्तः प्रमदाख्ये ततींबरे। यत्र कल्पनिवासिन्यो नृत्यंत्यप्सरसः सदा ॥९३॥ विजयाजिरकोणेषु विलसत्केतुमालिनः । चत्वारो योजनोद्विद्धा लोकस्तूपा भवंत्यमी ॥९४॥ अधोवेत्रासनाकारा झल्लरीसममध्यगाः । उध्वै मृदंगसंस्थाना स्वांततालामनालिकाः ॥९५॥ स्वच्छस्फटिकरूपास्ते सुव्यंक्तांतर्निवेशकाः । दृश्यते लोकविन्यासो यत्रादर्शतले यथा । ९६॥ मध्यलोकस्वरूपांतर्व्यक्तिनिर्माणमूर्त्तयः । मध्यलोका इति ख्याता संति स्तूपास्ततः परे ॥९७॥ मंदरस्तूपनामानो मंदराकारभास्वराः । चतुःकांडचतुर्दिधु चैत्या भांति ततोपरे ॥ ९८ ॥

ततोंऽतःकरपवासारूया करपवासिनिवेशिनः । स्तूपास्ते करपवासिद्धं साक्षात्क्ववीते पश्यतां।।९९।। ग्रैवेयकपरास्तेन्ये नाम्ना स्तृपास्तथाविधाः । ततो ग्रैवेयकाभिरूयां दर्शयंतीव मानवान् ॥१००॥ नवानुदशनामानस्ततस्तुपा विराजते । नवानुदिश अध्यक्षं पश्यंते यत्र प्राणिनः ॥१०१॥ विजयादिचतुर्दिका विमानोद्धासिनस्ततः। सर्वार्थदायिनः संति स्तूपाः सर्वार्थसिद्धिद्धाः ॥१०२॥ सिद्धस्तुपाः प्रकाशते ततोन्ये स्फटिकामलाः । यत्रव दर्पणच्छाया दृष्यते सिद्धरूपभाक् ॥१०३॥ भव्यकुटाख्यया स्त्रुपा भास्वत्कुटास्ततोऽपरे।यानभव्या न पश्यंति प्रभावांधीकृतेक्षणाः॥१०४॥ प्रमोहा नाम संत्यन्ये स्तूषा यत्र प्रमोहिताः । विस्मरंति यथाग्राहं चिराभ्यस्तं च देहिनः॥१०५॥ प्रबोधारूया भवंत्यन्ये स्तूपा यत्र प्रबोधिता । तत्त्वमासाद्य संसारान्युच्यते साधवो ध्रुवं ॥१०६॥ एवमन्योन्यसंसक्तवेदिकातोरणोज्वलाः । दश स्तूपा समुत्तुंगाः राजंत्याः परिधेः क्रमात् ॥१०७॥ ततोस्ति कोशविस्तारं परिधिर्धेनुरुच्छ्तिः । यत्र मंडलभूवार्यं परियंति नरामराः ॥१०८॥ बाह्याः सप्तदश न्यस्ता गव्युतैर्वृतमेकतः । कर्णिकाथ तदंतस्था ज्ञेया सार्धत्रियोजना ॥१०९॥ परिवेष इवार्क यः परिधेः परिवेष्ट्यते । चित्ररत्नमर्योतस्थं भासुरं परिमंडलं ॥११०॥

१ 'सर्वार्थसिद्धयः । इति स्व पुस्तके ।

निर्मित्सानंतरं भर्तुर्वजस्योत्पद्यने पुरं । दिच्यं तत्र प्रभावो हि मनसा ज्ञापिनां महत् ॥१११॥ त्रिलोकसारं श्रीकांतं श्रीप्रभं शिवसंदिरं । त्रिलोकीलोककांतिश्रीश्रीपुरं त्रिद्शिषयं ॥११२॥ लोकालोकप्रकाशा द्यौरुद्योभ्युद्यावहं । क्षेमं क्षेमपुरं पुण्यं पुण्याहं पुष्पकास्पदं ॥११३॥ भुवः स्वर्भस्तपः सत्यं लोकालोकोत्तमं रुचिः । रुचावहमुदारिधं दानधर्मपुरं परं ॥११४॥ श्रेयः श्रेयस्करस्तीर्थं तीर्थावहमुदग्रहं । विशालचित्रकृटं धीश्रीधरं च त्रिविष्टपं ॥११५॥ मंगलोत्तमकल्याणशरणादिपुराणि पुः । जयापराजितादित्यजयंत्यवलसंपुरं ॥११६॥ विजयंतं जयंताभं विमलं विमलप्रभं । कामभूगगनाभोगं कल्याणं कलिनाशनं ॥११७॥ पित्रतं पंचकस्याणं पद्मावतः प्रभोदयः । परार्घ्यमंडिता वासौ महेंद्रं महिमालयं ॥११८॥ स्वायंभ्रुवं सुधाघात्री शुद्धावासः सुखावती । विरजा वीतशोकार्थविमला विनयाविनः॥११९॥ भूतधात्री पुराकल्पः पुराणं पुण्यसंचयः । ऋषीवती यमवती रत्नवत्याजरामरा ॥१२०॥ प्रतिष्ठा ब्रह्मनिष्ठोत्री केतुमालिन्यनिदितं । मनोरमं तमः पारमत्नीरत्नसंचयं ॥१२१॥ अयोष्यामृतधानीति समं ब्रह्मपुरारूयया । जाताह्वयमुदात्तार्थं तत्कल्पज्ञेरुदीर्यते ॥१२२॥ अथ त्रैलोक्यसारकसंदोहमयमद्भुतं । भाति भतृत्रभावोत्थं तत्पदं बहुविस्मयं ॥१२३॥

कुतावधानस्तित्सिद्धि भूयः स्रष्टापि चितयन्।ध्रुत्रं मोम्रुह्यतेन्यस्य तथा चेत्तत्र का कथा ॥१२४॥ दश्रषोडशभिस्तस्य सुवर्णमणिजातिभिः। यथास्थानं स्वयं चित्रं निर्माणमभिराजते ॥१२५॥ तलं तिस्रो जगत्यश्च तत्र क्रोशार्धविस्तृताः । उपर्युपरि तत्र स्यात्परिहाणिश्च तावती ॥१२६॥ तासां वज्रमयी सिद्धिश्चित्ररत्नोज्वला भुवां । यत्प्रभाशकचापानि तनोति परितः पराः ॥१२७॥ उरोद्भा वरंडास्ते भूषयंति ज्वलत्प्रभाः । जगतीर्यत्र राजंते कदल्यो धनुरंतराः ॥१२८॥ त्रिंशदक्षमितैः कूटैद्विगुणायतकोष्ठकैः । द्विगुणैर्भूयते तासु दशदंडांतरास्थितैः ॥१२९॥ द्वी द्वी दीवारिकावासावभितस्तस्तदंतिके । यत्र वैश्रमणस्यार्था प्रतिद्वारं प्रकाशते ॥१३०॥ कुटानां सप्तश्वत्यासु द्वासप्तत्यिका क्रमात् । चत्वारिंशदृष्टयुक्ता कोष्ठकानां च सागणिः ॥१३१॥ द्राविंशतिशतान्याहुर्विंशानि जगतीत्रये । कूटसंख्या समासेन कोष्ठकानां च तावती ॥१३२॥ एकाष्टलोकभीभंगनवैकद्विचतुर्भियैः । षडस्तिवैकभंगैः स्युर्जगतीकेतवः ऋमात् ॥१३३॥ वियद्भ्यौनिमिमंगश्रेण्यः पूर्वकोटगाः । भूषण्मंडलग्व्योमखोत्क्रमां मध्यक्टगाः ॥१३४॥ खार्ष्टाष्ट्रचतुरस्त्यक्षीण्यंतक्टगता ध्वजाः । कोष्टगास्तत्र तत्रामी भाव्यंते ते द्विसंगुणाः ॥१३५॥

१-३२३८१ । २-१४२१९ । ३-३१०५३ । ४-२३२४७० । ५-७६११० । ६-२५४८८० ।

लक्षा षड्विंशतिर्हेयाः सहस्राणां च विंशतिः । षर्पंचाशद्विशत्यामा तत्सर्वकर्दलीगाणिः ॥१३६॥ तत्र संस्वेददेशेषु मंडपा रत्नमंडिता । दश्येकगव्यूतविस्तारसमुत्सेधाश्रकासति ॥१३७॥ तदर्घव्यासनिर्माणशिखरांतस्वासिनः । संति सन्मेंगलोद्धासिमूर्तयोची जिनेश्वराः ॥१३८॥ तत्रस्थाऽपि तद्देशाद्विनिष्क्रम्य नभस्यमी । यथोपदिष्टा दृश्यंते संमुखीभूय पश्यतां ॥१३९॥ पीठानि त्रीणि भास्वंति चतुर्दिशु भवंति तु । चत्वारि च सहस्राणि धर्मचक्राणि पूर्वके ॥१४०॥ द्वितीये तु महापीठे शिखिहंसध्वजेतरे । अष्टौ तिष्ठंति दिग्मागा भासयंतो महाध्वजाः ॥१४१॥ अप्रे श्रीमंडपोद्वासी प्रासादो बहुमंगलः । गंधकुट्यभिधानः स्यात्तत्र सिंहासनं विभोः ॥१४२॥ तत्रासीनं जिनाधीशं नृसुरासुरकोटयः । तुष्टुवुस्तुष्टचित्तास्ता मकुटन्यस्तपाणयः ॥१४३॥ विजयस्व महादेव ! विजयस्व महेश्वर । विजयस्व महाबाहो ! विजयस्व महेश्वण ।।१४४॥ इत्यादिश्वतिकोटीनांमंते प्रवाज्य तत्क्षणात् । गणिनामग्रणीजीतो वरदत्तो गणाधिपः ॥१४५॥ षर्सहस्रनृपस्रीभिः सह राजीमती तदा । प्रव्रज्याग्रेसरी जाता सार्थिकाणां गणस्य तु ॥१४६॥ यतिनर्गादयः सर्वे गणा द्वादश ते ततः । प्रणिपत्य यथास्थानं तं प्रश्चं सम्रुपासते ॥१४७॥ परिपर्यध्वनस्तिस्मिन्पदेषु द्वादशस्वमी । पूर्वदक्षिणभागादिष्वासतेग्रप्रदक्षिणं ॥१४८॥

तत्र प्रत्यक्षधर्माणो धर्मेशांशा इवामलाः । भासते वरदस्याप्रे वरदत्तादियोगिनः ॥१४९॥ भर्तुर्या भूतयो बाह्यास्तदंतर्भूर्तितः प्रति । राजंते कल्पवासिन्यो व्यक्तं तन्मूर्तयो यथा ॥१५०॥ हीदयाक्षांतिशांत्यादिगुणालंकतसंपदः । समेत्योपविशंत्यायीः सद्धर्मतनया यथा ॥१५१॥ द्योतिमेडलवासिन्यो भर्तृज्योतिष्टमप्रभाः। अभिनंद्य तदुद्धतिवभाभासश्रकासित ॥१५२॥ वनिश्रयो यथा मूर्ता वानव्यंतस्योषितः । वन्यपुष्पलता नम्रा नमंति वरदक्रमं ॥१५३॥ भवनालयवासिन्यो भगवत्पतिभक्तयः । स्वर्भर्भवो यथा लक्ष्म्याःसमयांतं समासते ॥१५४॥ भावनाः पापवंधस्य छेत्तारं निःकपासते । विभ्यतः स्वभवाद्धास्वत्फणारत्नविभारुणाः ॥१५५॥ व्यंतराः सुंदराकारा मंदरेस्येव कल्पकाः । भवंति भर्तुराकल्पाः सुमनोमालभारिणः ॥१५६॥ परमेश्वरभामग्रस्वप्रभाभास्कराद्यः । ज्योतिर्गणाः प्रभावृद्धिं प्रार्थयंते तमानताः ॥१५७॥ सौंद्रेंण सुखात्मानो भागा भर्तुरिवोद्यताः । स्वर्भुवः प्रतिभासंते सहस्राक्षपुरस्सराः ॥१५८॥ दानपूजादिधर्माशा देहवंतो यथामलाः । वरदं वरिवस्यंति नृपाश्चक्रधरादयः ॥१५९॥ अविद्या वैरमायादिदोषापायाप्ततद्भुणाः । हरीभाद्या विभात्यन्ये तिर्यचस्तादशो यथा ॥१६०॥ एवं द्वादशवर्गीयैद्वीदशांगगुणापमैः । परीत्योक्तक्रमादीशो गणैरेभिरुपासितः ॥१६१॥

पारमेष्टचमनन्यस्थं ख्यापयन्नासनश्रिया । चामरेरमरोद्धतैः ऋमस्थैः सुमहेशितां ॥१६२॥ त्रिलोकाधीशितां छत्रत्रयेणेंदुत्रयत्विषा । भामंडलेन भाधिक्यं भवांतरतमिष्टिदा ॥१६३॥ सर्वतुकुसुमेनान्यसर्वशोकापहारितां। अशाकेनाभिपूज्यंते सुमनोष्टष्टिपूज्या ॥१६४॥ सार्वत्वमभयाधानघोषणेन जयश्रियां । नंदीमंगलघोषेण साधुचित्ताभिनंदिनं ॥१६५॥ आत्माघीनाः प्रतीहाराः प्रतिहार्यगुणोद्भवैः । भूषितोष्टमहोदग्रप्रातिहार्यैर्भहेश्वरः ॥१६६॥ लोकानां भूतये भूतिमात्मीयां सकलां दधत्। सर्वलोकातिवर्तिन्या भासास्थानमधिष्ठितं ॥१६७॥ अयमास्ते समग्रात्मा सार्थकामाः ससंभ्रमाः । एतेत नमतैशानमित्याहानं सघोषणं ॥१६८॥ वर्तयंति सुरास्तिस्मन्मंडले तदनुदुतं । समंतात्तत्समायांति भूतिभिर्नृसुरासुराः ॥१६९॥ तदृदृष्टिगोचरे मंश्च वाहनेभ्योवतीर्यते । मानांगणमथास्थाय पूर्व सांजलिमौलिभिः ॥१७०॥ तत्र बाह्य परित्यज्य वाहनादिपरिच्छदं । विशिष्टकाकुदैर्युक्ता मानपीठं परीत्य ते ॥१७१॥ प्रादक्षिण्येन वंदित्वा मानस्तंभमनादितः । उत्तमाः प्रविशत्यंतरुत्तमाहितभक्तयः ॥१७२॥ पापशीला विकुर्माणाः श्रूद्राः पाखंडपांडवाः । विकलांगेंद्रियोद्भांता परियंति वहिस्ततः ॥१७३॥ क्षत्रचामरभृगाराद्यवद्दाय जयाजिरे । आप्तैरनुगताः कृत्वा विशंत्यंजलिमीश्वराः ॥१७४॥

प्रविक्य विधिवद्भक्तया प्रणम्य मणिमौलयः । चक्रपीठं समारुह्य परियंति त्रिरीश्वरं ॥१७५॥ पूजयंतो यथाकामं स्वशक्तिविभवार्चनैः । सुरासुरनरेंद्राद्याः नामादेशं नमंति च ॥१७६॥ ततोवतीर्य सोपानेः स्वैः स्वैः स्वांजलिमौलयः। रोमांचव्यक्तहर्षास्ते यथास्थानं समासते ॥१७७॥ अभ्यके विकसद्भाति कमलाकरमंडलं । यथा तथा जिनाभ्यके तद्रुणांबुजमंडलं ॥१७८॥ सा सेना सर्वतः सर्वो प्रविशंती तदास्पदं । नाल पूरियतुं पूर्णी नदीव वरुणास्पदं ॥१७९॥ निर्यदायद्विशत्पश्यत्परीयत्त्रीणदानमत् । स्तुवदीशं सतां वृंदं सततं तत्र वर्तते ॥१८०॥ न मोहो न भयद्वेषौ नोत्कंठारतिमत्सराः । अस्यां भद्रप्रभावेन जंभाजृंभा न संसदि ॥१८१॥ निद्रातंद्रापरिक्लेशशुत्विपासासुखानि न । नास्त्यभ्यचीशिवं सर्वमहरेव च सर्वदा ॥१८२॥ समवसरणभूमौ वाह्यभूत्येकभूमौ स्थितवति मुनिनाथेऽत्रांतरंगादिप्तौ ।

पिबति तृषितनेत्रैद्वीदशानां गणानां समितिरमृतरूपं जैनस्पांबुराशिं ॥१८३॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ समवसरणवर्णनो नाम सप्तपंचाशः सर्गः।

अष्टपंचाद्याः सर्गः ।

एवं नित्योत्सवानंतकस्याणेकास्पदे पदे । लोके धर्म प्रशुश्रुषौ कृतांजलिपुटे स्थिते ॥१॥ बदतां वरमानम्य वरदत्तो गणाग्रणीः । हितं पप्रच्छ भव्यानां समस्तानां जिनेश्वरं ॥२॥ तत्मश्रानंतरं धातुश्रतुष्ठीखिनिर्गते । चतुर्प्रखफला सार्था चतुर्वणीश्रमाश्रयाः ॥३॥ चतुरस्नानुयोगानां चतुर्णामेकमात्का । चतुर्विधकथावृत्तिश्रतुर्गतिनिवारिणी ॥४॥ एकद्वित्रिचतुःपंचषद्सप्ताष्टनवास्पदाः । अपयोगापि सत्तेवानंतपर्यायभाविनी ॥५॥ अहितं शातयंती सा रोचयंती हितं सदा । स्थापयंती च तत्पात्रे धारयंती यथायथं ।।६।। वारयंत्यशुभादाशु पूरयंती शुभं परं । श्रथयंत्यर्जितं कर्म ग्लपयंती प्रभावतः ।।७।। समंततः शिवस्थानाद्योजनाधिकमंडले । अत्रैवात्रैव वृत्तेति तत्र तत्रास्ति तादशं ॥८॥ मधुरस्निग्धगंभीरादिव्योदात्तरफुटाक्षरं । वर्ततेनन्यव्रशैका तत्र साध्वी सरस्वती ॥९॥ भावाभावद्वयाद्वेते भावबद्धा जगत्स्थितः। अहेतुर्दःयते तस्यामनाद्या पारिणामिकी ॥१०॥ अस्त्यात्मा परलोकोऽस्ति धर्माधर्मी स्त एव च। तयोःकर्तास्ति भोक्तास्ति चास्ति नास्तीति यत्पदं स्वयं कर्म करोत्यातमा स्वयं तत्फलमञ्जूते । स्वयं आम्यति संसारे स्वयं तस्माद्विग्रच्यते ॥१२॥ अविद्यारागसंक्लिष्टो बंभ्रमीति भवार्णवे । विद्यावैराग्यशुद्धः सन् सिद्धचत्यविकलस्थितिः ॥१३॥ इत्याध्यात्मविशेषस्य दीपिका दीपिकेव सा । रूपादेः शमयत्याशु तमिश्रं तत्र संततं ॥१४॥ अनानात्मापि तद्वतं नानापात्रगुणाश्रयं । सभायां दृश्यते नाना दिव्यमंबु यथावनौ ॥१५॥ सावधानसभांतस्थं ध्वांतं सावरणं ध्वनिः। जिनोत्यकोभिनद्दिच्यो विश्वातमेत्यादिभास्वनः॥१६॥ भवपद्धतिपांथस्य भव्यतागुद्धियोगिनः । देहिनः पुरुषार्थोत्र प्रेक्षितो मोक्षलक्षणः ॥१७॥ उपायस्तस्य मोक्षस्य ध्यानाध्यानैकहेतुनः । प्राक्सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रितयात्मकः ॥१८॥ सम्यग्दर्शनमत्रेष्टं तत्त्वश्रद्धानमुज्वलं । व्यपोढसंश्याद्यंतनिक्शेषमलसंकरं ॥१९॥ तच दर्शनमोहांधक्षयोपश्चमिश्रजं । क्षायिकत्वं त्रिधा द्वेधा निसर्गाधिगमत्वतः ॥२०॥ जीवाजीवाश्रवाः बंधसंवरौ निर्जरा तथा । मोक्षश्र सप्ततस्वानि श्रद्धेयानि स्वलक्षणैः ॥२१॥ जीवस्य लक्षणं लक्ष्यमुपयोगोऽष्टधा स च । मतिश्रुतावधिज्ञानतद्विपर्ययपूर्वकः ॥२२॥ इच्छा द्वेषः प्रयत्नश्च सुखं दुःखं चिदात्मकं । आत्मनो लिंगमेतेन लिंग्यते चेतनो यतः ॥२३॥ न पृथिच्यादिभूतानां जीवः संस्थानमात्रकः। तदवस्थास्य कामस्य चैतन्यव्यभिचारिणः॥२४॥ पिष्टिकिण्वोदकार्येषु मद्यांगेषु पृथाभवेत् । शक्तेः लेशो मदं कर्ता कायांगेषु तु नास्तिशः ॥२५॥

अष्टपंचाद्याः सर्गः ।

चैतन्योत्पन्यभिव्यक्ती चतुर्भृतेभ्य इच्छतां।तैलस्य सिकतादिभ्यो व्यक्त्युत्पत्ती न किं मते ॥२६॥ अनादिनिधनो जंतुरेति गत्यंतरादिह । याति गत्यंतरं भ्रांतो निजकर्मवशो भवेत ॥२७॥ एतावानेव पुरुषो यावान्त्रत्यक्षगोचरः । इत्यादिरपसंवादः खपराहितवादिनां ॥२८॥ न संचिद्यात्रमात्मा स्थात्संवित्तौ क्षणिकात्मनि । अनुसंधानधीलोपे व्यवहारविलोपतः ॥२९॥ सत्यभूतः स्वयं जीवो ज्ञाता दृष्टास्ति कारकः । भोक्ता मोक्ता व्ययोत्पादश्रौव्यवान् गुणवान् सदा ३० असंख्यातप्रदेशात्मा ससंहारविसर्पणः । स्वशरीरप्रमाणस्तु मुक्तवणीदिविंशतिः ॥३१॥ क्यामाककणमात्रो न न चाकाशाणुमात्रकः । नांगुष्ठपर्वमात्रो वा न पंचाशतयोजनः ॥३२॥ देहे देहे सन्तित्वे प्रदेशेः सकलैः सह । न स्वार्थे प्रतिपद्येत स्पर्शनं चक्षुरादिवत ॥३३॥ परिमाणमहत्वेऽपि योजनेषु बहुष्वपि । स्पर्शनं न समं तस्या चक्षुषेवार्थदर्शनः ॥३४॥ तथा सति विरोधः स्याद्दष्टेष्टाभ्यां पुमानयं । देहमात्रोऽधिगंतव्यः सर्वस्यानुभवात्तथा ॥३५॥ स गतींद्रियषद्काययोगवेदकषायतः । ज्ञानसंयमसम्यक्तवलेभ्यादर्भनसंज्ञिभिः ॥३६॥ मन्यत्वाहारपर्यंतमार्गणाभिः स मृग्यते । चतुर्दशभिराख्यातगुणस्थानैश्च चेतनः ॥३७॥ प्रमाणनयनिश्चेपसत्संख्यादिकमादिभिः । संसारी प्रतिपत्तच्यो मुक्तोऽपि निजसद्गुणैः ॥३८॥

नयोऽनेकात्मनि द्रच्ये नियतैकात्मसंग्रहः । द्रच्यार्थिको यथार्थोऽन्यः पर्यायार्थिक एव च ॥३९॥ ब्रेयौ मूलनयावेतावन्योन्यापेक्षिणौ मतौ । सम्यग्दष्टास्त्योर्भेदाः संगता नैगमाद्यः ॥४०॥ नैगमः संग्रहश्रात्र व्यवहारर्जुसूत्रकौ । जब्दः समभिरूढारूय एवंभूतश्र ते नयाः ॥४१॥ त्रयो द्रव्याधिकस्याद्या भेदाः सामान्यगोचराः। स्युः पर्यायाधिकस्यान्ये विशेषविषया नयाः ४२ अर्थसंकल्पमात्रस्य ग्राहको नैगमो नयः । उदाहरणमस्येष्टं प्रस्थौदनपुरस्सरं ॥४३॥ आक्रांतभेदपर्यायमेकध्यप्रवनीय यत् । समस्तग्रहणं तत्स्यात्सद्रव्यमिति संग्रहः ॥४४॥ संग्रहाश्विप्तसत्तादेरवहारा विशेषतः । व्यवहारा यतः सत्तां नमत्यंतविशेषतां ॥४५॥ वकं भूतं भविष्यंतं त्यक्तर्जुसूत्रपाठवत् । वर्तमानार्थपर्यायं सूत्रयन्तृतुसूत्रकः ॥४६॥ लिंगसाधनसंख्यानकालोपग्रहसंकरं । यथार्थशब्दनाच्छब्दो न वृष्टिध्वनितंत्रकः ॥४७॥ शब्दभेदे ऽर्थभेदार्थी व्यक्तपर्यायशब्दकः । नयः समभिऋढोर्थो नानासमभिरोहणात् ॥४८॥ यदेंदति तदैवेंद्रो नान्यदेति कियाक्षणे । वाचकं मन्यते त्वेवेंवंभूतो यथार्थवाक् ॥४९॥ द्रव्यस्यानंतर्शक्तित्वात्प्रतिशक्तिभिदा श्रिताः । उत्तरोत्तग्मूक्ष्मार्थगोचराः सप्त सन्नयाः ॥५०॥ अर्थशब्दप्रधानत्त्राच्छब्दांता पंचधा नयाः । संग्रहादितया पोढा प्रत्येकं स्युः शतानि ते ॥५१॥

यावंतोऽपि वचोमार्गास्तावंतो यद्मयास्ततः । इयंत इति संख्यानं नयानां नास्ति तत्त्वतः ॥५२॥ धर्माधर्मी तथाकाशं पुद्रलः काल एव च । पंचाप्यजीवतस्वानि सम्यग्दर्शनगोचराः ॥५३॥ गतिस्थित्योर्निमित्तं तौ धर्माधर्मौ यथाक्रमं । नभोवगाहहेतुस्तु जोवाजीवद्वयोस्सदा ॥५४॥ पूरणं गलनं कुर्वन् पुद्रलोनेकधर्मकः । सोऽणुसंघाततः स्कंधः स्कंधमेदादणुः पुनः ॥५५॥ वर्तनालक्षणो लक्ष्यः समयादिरनेकधा । कालः कलनधर्मेण सपरत्वापरत्वकः ॥५६॥ कायवाङ्मनसां कर्म योगः स पुनरास्त्रवः । शुभः पुण्यस्य गण्यस्य पापस्याशुभलक्षणः ॥५७॥ सकषायाकषाया द्वी स्वामिनावास्त्रवस्य सः । मिध्यादृष्ट्यादिकाद्यस्य सांपरायिककर्मणः ॥५८॥ उपशांतकषायादेरकषायस्य योगिनः । आस्रवः स्वामिनींऽत्यस्य स्यादीयीपथकर्मणः ॥५९॥ इंद्रियाणि कषायाश्र हिंसादीन्यव्रतान्यपि । सांपरायिककर्मद्वाः स्यात्क्रियापंचिवंशतिः ॥६०॥ चैत्यप्रवचनाईत्सदूरुपूजादिलक्षणा । सा सम्यक्तविक्रया ख्याता सम्यक्तवपरिवर्धिनी ॥६१॥ प्रवृत्तिरकृतादन्यदेवतास्तवनादिका । सा मिथ्यात्विक्रया ज्ञेया मिथ्यात्वपरिवर्षिनी ॥६२॥ कायात्रादिसरन्येषां गमनादि प्रवर्तनं । सा प्रयोगक्रिया वेद्या प्रायोऽसंयमवर्धिनी ॥६३॥ आभिमुख्यं प्रति प्रायः संयतस्याप्यसंयमे । समादानिकया प्रोक्ता प्रमादपरिवर्धिनी ॥६४॥

ईर्यापथनिमित्राया सा प्रोक्तेर्यापथिकया। एताः पंचिकियाहेतुरास्रवे सांपरायिके ॥६५॥ क्रोधावेशवशात्प्रादुर्भृता प्रादोषिकी किया। योभ्युद्यमः प्रदुष्टस्य सतस्सा कायिकी किया ॥६६॥ क्रियाधिकारिणीत्युक्ता हिंसोपकरणग्रहात्। दुःखोत्पत्तिः स्वतंत्रत्वात्क्रियान्या पारितापिकी॥६७॥ इंद्रियायुर्वलप्राणवियोगकर्णात्किया। प्राणातिपातिकी नाम्ना पंचैवाध्यात्मिकाः क्रियाः ॥६८॥ रागार्द्वीकृतचित्तत्वातप्रशक्तस्य प्रमादिनः । रम्यरूपावलोकान्याभिप्रायो दर्शनिकया ॥६९॥ सचेतनानुबंधो यः स्प्रष्टच्योऽतिप्रमादिनः । सा दर्शनिक्रया बेया कर्मोपादानकारणं ॥७०॥ उत्पादनादपूर्वस्य पापाधिकरणस्य तु । पापास्रवकरी प्रायः प्रोक्ता प्रत्यायिकी क्रिया ॥७१॥ स्वीपंसपश्चसंपातिदेशैतर्मलमोक्षणं । किया साधुजनायोग्या सा समंतानुपातिनी ॥७२॥ अप्रमुष्टाप्रदृष्टायां निक्षेपों आदिनः क्षितौ । अनाभागिकिया सा तु पंचैता अपि दुष्क्रियाः॥७३॥ वरेणैव तु निर्वत्यी या स्वयं क्रियते क्रिया । सा स्वहस्तिक्रया बोध्या पूर्वोक्तास्रवविधिनि।। ७४।। पापादानादिवृत्तीनामभ्यनुज्ञानमात्मना । स निसर्गक्रिया नाम्ना निसर्गेणास्रवावहा ॥७५॥ पराचरितसावद्यक्रियादेस्तु प्रकाशनं । विदारणिक्रया सान्या धीविदारणकारिणी ॥७६॥ यथोक्तादानसक्तस्य कर्तुमावश्यकादिषु । प्ररूपणान्यथा मोहादाज्ञाच्यापादिकी क्रिया ॥७७॥

सा न्यालस्याद्धि शास्त्रोक्तविधिकर्तन्यतां प्रति। अनादरस्त्वनाकांक्षा-क्रिया पंचिक्रिया इमाः।७८॥ आरंभे कियमाणेन्येः स्वयं हर्षप्रमादिनः । सा प्रारंभिक्रयान्यंतं तात्पी वांछितादिषु ॥७९॥ सा पारिग्राहिणी ज्ञेया परिग्रहपरा किया । मायाकियापि च ज्ञानदर्शनादिषु वंचना ॥८०॥ या मिध्यादर्शनारंभद्दीकरणतत्परा । प्रोत्साहनादिनान्यस्य सा मिध्यादर्शनिकया ॥८१॥ कर्मोदयवशात्पापादनिवृत्तिरिप किया । अप्रत्याख्यानसंज्ञा सा पंचामूरास्रविकयाः ॥८२॥ मंदमध्यातितीत्रत्वात्परिणाभस्य देहिनां । मंदो मध्योतितीत्रः स्यादास्त्रयो हेतुभेदतः ॥८३॥ जीवाधिकरणश्चाप्य जीवाधिकरणोऽपि सः । आस्रवो भिद्यते द्वेधा जीवाधिकरणास्रवाः ॥८४॥ तैः संरंभसभारंभैःसारंभैःस्त्रिकृतादिभिः । त्रियोगेश्व कषायेश्व षट्त्रिशतपृथगास्रवाः ॥८५॥ निर्वर्तना च निक्षेपा जीवाधिकरणास्त्रवाः । सयोगश्च निसर्गश्च द्विचतुर्द्धित्रिभेदिनः ॥८६॥ निर्वर्तनाधिकरणं मूलोत्तरगुणा द्विधा । श्रीरवाङ्मनः प्राणापानादीनां च तौ गुणौ ॥८७॥ सहसादुः प्रमृष्टानाभागसां प्रत्यवेदितौ । भेदैश्वतुर्विधै तिनिश्चेपाधिकरणं पुनः ॥८८॥ मक्तपानीपकरणसंयोगद्वितयात्मना । तद्द्वैविध्यं हि संयोगकारणस्य च कीर्तितं ॥८९॥ यिकसर्गाधिकरणं तत्त्रैविध्यं प्रपद्यते । वाज्यनःकायपूर्वैम्तु निसर्गेस्तत्प्रवर्तनैः ॥९०॥

कर्मास्रवाणां भेदोऽयं सामान्येन निरूपितः। भेदः कर्मविशेषणामास्रवस्य विशिष्यते ॥९१॥ प्रदोषनिद्ववादाने विद्यासादनदूषणाः । ज्ञानस्य दर्शनज्ञानावृत्त्योरास्रवहेतुतः ॥९२॥ दुःखशोकवधाक्रंदतापाः सपरिवेदनाः । असद्वेद्यास्रवद्वाराः स्वपरोभयवर्तिनः ॥९३॥ दया सकलभूतेषु व्रतिष्वत्यनुरागता । सरागसंयमो दानं श्लांतिः शौचं यथोदितं ॥९४॥ अर्हत्पूजादितात्पर्यं बालवृद्धतपिस्वषु । वैष्यावृत्त्यादयो वेद्या सद्वेद्यास्रवहेतवः ॥९५॥ केवलिश्चतसंघेषु धर्मदेवष्ववर्णवाक् । हेतुर्दर्शनमोहस्याप्यास्रवस्य निरूपितः ॥९६॥ उदयाचु कषायाणां परिणामोऽपि तीत्रकः । हेतुश्वारित्रमोहस्य नानाभेदास्रवस्य तु ॥९७॥ तत्र स्वान्यकषायाणामुत्पादेन समुद्धता । कपायवेदनीयस्य हेतुः सद्वृत्तभूषणं ॥९८॥ प्रहासशीलतादि स्याद्धमी प्रहमनादिभिः । सहास्यवेदनीयस्य महास्वर्गनबंधनं ॥९९॥ विचित्रक्रीडनाशक्तिर्वतशीलाद्यरोचनं । रत्याख्यवेदनीयस्य हेतुः स्यादास्रवो महान् ॥१००॥ परारितविधानं च रतेरिप विनाशनं । अरतेर्वेदनीयस्य हेतुर्द्दशीलसेवनं ॥१०१॥ स्वशोकोत्पादनं चान्य शोकवृद्धचिभिनिदनं । कुशोकवेदनीयस्य नित्यमास्रवकारणं ॥१०२॥ भयोत्पादनमन्येषां स्वभयस्य च भावनं । भयाख्यवेदनीयस्य संततो हेतुरास्रवे ॥१०३॥

कुशलाचरणाचारजुगुप्सापरिवादिता । जुगुप्सा वेदनीयस्य हेतुरास्रवगोचरः ॥१०४॥ अतिसंधानपरता परस्यालीकवादिता । प्रवृद्धरागतादिस्त्रीवेदनीयस्य कारणं ॥१०५॥ सानुत्सेकतनुक्रोधस्वदारपरितोषिताः । हेतुः पुंवेदनीयस्य कर्मणः संस्रतौ मतः ॥१०६॥ पाचुर्यं च कषायाणां गुद्धांगव्यपरोपणं । परस्त्रीशक्तिरंतस्य वेदनीयस्य हेतवः ॥१०७॥ नारकस्यायुषो योगो वह्नारंभपरिग्रहैः । तैर्यग्यानस्य माया तु हेतुरास्त्रवणस्य सः ॥१०८॥ मानुषस्यायुषो हेतुरत्पारंभपरिग्रहैः । संतुष्टत्वा त्रतत्वादि मार्दवं च स्वभावतः ॥१०९॥ सम्यक्तवं च व्रतित्वं च बालतापस्ययोगिता । अकामनिर्जरा चास्य दैवस्यास्रवहेतवः ॥११०॥ स्वयोगवकता चान्यविसंवादनयोगिता । हेतुर्नाम्नोऽशुभस्यैव शुभस्यातिसुयोगता ॥१११॥ तथा नामविशेषस्य तीर्थकुत्त्वस्य हेतवः । सद्दर्शनविशुद्धचाद्याः षोडशातिविनिर्मलाः ॥११२॥ सद्गणाच्छादनं निंदा परेषां स्वस्य शंसनं । असद्गुणसमाख्यानं नीचैगीत्रास्त्रवावहाः ॥११३॥ सनीचेर्वृत्त्यनुत्सेकौ हेतुरुक्तविपर्ययः । उच्चेर्गोत्रेतरायस्य दानविद्यादिकर्तृता ॥११४॥ शुभः पुण्यस्य सामान्यादास्रवः प्रतिपादितः । तद्विशेषप्रतीत्यर्थमिदं तु प्रतिपद्यते ॥११५॥ हिंसानृतवचश्रीयीब्रह्मचर्यपरिग्रहात् । विरतिर्देशतोणु स्यात्सर्वतस्तु महद्दृतं ॥११६॥

महाणुव्रतयुक्तानां स्थिरीकरणहेतवः । व्रतानामिह पंचानां प्रत्येकं पंच भावनाः ॥११७॥ स्ववाग्गुप्तिमनोगुप्ती स्वकाले वीक्ष्य भोजनं । द्वे चेर्यादाननिश्चेषसमिती प्राग्वतस्य ताः ॥११८॥ स्वक्रोधलोभभीरुत्वहास्यहानोद्यभाषणाः। द्वितीयस्य व्रतस्यैता भाषिताः पंच भावनाः॥११९॥ शुन्यान्यमोचितागारवासान्यानुपरोधिताः।भैक्ष्यशुद्धचित्रियंवादौ तृतीयस्य व्रतस्य ताः ॥१२०॥ स्त्रीरागकथाश्चत्या रम्यांगेक्षांगसंस्कृतैः । रसपूर्वरतस्मृत्योस्त्यागस्तुर्यत्रतस्य ताः ॥१२१॥ इष्टानिष्टेंद्रियार्थेषु रागद्वेषविम्रुक्तयः । यथास्वं पंच विज्ञेयाः पंचमत्रतभावनाः ॥१२२॥ हिंसादिष्विह चामुष्मित्रपायावद्यदर्शनं । व्रतस्थैर्यार्थमवात्र भावनीयं मनीषिभिः ॥१२३॥ दःखमेवति चामेदादसद्वेद्यादिहेतवः । नित्यं हिंसादयो दोपा भावनीयाः सनीतिभिः ॥१२४॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यं च यथाक्रमं । सत्वे गुणाधिके क्लिष्टे ह्यविनेये च भाष्यते ॥१२५॥ स्वसंवेगादिरागार्थं नित्यं संसारमीरूभिः। जगत्कायस्वभावो च भावनीयौ मनस्विभिः॥१२६॥ इंद्रियाद्या दश प्राणाः प्राणिभ्योत्र प्रमादिना । यथासंभवमेषां हि हिंसा तु व्यपरापणं ॥१२७॥ प्राणिनो दुःखहेतुत्वादधर्माय वियोजनं । प्राणानां तु प्रमत्तस्य, समितस्य न बंधकृत् ॥१२८॥ । स्वयमेवात्मनात्मानं हिनस्त्यात्मा प्रमादवान् । पूर्वं प्राण्यंगहरणात्पश्चातस्याद्वा न वा वधः ॥१२९॥

सदर्थमसदर्थं च प्राणिपीडाकरं वचः । असत्यमनृतं प्रोक्तमृतं प्राणिहितं वचः ॥१३०॥ अदत्तस्य स्वयं ग्राहो वस्तुनश्चीर्यमीर्यते । संक्लेशपरिणामेन प्रवृत्तिर्यत्र तत्र तत् ॥१३१॥ अहिंसादिगुणा यस्मिन् वृंहंति ब्रह्मतत्त्वतः । अब्रह्मान्यस्तु रत्यर्थं स्त्रीपुंसिम्युनेहितं॥१३२॥ श्वगवामणिमुक्तादी चेतनाचेतने धने । वाह्या वाह्ये च रागादी हेये मूच्छीपरिग्रहः ॥१३३॥ तेभ्यो विरतिरूपाण्यऽहिंसादीनि व्रतानि हि। महत्वाणुत्वयुक्तानि यस्य संति व्रती तु सः ॥१३४॥ सत्यपि व्रतसंबंधे निक्शल्यस्तु व्रती यतः । मायानिदानिमध्यात्वं शल्यं शल्यमिव त्रिधा॥१३५॥ सागारश्चानगारश्च द्वाविह त्रतिनौ मतौ । सागारोऽणुत्रतोऽत्र स्यादनगारो महाव्रतः ॥१३६॥ सागारो रागमावस्थो वनस्थोऽपि कथंचन। निवृत्तरागभावो यः सोऽनगारो गृहोषितः ॥१३७॥ त्रसस्थावरकायेषु त्रसकायोऽपरोपणात्-विरतिः प्रथमं प्रोक्तमहिंसाख्यमणुवतं ॥१३८॥ यद्रागद्वेषमोहादेः परपीडाकरादिह । अनुताद्विरतिर्यत्र तद्दितीयमणुत्रतं ॥१३९॥ परद्रव्यस्य नष्टादेर्महतोल्पस्य चापि यत् । अदत्तत्वस्य नादानं तत्तृतीयमणुत्रतं ॥१४०॥ दारेषु परकीयेषु परित्यक्तरतिस्तु यः । स्वदारेश्वेव संतोषस्तचतुर्थमणुव्रतं ॥१४१॥

स्वर्णदासगृहक्षेत्रप्रभृतेः परिमाणतः । वुद्धेच्छापरिमाणाख्यं पंचमं तद्णुव्रतं ॥१४२॥ गुणवतान्यपि त्रीणि पंचाणुवतधारिणः। शिष्या (क्षा)वतानि चत्वारि भवंति गृहिणः सतः १४३ यः प्रसिद्धरभिज्ञानैः कृतावध्यनतिक्रमः । दिग्विदिश्च गुणेष्वाद्यं वेद्यं दिग्विरतिर्वतं ॥१४४॥ ग्रामादीनां प्रदेशस्य परिमाणकृतावधिः । वहिर्गतिनवृत्तिर्या तहेशविरतिर्वतं ॥१४५॥ पापोपदेशोऽपध्यानं प्रमादाचरितं तथा । हिंसाप्रदानमशुभश्चतिश्वापीति पंचधा ॥१४६॥ पापोपदेशहेतुर्योनर्थदंडोपकारकः । अनर्थदंडिवरतिर्वतं तद्विरतिः स्मृतं ॥१४७॥ पापोपदेश आदिष्टो वचनं पापसंयुतं । यद्वणिग्वधकारंभपूर्वसावद्यकर्मेसु ॥१४८॥ अपघ्यानं जयः स्वस्य यः परस्य पराजयः । वधवंधार्थहरणं कथं स्यादिति चिंतनं ॥१४९॥ बुक्षादिच्छेदनं भूमिक्कट्टनं जलसेचनं । इत्याद्यनर्थकं कर्म प्रमादाचरितं तथा ॥१५०॥ विषकंटकशस्त्राधिरज्जुदंडकषादिनः । दानं हिंसाप्रदानं हि हिंसोपकरणस्य वै ॥१५१॥ हिसारागादिसंवर्धिदुःकथाश्रुतिशिक्षया । पापबंधनिबंधो यः सः स्यात्पापाश्चभश्रुतिः ॥१५२॥ माध्यस्थ्यैकत्वगमनं देवतास्मरणस्थितिः । सुखदुःखारिमित्रादौ बोध्यं सामायिकं व्रतं ॥१५३॥

१ बुद्धीच्छा, बुद्धीस्था इत्यपि पाठौ ।

चतुराहारहानं यन्त्रिरारंभस्य पर्वसु । स प्रौषधोपवासोऽक्षाण्युपेत्यास्मिन्वसंति यतु ॥१५४॥ गंधमाल्यान्नपानादिरुपभोग उपेत्य यः। भोगोऽन्यः परिभोगो यः परित्यज्यासनादिकः॥१५५॥ परिमाणं तयोर्यत्र यथाशक्ति यथायथं । उपभोगपरीभोगपरिमाणव्रतं हि तत् ॥१५६॥ मांसमद्यमधुद्युतवेदयास्त्रीनक्तभुक्तितः । विरतिर्नियमा ब्रेयोऽनंतकायादिवर्जनं ॥१५७॥ स संयमस्य वृद्धचर्थमततीत्यतिथिः स्मृतः । प्रदानं संविभागोऽस्मै यथाशुद्धिर्यथोदितं ॥१५८॥ भिक्षौषधोपकरणप्रतिश्रयविभेदतः । संविभागो तिथिभ्यस्तु चतुर्विध उदाहृतः ॥१५९॥ सम्यक्कायकषायाणां वहिरंतर्हि लेखना । सक्लेखनापि कर्तव्या कारणे मारणांतिकी ॥१६०॥ रागादीनां सम्रत्पत्तावागमोदितवरर्मना । अशक्यपरिहारे हि स्रांते सस्नेखना मता ॥१६१॥ अष्टौ निक्शंकतादीनामष्टानां प्रतियोगिनः। सम्यग्दष्टेरतीचारास्त्याज्याः शंकाद्यः सतां॥१६२॥ पंच पंच त्वतीचारा व्रतशीलेषु भाषिताः । यथाक्रमममी वेद्याः परिहायीश्र तद्वतैः ॥१६३॥ गतिरोधकरो बंधो वधो दंडातितारणा । कर्णाद्यपनयच्छेदोप्यतिभारातिरोपणं ॥१६४॥ अञ्चपाननिरोधस्तु धुद्वाधाधिकरोंगिनां । अहिंसाणुत्रतस्योक्ता अतिचारास्तु पंच ते ॥१६५॥ अतिसंघापनं मिध्योपदेश इह चान्यथा । यदभ्युदयमोक्षार्थिकियास्वन्यप्रवर्तनं ।।१६६।।

रहोभ्याख्यानमेकांतस्त्रीपुंसेहाप्रकाशनं । कूटलेखिकयान्येन त्वनुक्तस्य स्वलेखनं ॥१६७॥ विस्पृतन्यस्तसंख्यस्य स्वल्पं स्वं संप्रगृह्णतः। न्यासापहार एतावदित्यनुज्ञापकं वचः ॥१६८॥ साकारमंत्रभेदोसौ भ्रुविक्षेपादिकेंगितैः । पराकृतस्य बुद्धाविर्भावनं यदस्यया ॥१६९॥ यत्सत्याणुत्रतस्यामी पंचातीचारकाश्चिरं । परिहार्याः समर्यादैर्विचार्याचार्यवेदिभिः ॥१७०॥ त्रेधस्तेन प्रयोगस्तैराहृतादानमात्मनः । अन्यो विरुद्धराज्यातिक्रमश्राक्रमकिकये ॥१७१॥ हीनेन दानिमत्येषामधिकेनात्मनो ग्रहः । प्रस्थादिमानभेदेन तुलाद्यन्मानवस्तुनः ॥१७२॥ रूपकैः कृत्रिमैः स्वणैर्वचनः प्रतिरूपकः । व्यवहारस्त्वीचारास्तृतीयाणुत्रतस्य ते ॥१७३॥ परविवाहाकरणमनंगक्रीडया गती । गृहीतागृहीतेत्वर्यो कामतीवाभिवेशनं ॥१७४॥ एते स्वदारसंतोषत्रतस्याणुत्रतात्मनः । अतीचाराः स्मृताः पंच परिहार्या प्रयत्नतः ॥१७५॥ हिरण्यस्वर्णयोवीस्तु क्षेत्रयोधनधान्ययोः । दासीदासाद्ययोः पंच कूप्यस्यैते व्यतिक्रमाः ॥१७६॥ दिग्विरत्यभिचारोधिस्तर्यगुर्धव्यतिक्रमाः । लोभात्स्मृत्यंतराधानं क्षेत्रवृद्धिश्च पंचधा ॥१७७॥ प्रेष्ये प्रयोगानयनपुद्रलक्षेपलक्षणाः । शब्दरूपानुपातौ द्वौ तदेशविरतिर्वते ॥१७८॥ पंच कंदर्पकौत्कुच्यमौखर्याणि तृतीयके । असमीक्ष्याधिकरणोपभोगादिनिरर्थने ॥१७९॥

योगनिःप्रणिधानानि त्रीण्यनाद्रता च ते। पंच स्मृत्यनुपस्थानं स्युः सामायिकगोचराः॥१८०॥ अनवेक्ष्यमलोत्सर्गादानसंस्तरसंक्रमाः । स्युः प्रोषधोपवासस्य तेनैकाण्यमनादरः ॥१८१॥ सचित्ताहारसंबंधसन्मिश्राभिषवास्तु ते । उपभागपरीभोगे दुष्पकाहार एव च ॥१८२॥ ते सचित्तेन निक्षेपः सचित्तावरणं परं । च्यपदेशश्च मात्सर्यं कालातिक्रमतातिथौ ॥१८३॥ आशंसे जीविते मृत्यौ निदानं दीनचेतसः । सुखानुबंधमित्रानुरागौ सहेखनामलाः ॥१८४॥ सम्यज्ञानादिवृद्धचादिस्वपरानुग्रहेच्छया।दानं त्यागो निसर्गाख्यः प्राप्तुकं स्वस्य पात्रगं।१८५। विधिदेयिवशेषाभ्यां दातृपात्रविशेषतः । भेदः फलस्य भूम्यादेर्भेदात्सस्यार्द्धेभेदवत् ॥१८६॥ प्रतिग्रहादिषु प्रायः सादरानादरत्वतः । दानकाले विधौ मेदः फलमेदस्य कारकः ॥१८७॥ तपः स्वाध्यायवृद्धचादेर्देयभेदोऽपि हेतुता । एकं हि साम्यकृदेयं ततो वैषम्यकृत्परं ॥१८८॥ अनुसूयाविषादादिरस्यादिपरस्त्वयं । दायकस्य विशेषोऽपि विचित्रा हि मनोगतिः ॥१८९॥ मोक्षकारणभृतानां दानानां धारणे सतां । तारतम्यं मनःशुद्धेविशेषः पात्रगोचरः ॥१९०॥ पुण्यास्त्रवः सुखानां हि हेतुरभ्युदयावहः । हेतुः संसारदुःखानामपुण्यास्त्रव इष्यते ॥१९१॥

१ अप्रवेक्ष्य इति ख पुस्तके ।

मिध्यादर्शनमात्मस्थं हिंसाद्यविरतिस्तथा । प्रमादश्च कषायश्च योगो बंधस्य हेतवः ॥१९२॥ तिनमध्यादर्शनं द्वेधा निसर्गान्योपदेशतः । मिथ्याकर्मोदयादाद्यं तत्त्वाश्रद्धानलक्षणं ॥१९३॥ परोपदेशपूर्वे त चतुर्धा मतभेदतः । क्रियावाद्यक्रियावादिविनयाज्ञानिकत्वतः ॥१९४॥ एकांतविपरीतत्विवनयाज्ञानसंश्यैः । निमित्तौः पंचधा चापि मिध्यादर्शनमिष्यते ॥१९५॥ द्विषोढा विरतिर्ज्ञेया प्रमादोनेकथा स्थितः । नवभिनेकिषायैस्त कषायाः पंचविंशतिः ॥१९६॥ चत्वारः स्युर्मनोयोगा वाग्योगाश्च तथैव ते । काययोगास्तु पंचापि मनोयोगास्त्रयोदश । १९७॥ समस्तव्यस्तस्त्रपास्तु पंचैते बंधहेतवः । मिध्यादृष्टेहिं पंचोध्वं चत्वारस्त्रिषु पश्चिमाः ॥१९८॥ विरत्याविरतिर्मिश्रा प्रमादाद्यास्त्रयः परे । संयतासंयतस्योक्ताः कर्मबंधस्य हेतवः ॥१९९॥ प्रमत्तसंयतस्यापि योगांतास्त्रय एव ते । तत ऊर्ध्वं चतुर्णां तु कषायायोगसंगताः ॥२००॥ शांतश्वीणकषायौ तौ सयोगकेवली तथा । बंधकायोगतन्मात्रादयोगो नैव बंधकः ॥२०१॥ कषायकलुषो ह्यात्मा कर्मणो योग्यपुद्रलान् । प्रतिक्षणमुपादत्ते स बंधो नैकधा मतः ॥२०२॥ प्रकृतिश्र स्थितिश्रापि स बंधोनुभवस्ततः । प्रदेशबंधभेदेन चातुर्विध्यं प्रपद्यते ॥२०३॥ प्रकृतिःस्यात्स्वभावोऽत्र निंबादेस्तिक्ततादिवत्। कर्मणामिह सर्वेषां यथास्वं नियता स्थिता २०४

अज्ञानं प्रकृतिर्ज्ञेया ज्ञानावरणकर्मणः । दृश्यार्थादर्शनं दृश्या दर्शनावरणस्य सा ॥२०५॥ सदसह्रक्षणस्यापि वेदनीयस्य कर्मणः । संवेदनं विदां वेद्यं प्रकृतिःसुखदुःखयोः ॥२०६॥ दृष्टा दर्शनमोहस्य तत्त्वाश्रद्धानमेव सा । तथा चारित्रमोहस्य महतोऽसंयमः सदा । १००॥ प्रकृतिः प्रतिपन्ना तु भवधारणमायुषः । देवनारकनामादिकरणं नामकर्मणः ॥२०८॥ गोत्रस्योचैश्र नीचेश्र स्थानसंशब्दनं तथा । अंतरायस्य दानादिविघ्नानां करणं घनं।।२०९॥ तदेवं लक्षणं कार्यं यत्तरप्रक्रियते ततः । प्रकृतिस्तत्स्वभावस्य तथैवाप्रच्युतिः स्थितिः ॥२१०॥ यथाजागोमहिष्यादिक्षीराणां स्वस्वभावतः। माधुर्यादच्युतिस्तद्वत्कर्मणां प्रकृतिस्थितिः ॥२११॥ तीव्रमंदादिभावेन क्षीरे रसविशेषवत् । कर्मपुद्गलसामध्यविशेषोऽनुभवो मतः ॥२१२॥ कर्मत्वपरिणत्यात्मपुद्रलस्कंधसंहतेः । प्रदेशः परमाण्यात्मपरिच्छेदावधारणा ॥२१३॥ त्रकृतेः सप्रदेशाया नित्यं योगनिमित्तता। स्थितेः सानुभवायास्तु स्यात्कषायनिमित्तता।।२१४॥ अनेनात्रियते ज्ञानमावृणोतीति वा स्वयं । ज्ञानावरणमाख्यातं द्र्शनावरणं तथा ॥२१५॥ वेद्यते वेदयत्येवं वेदनीयमनेन वा । मोह्यते मोह्यत्येवं मोहनीयमपीरितं ॥२१६॥ नारकादिभवानेति त्वनेनेत्यायुरित्यपि । नम्यते अनेन वात्मानं नमयत्यपि नाम तत् ॥२१७॥

गृयते शब्द्यते गोत्रमुचैर्नीचेश्र यत्नतः । अंतरोयींतरं मध्यं देयादेरेति यत्नतः ॥२१८॥ एकात्मपरिणामेन गृह्यमाणा हि पुद्रलाः । नानाकर्मत्वमायांति प्रभुक्ताव्यसादिवत ॥२१९॥ मूलप्रकृति भेदोयम् हमेदः प्रभावितः । उत्तरप्रकृतीनां तु भेदोऽतःपरमुच्यते ॥२२०॥ पंचधा ज्ञानावरणं नवधा दर्शनावृतिः । द्विधानुवेदनीयं स्यान्मोहोष्टाविंशतिः स्थितिः ॥२२१॥ आयुश्रुत्विधं नाम द्विचत्वारिंशदीरितं । द्विविधं गोत्रमुद्गीतमंतरायस्तु पंचधा ॥२२२॥ मतिश्रुताविधज्ञानमनःपर्ययकेवलेः । आदृत्येरावृतीः पंच ह्युत्तरप्रकृतीर्विदुः ॥२२३॥ द्रव्यार्थादेशतः शक्तिर्मनःपर्ययकेवली । अभेव्योप्यस्ति यत्तरस्थं ज्ञानावरणपंचकं ॥२२४॥ व्यक्तियोग्यत्वसञ्जावापेक्षा भव्यस्य भव्यता । कैवल्यव्यक्तययोग्यत्वादभव्यस्य ह्यभव्यता ।२२५॥ चक्षुषोऽचक्षुषो दृष्टेरवधेः केवलस्य च । चत्वार्यावरणान्येवं निद्राद्यैः पंचिमिर्नव ॥२२६॥ मदखेदविनोदार्थः स्वापो निद्राधिकत्वतः । उपर्युपरि तद्वृत्तिर्निद्रानिद्राभिधीयते ॥२२७॥ श्रमादिप्रभवात्मानं प्रचलाप्रचलयत्यलं । सा पुनः पुनरावृत्ताः प्रचलाप्रचलाभिधा ॥२२८॥ स्त्यानगृद्धिर्ययास्त्याने स्वप्ने गृध्यति दीप्यते । आत्मा यदुदयाद्रौद्रं बहुकर्म करोति सा ॥२२९॥

१ अभव्ये ऽप्यास्त इति क पुस्तके।

शारीरं मानसं सौख्यं दुःखं चोदयते ययोः।स्यातां ते वेदनीये स्तः सातासाते यथाक्रमं॥२३०॥ सम्यक्तवं चापि मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वामित्यदः। दृश्यं दर्शनमोहस्य ह्युत्तरं प्रकृतित्रिकं ॥२३१॥ शुभात्मपरिणामेन निरुद्धस्वरसे स्थित । मिथ्यात्वे श्रद्दधानस्य सम्यक्त्वप्रकृतिभवेतु ॥२३२॥ मिथ्यात्वे त्वर्धसंशुद्धे कोद्रवे मदशक्तिवत्। शुद्धाशुद्धात्मको भावः सम्यग्मिथ्यात्वमुच्यते॥२३३॥ द्वेधा चारित्रमोहस्तु नोकपायकपायतः । नवधा नोकषायोत्र कषायाः षोडशोदिताः ॥२३४॥ उदयाद्यस्य हासाविर्भावो हास्यं तदुत्सुकः । यस्यादयाद्रतिः सा स्यादरातिस्तद्विपर्ययः॥२३५॥ शोचनं यद्विपाकात्स शोक उद्वेगकृद्धयं । स्वदोषगोपनं यस्य जुगुप्सा सा जुगुप्सिता॥२३६॥ भावांस्त्रणान्यतो याति स स्रीवेदोऽतिगर्हितः । पुत्रपुंसकवेदौ स्तः पौंस्रात्रपुंसकान् यतः ॥२३७॥ कषायाः कोधमानौ च मायालोभौ च घातकाः। सम्यक्तवस्य सबूत्तस्य तत्रानंतानुबंधिनः॥२३८॥ यदीयोदयतो ह्यात्मा प्रत्याख्यातुं न शक्नुयात्। हिंसादीत्युदयास्ते स्युरप्रत्याख्यानसंज्ञकाः २३९ यदीयोदयतो वृत्तं यथाख्यातं न जायते। ज्वलंतः संयमेनामा ख्याताः संज्वलनास्तु ते ॥२४१॥ यदीयोदयतो जीवः संयमं न प्रपद्यते । ते कोधमानमायाद्याः प्रत्याख्यानविनिःश्रुताः ॥२४०॥

१ हिंसादीन्युदयाः इति क पुस्तके।

नारकं नरकोद्भतं तैर्थग्योनं च मानुषं । दैवं चायुर्भवेत्तेषु चतुर्विधमितीरितं ॥२४२॥ यदीयोदयतो जंतर्भवांतरमियर्ति सा । गतिश्रतुर्विधादेव नरकादिविभेदतः ॥२४३॥ आत्मनो नरकादित्वं यित्रमित्तं प्रजायते । तत्स्यात्ररकगत्यादि गतिनाम चतुर्विधं ॥२४४॥ गतिष्वेकीगतार्थो सा साम्येनाभ्यभिचारिणा। जातिस्तस्या निमित्तं तु जातिनामात्र पंचधा २४५ एकेंद्रियादिकां जातिमुद्याद्यस्य जंतवः । प्रयांत्येकेंद्रियाद्ये तज्जातिनामाभिधीयते ॥२४६॥ शरीरपंचकस्यास्य निवृत्तिर्यस्य चादयात् । औदारिकशरीरादि नाम पंचविधं तु तत् ॥२४७॥ अंगोपांगविवेकःस्याच्छरीराणां यतस्तु तत् । त्रिधांगेषांगनामाख्यमौदारिकपुरस्सरं ॥२४८॥ चक्षुरादींद्रियस्थानप्रमाणे यदपेक्षया । यो निर्मापयतस्ते स्तो नाम्ना निर्माणनामनी ॥२४९॥ कर्मोदयवशोपात्तपुद्गलान्यांच्यवंधनं । शरीरेषूद्याद्यस्य भवेदंधननाम तत् ॥२५०॥ यस्योदयाच्छरीराणां नीरंश्रान्यांन्यसंहतिः। संघातनाम तन्नाम्ना संघाना नाम सत्त्रया ॥२५१॥ शरीराकृतिनिवृत्तिर्यतो भवति देहिनां । संस्थाननाम तत् षोढा संस्थानकरणार्थतः ॥२५२॥ समादिचतुरस्रोतो न्यग्रोधपरिमंडलं। सातिसंस्थाननामापि कुब्जवामनहुंडकं ॥२५३॥

१ सत्त्वयात् इति क पुस्तके, सत्वया इति स पुस्तके पाठी परन्तु नतौ सुष्ठू प्रतिभातः ।

<u>अष्टर्पचादाः सर्गः ।</u>

यतो भवति सुश्लिष्टमस्थिसंधानबंधनं । तत्संहरनामापि नाम्ना षोढा विभज्यते ॥२५४॥ तद्वज्रर्षभनाराचवज्रनाराचकीलकाः । सनाराचार्धनाराचा ससंप्राप्तमृपाटिकाः ॥२५५॥ स्पर्शनस्योदयाद्यस्य प्रादुर्भावेन भूयते । स्पर्शनाम भवत्येतत्प्रविभक्तमिवाष्ट्रधा ॥२५६॥ च्यातं कर्कशनामैकं मृद्नाम तथापरं। गुरुनाम लगुस्त्रिग्धस्क्षशीतोष्णनाम च ॥२५७॥ यद्वेतुरसभेदः स्याद्रसनाम तदीरितं । कट्टातिक्तकषायाम्लमधुरध्वनिनाम तत् ॥२५८॥ यस्योदयाद्भवेदंघो गंधनाम तदुच्यते । द्विविधं तत्तु बोद्धव्यं सुरभ्यसुरभीति च ॥२५९॥ यद्वेत्वर्णभेदस्तद्वर्णनामाख्यपंचधा । कृष्णनीलत्वरक्तत्वपीतशुक्लत्वयोगतः ॥२६०॥ उद्याद्यस्य पूर्वात्मशरीराकृतिसंक्षयः । चतुर्गत्यानुपूर्व्यं तत्तथागुरुलघृदितं ॥२६१॥ यस्योदयादयावनु गुहत्वात्र पतत्यधः । न गच्छति पुमानूध्वै लघुत्वादर्कतूलवत् ॥२६२॥ स्त्रकृतो बंधनाद्यैःस्यादुपघातो यतस्तु तत् । उपघातं समुद्दिष्टं परघातं पराद्वधः ॥२६३॥ यदीयोदयनिर्वृत्तं भवत्यापतनं महत् । आदित्यवद्वर्तमानं मतं सातपनाम तत् ॥२६४॥ थद्धेतुर्धोतनं देहे वेद्यमुद्योतनाम तत् । चंद्रखद्योतकाद्येषु वर्तमानं यदीक्षते ॥२६५॥

उच्छासकारणं यतु मतग्रुच्छासनाम तत् । विहायोगतिराकाशे शस्ताशस्तगतिप्रभुः ॥२६६॥ तत्प्रत्येकशरीराख्यं नाम त्वेत्र शरीरकं । सदैवातमोपभोगस्य हेतुर्निर्वर्तते यतः ॥२६७॥ साधारणमनेकेषामेकं यस्माच्छरीरकं । साधारणशरीराख्यं नाम तद्भोगकारणं ॥२६८॥ उद्याद्यस्य जीवानां द्वींद्रियादिषु जनम यत्। त्रसनाम विपर्यत्वं स्थावराख्यं तु नाम तत्।।२६९॥ सर्वे प्रीतिकरो यस्मात्प्राणी सुभगनाम तत् । यतोऽप्रीतिकरोन्येषां नाम्ना दुर्भग नाम तत्। २७०॥ मनोज्ञस्वरनिर्वृत्तिर्यतः सुस्वरनाम तत्। अनिष्टस्वरहेतुर्यत्प्रोक्तं दुःस्वरनामं तत्।।२७१।। यतस्तु रमणीयत्वं शुभनाम तदीरितं । अतिवैरूप्यहेतुश्च नामाशुभमशोभनं ॥२७२॥ यत्र सूक्ष्मशारीरस्य कारणं सूक्ष्म नाम तत्। परवाधाकृतो हेतुः शरीरस्य तु वादरः ॥२७३॥ यदाहारादिपर्याप्तिभेदनिवृत्तिकारणं । पर्याप्तिनाम तन्नाम्ना पट्टिधमुदितं बुधैः ॥२७४॥ आहारस्य शरीरस्य प्राणापानेंद्रियस्य च । पर्याप्त्यभावहेतुस्तु भाषायां मनसोऽपरं ॥२७५॥ कारणं स्थिरभावस्य स्थिरमस्थिरमन्यथा । नामादेयमनादेयं सप्रभाप्रभदेहकृत् ॥२७६॥ हेतुः पुण्यगुणाख्यातेः यद्याःकीर्तिरितीर्यते । अयदाःकीर्तिनामापि तद्विपयासकारणं ॥२७७॥ हेतुस्तीर्थकरत्वस्य सतीर्थकरनाम तत्। नाम्नः प्रकृतिभेदास्त्रिनवतिस्तूचरोत्तराः ॥२७८॥

गोत्रपुचैश्व नीचैश्व तत्र यस्योदयात्कुले । पूजिते जन्म तदुचैनीचैनीचकुलेषु तत् ॥२७९॥ दीयते दातुकामैर्न लब्धुकामैर्न लभ्यते । यद्दयात्प्रणीतौ तौ दानलाभांतरायकौ ॥२८०॥ भोक्तंकामोपि नोभुंक्ते नोपभुक्ते तथेच्छुकः । यदेतावंतरायौ तौ ज्ञेयौ भोगोपभोगयाः ॥२८१॥ तथोत्सहितुकामो यो यतो नोत्सहते स हि । वीर्यातराय एषोऽसौ बंधः प्रकृतिलक्षणः ॥२८२॥ स्थितिबंधविकरपस्तु जघन्योत्कृष्टभेदवान् । अष्टानां कर्मणामेषां द्विविधोऽपि निरूप्यते ॥२८३॥ मानदर्शनसंवृत्योर्वेदनीयांतराययोः । सागरोपमकोटीनां कोट्यस्त्रिशत्परा स्थितिः ॥२८४॥ सप्तिमीहनीयस्य विंशतिनीमगोत्रयोः । संज्ञिपंचेंद्रियस्येयं ज्ञेया पर्याप्तकस्य तु ॥ २८५॥ आयुषस्तु त्रयत्रिक्षत्सागरोपमिका परा । स्थितिः सा वेदनीयस्य ग्रहूर्तो द्वादशावरा ॥२८६॥ साष्ट्रावेव ग्रहती स्याज्जधन्या नामगोत्रयोः । पंचानामपि शेषाणां स्थितिरंतग्रहतिंका ॥२८७॥ कषायतीत्रमंदादिभावास्रवविशेषतः । विशिष्टपाक इष्टस्तु विपाकोनुभवोऽथवा ॥२८८॥ स द्रव्यक्षेत्रकालोक्तभवभावविभेदतः। विविधो हि विपाको यः सोनुभवः सँग्रुच्यते ॥२८९॥ प्रकृष्टोनुभवः पुण्यप्रकृतीनां शुभो यथा । अशुभप्रकृतीनां तु निकृष्टोऽनुभवस्तथा ॥२९०॥

१ योऽनुभवश्च स उच्यते इति स पुस्तके।

अशुभप्रकृतीनां तु परिणामविशेषतः । प्रकृष्टोनुभवोन्यासां निकृष्टोनुभवस्तदा ॥२९१॥ स्वमुखेनानुभूयंते मूलप्रकृतयोऽखिलाः । उत्तरास्तुल्यजातीयाद्द्वयान्मोहायुषी विना ॥२९२॥ कर्मणोऽनुभवासमानापसश्चापि निर्जरा । विपाकजा तु तत्रैका परा चाप्यविपाकजा ॥२९३॥ संसारे भ्रमतो जंतोः प्रारब्धफलकर्मणः । क्रमेणैव निवृत्तिर्या निर्जरासौ विपाकजा ॥२९४॥ यत्तृपायविषाच्यं तदाम्रादिफलपाकवत् । अनुदीर्णमुदीर्योग्च निर्जरा त्वविषाकजा ॥२९५॥ सर्वेश्वात्मप्रदेशेष्वनंतानंतप्रदेशकाः । घनागुलस्यासंख्येयभागे क्षेत्रावगाहिनः ॥२९६॥ एकद्वित्र्यादिसंख्येयसमयास्थितयः सदा । प्रदेशबंधसंतानेष्यासते कर्मपुद्रलाः ॥ २९७ ॥ शुभायुर्नामगोत्राणि सद्देद्यं च चतुर्विधः । पुण्यबंधोन्यकर्माणि पापबंधः प्रपंचितः ॥ २९८ ॥ आस्रवस्य निरोधस्तु संवरः परिभाष्यते । स भावद्रव्यभेदाभ्यां द्वैविध्येन निरुच्यते ॥२९९॥ क्रियाणां भवहेतूनां निष्टत्तिर्भावसंवरः । तत्कर्भपुद्गलादानविच्छेदो द्रव्यसंवरः ॥ ३००॥ त्रिसख्या गुप्तयः पंचसंख्याः समितयस्तथा । दशद्वादशर्थमन्त्रिप्रेक्षाश्वारित्रपंचकं ॥ ३०१ ॥ द्वाविंशतिभिदा भिन्नपरीषहजयोऽपि च । हेतवः संवरस्यैते सप्रपंचाः समन्विताः ॥ ३०२ ॥ बंधहेतोरभावादि निर्जरातश्च कर्मणां। कारस्येन विप्रमोक्षस्तु मोक्षो निर्प्रयह्मपणः॥ ३०३॥

जीवादिसप्ततत्वानामेतेषां झानसंगतं । श्रद्धानं तचरित्रं च साक्षान्मोक्षस्य साधनं ॥ ३०४ ॥ भवेनैकेन मार्गस्थः केचित्सप्ताष्ट्रभिः परे। भुक्तस्वर्गसुखा भव्याः सिध्यंति ध्यानिनः सदा।।३०५॥ इति अत्वा जिनेंद्रोक्तं मोक्षमार्गमनाविलं। प्रणेमुद्रीदश गणाः प्रकृत्यांजलयो विभुं ॥ ३०६॥ ते सम्यग्दर्शनं केचित्संयमाऽसंयमं परे । संयमं केचिदायाताः संसारावासभीरवः ॥ ३०७ ॥ द्वे सहस्रे नरेंद्रास्ते कन्याश्र नृपयोषितः । सहस्राणि बहुन्यापुः संयमं जिनदेशितं ॥ ३०८ ॥ शिवा च रोहिणी देवी देवकी रुक्मिणी तथा। देव्योन्याश्र सुचारित्रं पृहिणां प्रतिपेदिरे ॥३०९॥ यदुभोजकुलप्रष्टा राजानः सुकुमारिकाः । जिनमार्गविदो जाता द्वादशाणुवतस्थिताः ॥३१०॥ कृतपूजाः सुरैरिंद्राः प्रणम्य जिनभास्करं । प्रयाताः स्वास्पदं रामकेशवाद्याश्च यादवाः ॥३११॥ विश्वासा विश्वदाः शरद्विद्धती धौतं पयोदेस्तथा विस्पष्टग्रहतारकाकुसुमितं रम्यं नभोमंडलं। बंधूकाज्वसु सप्तपर्णसुरभिप्रत्यप्रपुष्पांजिं मुंचंती जिनपादयोरुपगता भक्तेव लोकत्रयी ॥३१२॥ दृत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ श्रीनेमिनाथधर्मोपदेशवर्णनो नाम अष्टपंचाशः सर्गः ।

१ ' प्रकृताअलयो ' इति ख पुस्तके ।

एकोनषष्टितमः सर्गः ।

विहाराभिमुखेगीयाज्जिनेंद्रेऽवतरिष्यति स्वर्गायादिव भूलोकं समुद्धर्तु भवोद्धेः ॥१॥ गृह्यतां गृह्यतां काम्यं यथाकाममिहार्थिमिः । इति नित्यं धनेशेन घुष्यते कामघोषणा ॥२॥ कामदा कामवद्भूमिः कल्पते मणिकुद्दिमा । मांगल्यविजयोद्योगे विभोः कि वा न कल्पते ॥३॥ महाभूतानि सर्वाणि कर्तुभूतिहतोद्यमे । सर्वभूतिहतानि स्युस्ताद्यी खुद्ध सार्वता ॥४॥ यावषेण्यांबुधारेव वसुधारा वसुंधरां । दिवान्वर्थाभिधानत्वं नयती न्यप्तत्पथि ॥५॥ प्राङ्गुरुयंति सुराः सद्यः प्रणामचलमोलयः । भासा व्याप्य दिशो मर्तुःप्रभाकारानुगिणः ॥६॥ ये द्वे पूर्वीत्तरे पंक्ती हेमांबुजसहस्रयोः । सहस्रपत्रं ततपूर्वं भ्रवः कंठे गुणाकृतिः ॥७॥ पश्चरागमयं भास्त्रचित्ररत्नाविचित्रितं । प्रवृत्तप्रतिपत्रस्थपद्मभागमनोहरं ॥८॥ सहस्राक्षसहस्राक्षिभुंगावलिनिषेवितं । देवासुरनरालोकमधुपापानमंडलं ॥९॥ पद्मोद्धासि परं पुण्यं पद्मयानं प्रकाशते । सद्यो योजनविष्कंमं तचतुर्भागकाणिकं ॥१०॥ महिमात्रेसरे साष्ट्रमूर्तिस्पष्टगुणश्रियः । वसवोष्टी पुरोधाय वासवं वरिवस्यया ॥११॥

१ पर्वतामात्-गिरनारशिखरतः । २ प्रादुष्याति इति स्व पुस्तके ।

जय प्रसीद मर्तुस्ते वेला लोकहितोद्यमे । जाताद्येत्यानमंतीर्शं स हि विश्वमृजो विघिः ॥१२॥ ततः प्रक्रमते सिंधुरारोढुं पद्मयानकं । तत्क्षणं भूयते भूम्या दृष्टसंभ्रातयापि च ॥ १३ ॥ विजये विहरत्येष विश्वेशो विश्वभूतये । धर्मचक्रपुरस्सारी त्रिलोकी तेन संपदा ॥ १४ ॥ वर्धतां वर्धतां नित्यं निरीतिर्मरुतामिति । श्रूयतेत्यंबुदध्वानः प्रयाणपटहध्वनिः ॥ १५ ॥ वीणावेणुमृदंगोरुभह्नरीशंखकाहलैः । तुर्यमंगलघोषोऽपि पयोधिमधिगर्जति ॥ १६ ॥ संकथाकोशगीतादृहासैः कलकलोत्तरैः । दिवः पृथिव्यौ प्राप्नोति प्रस्थानीकमहारवः ॥ १७ ॥ फल्गु गायंति किन्नर्थो नृत्यंत्यप्सरसो दिवि । स्पृत्रंत्यातोद्यमानार्ता गंधर्वादय इत्यपि ॥१८॥ स्तवंति मंगलस्तोत्रेजियमंगलपूर्वकैः । तत्र तत्र सतां वंद्यं वंदिता नृसुरासुराः ॥ १९ ॥ चित्रैश्चित्तहरैदिंव्यमीनुषेश्च समंततः । नृत्यसंगीतवादित्रैर्भृतलेऽपि प्रभूतये ॥ २० ॥ पालयंति सदिवागैलोंकपालाः सभूतयः । भर्तृसेवा हि भूत्यानां स्वाधिकारेषु सुस्थितिः ॥२१॥ धावंति परितो देवा केचिद्धासुरदर्शनाः । हिसया ज्यायसैः सर्वानुत्सार्योत्सार्ये दूरतः ॥२२॥ उदस्तैरत्नवलयेवीचिहस्तैः कृतांजिलः । भन्ने प्रीतस्तदोदन्वान्वेलामुध्नी नमस्रति ॥ २३ ॥

१ हिंसापापीयसः सर्वान् इति क पुस्तके।

विलंबितसहस्रार्कगुगपत्पतनोदयौ । नमतानंदितालोकनामोन्नामैः पदे पदे ॥ २४ ॥ शूराणां भृतलस्पर्शिमकुटैर्बहुकोटिभिः । भूः पुरःसोपहारेव शोभतेंऽबुजकोटिभिः ॥ २५ ॥ लौकांतिकाः पुरो यांति लोकांतस्थापितेजयः। लोकेशस्य यथालोकाः पुरोगा मूर्तिसंभवाः॥२६॥ पद्मा सरस्वतियुक्ता परिवारात्तमंगला । पद्महस्ता पुरो याति परीत्य परमेश्वरं ॥२७॥ प्रसीदेत इतो देवेत्यानम्य प्रकृतांजलिः । तद्भूमिपतिभिः सार्थं प्ररो याति प्ररंदरः ॥२८॥ एक्मीशिस्त्रहोकेशपरिवारपरिस्कृतः । लोकानां भूतये भृतिग्रुद्वहन् सार्वलीकिकीं ॥२९॥ पद्मकेतुः पवित्रात्मा परमं पद्मथानकं । भव्यपद्मकसद्वंधुर्यदारोहति तत्क्षणात् ॥३०॥ जय नाथ जय ज्येष्ठ जय लोकिपितामह । जयात्मभूर्जयात्मेश जय देव जयाच्युत ॥३१॥ जय सर्वजगद्वंधो जय सद्धमेनायक । जय सर्वशरण्यश्रीर्जय पुण्यजयोत्तम ॥३२॥ इत्युदीर्णासकृद्धोषोरुंधानो रोदसी स्फूटः । जयत्युचेतिगंभीरो घनाघनघनध्वनिः ॥३३॥ स देवः सर्वदेवेंद्रव्याहतालोकमंगलः । तन्मौलिभ्रमरालीढभ्रमत्पादपयोरुहः ॥३४॥ तत्पयोरुह्वासिन्या पद्मयानंदयङ्जगत् । विरहत्परमोद्रभृतिर्भृतानामनुकंपया ॥३५॥ देवमार्गोत्थिते दिन्ये विन्यस्यान्जे पदांबुजं। स्वच्छांमोवाङ्ग्रुखांमोजप्रतिविंबिश्रणि प्रश्चः ॥३६॥

उद्यतस्तस्य लोकार्यं राजराजपुरस्सरः । राजते राजयन्मार्गं पुरोभानोर्यथारुणः ॥३७॥ पदवीजातरूपांगी स्फुरन्मणिविभूषणा । श्लाध्यते सा सती भन्ने स्वभन्ने भामिनी यथा ॥३८॥ परितः परिमार्जेति मरुतो मधुरे-रणैः । अवदातिक्रयायोगैः स्वां वृत्ति साधवो यथा ॥३९॥ अभ्यक्षंति सुरास्तत्र गंधांभोंबुदवाहनः। स्फुरत् सीदामिनीदीप्तिभासिनाखिलदिङ्मुखाः॥४०॥ मंदारकुसुमैर्मत्तभ्रमद्भमरचुंबितः । नंद्यते सुरसंघातैर्मोर्गो मार्गविद्द्यमे ॥४१॥ ज्योतिर्मेडलसंकारीः सीवर्णरसमंडलैः । सुलग्नैः शोभते मार्गो रत्नचूर्णतलोचितैः ॥४२॥ गुह्यकाश्रित्रपत्राणि चिन्वते कुंकुमै रसेः । चित्रकर्मकृतां चित्रां स्वामाचिक्षासवो यथा ॥ ४३ ॥ कदलीनालिकरेक्षक्रमुकाद्यैः क्रमस्थितैः । संपन्निर्मार्गसीमापि रम्याऽऽरामायते द्वयी ॥४४॥ तत्राक्रीडपदानि स्युः सुंदराणि निरंतरं । यत्र दृष्टा स्वकांताभिराक्रीडंते नरामराः ॥४५॥ भोग्यान्यपि यथा कामं भोगिनां भोगभूमिवत् । सर्वाण्यन्यूनभूतीनि संभवंत्यंतरें ऽतरे ॥ ४६ ॥ योजनत्रयविस्तारो मार्गो मार्गातयोर्द्रयोः । सीमानौ द्वाविष ज्ञेयो गन्यूतद्वयविस्तृतौ ॥ ४७ ॥ तोरणैः शोभते मार्गः करणैरिव कल्पितैः । दृष्टिगोचरसंपन्नैः सौवणैरष्टमंगलैः ॥ ४८ ॥

१ अनून इति ख पुस्तके ।

कामशालाविशालाः स्युः कामदास्तत्र तत्र च । भागवत्यो यथा मूर्ताः कामदा दानशक्तयः॥४९॥ तोरणांतरभूतुंगसमस्तकदलीध्वजैः । संछन्नोध्वा घनच्छायो रुणद्धि सवितु श्छिवि ॥ ५० ॥ वनवासिसुरैर्वन्यमंजरीपुंजपिंजरः । स्वपुण्यप्रचयाकारः कल्प्यते पुष्पमंडपः ॥ ५१ ॥ युक्तो रत्नलताचित्रभित्तिभः सद्वियोजनः । चंद्रादित्यप्रभारोचिमँडलोपांतमंडितः ॥ ५२ ॥ घटिकाकलनिहीदीर्घटानादैनिनादयन् । दिशो मुक्तागुणा मुक्तं प्रांतमध्वांततांतरः ॥ ५३ ॥ सद्गंधाकृष्टसंभ्रांतभृंगमालोलसद्यतिः । वियतीशयशोमृतवितानच्छविरक्षियते ॥ ५४ ॥ स्वात्तं मस्तं मसंकाशैः स्थूलग्रुक्तागुणोद्भवैः । चतुर्भिद्मिमभिर्भाति विद्वमांतांतराचितैः ॥ ५५ ॥ तस्यांतस्थो दयामूर्तिः प्रयाति दियताहितः । हिताय सर्वलोकस्य स्वयमिशः स्वयंप्रभः ॥५६॥ पर्यंत्यात्मभवान् सर्वे सप्त सप्त परापरान् । यत्र तद्धासते पत्राद्धामंडलं प्रभोः ॥ ५७ ॥ त्रिलोकीवांतसाराभात्यपर्यपरि निर्मला । त्रिछत्री सा जिनेंद्रश्रीस्त्रेलोक्येशित्वशंसिनी ॥ ५८ ॥ चामराण्यभितां भांति सहस्राणि दमेश्वरं । स्वयंवीज्यानि शैलेंद्रं हंसा इव नभस्तले ॥५९॥ ऋषयोनुव्रजंतीशं स्वर्गिणः परिवृण्वते । प्रतीहारः पुरो याति वासवो वसुभिः सह ॥६०॥ ततः केवललक्ष्मीतः प्रतिपाद्या प्रकाशते। साकं श्रच्या वि(त्रि)लोकोरुर्भूतिलक्ष्मीः समंगला ॥६१॥

श्रीसनाथैस्ततः सर्वेर्भूयते पूर्णमंगलैः । मंगलस्य हि मांगल्या यात्रा मंगलपूर्विका ॥६२॥ शंखपद्मी ज्वलन्मौलिसार्थीयौ सत्वकामदौ । निधिभृतौ प्रवर्तेते हेमरत्नप्रवर्षिणौ ॥६३॥ भास्वत्फणामणिज्योतिर्दीपिका भांति पन्नगाः । हतांधतमसज्ञानदीपदीप्त्यनुकारिणः ॥६४॥ विश्वे वैश्वानरा यांति धृतध्मघटोद्धताः । यद्दंधो याति लोकांतं जिनगंधस्य सूचकः ॥६५॥ सौम्याग्नयगुणादेव भक्ताः सोमदिवाकराः । स्वत्रभामंडलादर्शमंगलानि वहंत्यहो ॥६६॥ तपनीयमयै श्लेत्रेने भस्तपनरोधिभिः । तपनीयैरेव सर्वत्र संरुद्धमिव दृश्यते ॥६७॥ पताका हस्तिविक्षेपैः संतर्ज्य परिवादिनः । दयामूर्ता इवेशांशा नृत्यंति जयकेतवः। ६८॥ वैभवी विजया ख्याति वैजयंती पुरेडिता । राजने त्रिजगनेत्रकुमुदामलचंद्रिका ॥६९॥ भ्रवः स्वभूर्निवासिन्यो भ्रवि यद्व्यंतराः स्थिताः । नरीनृत्यंति देव्योग्रे प्रेमानंदरसाष्ट्रकं ॥७०॥ आमंद्रमधुरध्वाना व्याप्तदिग्विदिगंतराः । धीरं नानद्यते नांदी जित्वा प्रावड्घनावलीं ॥७१॥ जिताको धर्मचक्रार्कः सहस्राराश्चदीधितिः । यतिदेवपरीवारो वियतीति तमोपहः ॥७२॥ लोकानामेकनाथोयमेतित नमतेति च । घुष्यते स्तनितैरप्रेघीषणाभयघोषणा ॥७३॥ भर्तृप्रभावसद्या सत्पूर्वं व्याप्य दिक्पथे । प्रकृतंति जयाहानं भावंतः प्रथमोत्तमाः ॥७४॥

६९८

देवयात्रामिमां दिव्यामन्वेत्य परमाद्भुतां । अद्भुतान्यर्थदृष्ट्यादि सर्वाण्यसुभृतां भुवि ॥ ७५ ॥ आवयोर्नैव जायंते व्याधयो व्यापयंति नः । ईत्यश्राज्ञया भर्तुर्नेति तदेशमंडले ॥ ७६ ॥ अंधा पत्रयंति रूपाणि श्रण्वंति विधराः श्रुति । मूका स्पष्टं प्रभाषंते विक्रयंते च पंगवः ॥ ७७ ॥ नात्युष्णा नातिशीताः स्युरहोरात्रादिवृत्तयः। अन्यचाशुभमत्येति शुभं सर्वे प्रवर्धते ॥७८॥ भूत्रधः सर्वसंपन्नसस्यरोमांचकंचुका । करोत्यंबुजहस्तेन भर्तुः पादग्रहं मुदा ॥ ७९ ॥ जिनोर्कपादसंपर्कप्रोत्फुल्लकमलावली । प्रथयंत्युद्वहंती द्यौरस्थायि सरसीश्रियं ॥ ८० ॥ स्वर्वेत्युक्ताः समात्मानः समदृष्टेश्वरेक्षिता । ऋतवः सममेधंते निर्विकंपा हि सेशिता ॥ ८१ ॥ निधानानि निधीरन्नान्याकराण्यमृतानि च । स्यंते तेन विख्याता रत्नस्रिति मेदिनी ॥८२॥ अंते कौंतकजिद्वीर्यपराजितपराक्रमः । धर्मचक्रोर्जिते लोके नाकाले करमिच्छति ॥८३॥ कालः कालहरस्याज्ञामनुकूलभयादिव । प्रविहाय स्वर्वेषम्यं पूज्येच्छामनुवर्तते ॥ ८४ ॥ तत्र स्थावरकाः सर्वे सुखं विदंति देहिनः । सैषा विश्वजनीना हि विश्वता श्रुवि वर्तते ॥ ८५ ॥ जनमानुबंधवरो यः सर्वो हि नकुलादिकः । तस्यापि जायते जर्यं संगतं सुगताञ्चया ॥ ८६ ॥ गंधवाही वहद्रंधं मर्तुस्तत्कथाप्नुयात् । अचंडः सेहते सेवां शिक्षयश्रनुजीविनः ॥ ८७॥

रजिस्तिमिरिकापायवैमल्याभरणत्विषः । दिकन्याः पुष्पजापैस्तं पूजयंति दिशां पति ॥ ८८ ॥ नभः खञ्छतरं स्पष्टतारातरलभासुरं । सरः शरत्प्रसन्नांभः क्रमुद्वदिव दृश्यते ॥ ८९ ॥ दूराचाल्पियः सर्वे नयंति किमुतेतरे । चतुरास्यश्रतुर्दिक्षु छायादिरहितो विभ्रः ॥ ९० ॥ भुक्त्यभावो जिनेंद्रस्योपसर्गस्य तथैव च । अहो लोकैकनाथस्य माहात्म्यं महदद्भतं ॥९१॥ शुभंयवो नमंत्येत्याहंयवोऽपि प्रवादिनः । अवसानाद्भतं चैताभिईंद्वं प्राभवं हि तत् ॥९२॥ यस्यां यस्यां दिशीशःस्यात्त्रिदशेशपुरस्सरः। तस्यां तस्यां दिशीशाः स्युः प्रत्युद्याताः सपूजनाः ९३ यतो यतश्र यातीशस्तदीशाश्र समंगलाः । अनुपात्या स्वसीमानः सार्वभौमो हि ताद्यः॥९४॥ त्रिमार्गगा प्रयात्येवं देवसेना त्वमार्गगा। पवित्रयति भूलोकं पवित्रेण प्रभाविता ॥९५॥ तस्यामेकः सम्रुतुंगो भादंडो दंडसिक्सिः । अधरोपरिलोकांतः प्राप्तः प्रत्यागतांशुभिः ॥९६॥ त्रिगुणीकृततेजस्कः स्थूलदृश्यः स्वतेजसा । भासते भास्करादन्याज्ज्योतिष्टमविरस्करः ॥९७॥ आलोको यस्य लोकांतव्यापी निःप्रतिबंधनः । ध्वस्तांधतमसो भास्वत्प्रकाशमतिप्रतिते ॥९८॥ तस्यांतस्तैजसो भर्ता तेजोमय इवापरः । रिक्ममालिसहस्रैकरूपाकृतिरनाकृतिः ॥९९॥ परितो भाति तृत्सर्पद्धनो भर्तुर्महोदयः । राशिगन्यूतिवस्तारो युक्तोच्छ्रायतनुद्भवः ॥१००॥

हत्रयते दृष्टिहारीव मुखदृत्रयः मुखावहः । पुण्यमूर्तिस्तदंतस्थः पूज्यते पुरुषाकृतिः ॥१०१॥ काधियोऽपुण्यजनमानः स्वापुण्यजरुषान्विताः।न प्रधंते च तद्धासं भातुभासमुद्धकवत् ॥१०२॥ तिरयंती रवेस्तेजः पूरयंती दिशोऽखिलाः। तत्प्रभा भानवीयेव पूर्व व्याप्नोति भूतलं ॥१०३॥ तस्याश्चानुपदं याति लोकेशो लोकशांतये । लोकानुद्धासयन् सर्वानतिदीधितिमप्रभः ॥१०४॥ आसंवत्सरमात्मांगैः प्रथयन्प्राभवीं गति । भासते रत्नवृष्ट्या वा परीत्यैरावतो यथा ॥ १०५ ॥ अनुबंधावनिप्ररूपं दिवि मार्गादि दृश्यते । त्रिलोकातिशयोद्भूतं तद्धि प्राभवमद्भुतं ॥ १०६ ॥ पट्टभवंति मंदाश्च सर्वे हिस्रास्त्रपर्धयः । खेदः स्वेदार्तिचितादि न चैषामस्ति तत्र्क्षणे ॥ १०७॥ विहारानुगृहीतायां भूमी न डमरादयः । दशाभ्यस्तैयुगं भर्तुरहोत्र महिमा महान् ॥ १०८ ॥ विभूत्योद्धतया भूत्ये जगतां जगतां विश्वः। विजहार भुवं भव्यान् बोधयन् बोधदः क्रमात् ॥१०९॥ सुराष्ट्रमत्स्यलाटोरुद्धरसेनपटचरान् । कुरुजांगलपांचालकुशाग्रमगधांजनान् ॥ ११० ॥ अंगवंगकिंगादी सानाजनपदान् जिनः । विहरन् जिनधर्मस्थां चक्रे क्षत्रियपूर्वकान् ॥ ११२ ॥ ततो मलयनामानं देशमागत्य स कमात् । सहस्राध्रवने तस्यौ पुरे मद्रिलपूर्वके ॥ ११३॥

पूर्ववद्गचिते तत्र चतुर्भेदैः सुरासुरः । समवस्थानभूभागे जिनोऽभाद्गणवेष्टितः ॥ ११४ ॥ तत्प्रराधिपतिः पौंदः पौरलोकसमन्वितः । सस्तुतिर्जिनमानम्य समासीनः कृतांजलिः ॥११५॥ देवक्यास्तनया ये पर सुदृष्टचलकयाः स्थिताः। पुत्रप्रीतिं प्रकुर्वाणास्तेऽपि तत्रैव संगताः ॥११६॥ प्रत्येकं योषितस्तेषां द्वात्रिशद्गणनां गुणैः । रूपादिभिरपींद्रस्य जयंत्यः शुचयः शचीं ॥११७॥ अवतीर्य रथेभ्यस्ते पद्भ्यः पडिप सोदराः। नत्वा नुत्वा जिनं राक्षा सहासीना महौजसः॥११८॥ जिनः श्रावकधर्मे च सम्यक्दर्शनभृषितं । यतिधर्मे च कर्मघ्रं जगाद सदसे तदा ॥ ११९ ॥ ततो विदिततत्वार्थाः श्रुत्वा धर्मामृतं जिनात् । जातसंसारिनर्वेदा बंधुभ्यो विनिवेद्य ते ॥१२०॥ जिनपादांतिके दीक्षां मोक्षलक्ष्मीविधायिनीं । भ्रातरः सहनिस्संगा पडिप प्रतिपेदिरे ॥१२१॥ द्वादशांगं श्रुतज्ञानं लब्धवीजादिबुद्धयः । अधिगम्य तपा घोरं चक्कस्ते राजस्नवः ॥ १२२ ॥ पष्टादयः सहामीषां धारणापारणा सह। योगास्त्रैकालिकाः साकं साकं शय्यासनिक्रयाः॥१२३॥ तेषां चरमदेहानां तपतां परमं तपः । देहानां परमा कांतिः पूर्वतोऽपि विवर्धते ॥ १२४ ॥ उपमानोपमेयत्वमन्योन्यस्य तपस्यमी । सवाद्याभ्यंतरे प्रापुस्तीर्थकृत्पदसेवकाः ॥ १२५ ॥ तथाविधमहाभूत्या विद्दृत्य स महीं जिनः । आगत्य समवस्थाने नोर्जयंतमभूषयन् ॥ १२६ ॥

इंद्राचैसिद्शैस्तस्मिसुपेंद्राचैश्र यादवैः । द्वारिकापौरलोकेन सेव्यमानो जिनो बभौ ॥ १२७ ॥ एकादश गणाधीशा वरदत्तादयस्तदा । श्रुतज्ञानसमुद्रांतर्दिशिनोऽत्र विरेजिरे ॥ १२८ ॥ चतुःशतानि तत्रान्ये मान्याः पूर्वधराः सतां । एकादशसहस्राष्ट्रशतसंख्यास्तु शिक्षकाः ॥१२९ । शतान्यविधनेत्रास्तु केवलज्ञानिनोऽपि च । ते पंचद्शसंख्यानाः प्रत्येकप्रपवर्णिताः ॥ १३० ॥ मत्या विपुलया युक्ता श्रतानि नव संख्यया । वादिनोष्टी श्रतानि स्युरेकादश नु वैक्रियाः १३१ चत्वारिंशत्सहस्राणि राजीमत्या सहार्जिकाः । लक्षेकैकोनसप्तत्या सहस्रेः श्रावकाः स्पृताः १३२ षट्त्रिंशच सहस्राणि लक्षाणां त्रितयं तथा । सम्यग्दर्शनसंशुद्धाः श्राविकाः श्रावकवताः॥१३३॥ पूर्ववत्तीर्थकुन्मेघस्तृषितान् भव्यचातकान् । वर्षन् धर्मामृतं दिव्यं दिव्यध्वनिरतर्पयत् ॥१३४॥ इति दुरापमहोदयपर्वते जिनरबी स्थितवत्यमितोदये।

विकसति प्रकृतांजलिकुग्रलं सकललोकसरोजवुधांबुजं ॥ १३५ ॥

इत्यरिष्टनिमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ भगविद्वहारवर्णनो नामेकोनषष्टितमः सर्गः ।

षष्टितमः सर्गः ।

अथ धर्मकथाछेदे प्रणिपत्य जिनेश्वरं । कृतांजलिरपुच्छत्सा देवकी विनयं श्रिता ॥ १ ॥ भगवन् भवने मेऽद्य जातरूपमनोहरं । मुनियुग्मं प्रविक्य त्रिरुपर्युपरि भुक्तवान् ॥ २ ॥ भगवन् भुक्तिवेलायामेकस्यामेकभुक्तये । बहुकृत्वो गृहेत्वेकं यतयः प्रविशंति कि ॥ ३ ॥ अथातिशयस्य पत्वाद्यतियुग्मत्रयं मया। भ्रांत्या नालक्षि मे स्नेहो देहजेश्विव तेश्वभृत् ॥ ४॥ इत्युक्ते कथयन्नाथस्त नयास्ते षडप्यमी । युग्मत्रतया सूता भवत्या कृष्णपूर्वजाः ॥ ५॥ देवेन रक्षिताः कंसात्सुदृष्ट्यलकयोः पुनः । सुतत्वेन च बृह्मास्ते पुरे भद्रिलनामनि ॥ ६॥ धर्मे श्रुत्वा समं सर्वे मम शिष्यत्वमागताः। कृत्वा कर्मक्षयं सिद्धि यास्यंत्यत्रैव जन्मनि ॥ ७ ॥ स्नेहोऽपत्यकृतोऽमीषु भवत्याः समभूदतः । धर्मचारिषु सर्वेषु स्नेहः किमुत सूनुषु ॥ ८॥ प्रणनाम ततस्तुष्टा देवकी देहजान्युनीन् । यादवाश्च समस्तास्ते कृष्णाद्यास्तुष्टुर्नुताः ॥ ९ ॥ प्रणम्यात्मभवान् पृष्टो जिनेंद्रः सत्यभामया । यदुलोकामराध्यक्षं दिव्यचक्षुर्जगाविति ॥ १०॥ प्राग्मद्रिलपुरेऽत्राभूनमरीचिकपिलासुतः । काव्यकृत्पंडितंमन्यो विप्रो मुंडशलायनः ॥ ११ ॥ पुष्पदंतजिनेंद्रस्य तीर्थे व्युच्छेदभावतः । अभावे जिनमार्गञ्जभव्यानां भरतिश्वतौ ॥ १२ ॥

गोभूकन्याहिरण्यादिदानानि विषयातुरः । पापवंधीनिमत्तानि विष्रः प्रज्ञाप्य सोवनौ ॥ १३ ॥ मोहयित्वा जडं लोकं राजलोकपुरोगमं । प्रवृत्तः पापवृत्तेषु सप्तमीं पृथिवीमितः ॥ १४ ॥ उद्बत्यीपि परिभ्रम्य तिर्यप्रारकयोनिषु । काकतालीययोगेन मानुषत्वप्रपागतः ॥ १५ ॥ गंधावतीसरित्तीरे गंधमादनपर्वते । व्याधः पर्वतको नाम्ना वस्त्रीवस्त्रभोऽभवत् ॥ १६ ॥ श्रीधरं धर्मसंज्ञं च चारणश्रवणी गिरी । दृष्टोपशमकृताभ्यां प्रोषितं धर्मकालभाक् ॥ १७ ॥ ज्योतिमीलाख्यखेचयीमलकायां महाबलात् । जातः शतवलिश्राता स पुत्रो हरिवाहनः ॥१८॥ राजा राज्ये नियोज्येतौ प्रव्रज्य श्रीधरांतिके। प्रव्रज्यायाः फलं मुख्यं मोक्षसौख्यमवाप सः ॥१९॥ निर्वासितो विरोधस्थो ज्येष्ठेन हरिवाहनः । भगलीदेशशैलेऽस्थादंबुदावर्तनामनि ॥२०॥ श्रीधर्मानतवीयी रूपी चारणी वीक्ष्य तत्र सः । प्रव्रज्याराध्य स प्रापत्करूपमैशानमेव च ॥२१॥ भुक्त्वा देवसुखं देवश्रयुत्वा संक्लेशभावतः। जाता स्वयंप्रभागर्भे भामा त्वं हि सुकेतुतः ॥२२॥ अत्र जन्मनि कृत्वांते तयो भूत्वामरोत्तमः। च्युत्वा जैनं तपः कृत्वा निर्वाणसुखमाप्स्यति।।२३।। आकर्ण्यात्मभवानेवं ज्ञात्वात्मासकानिवृति । आननाम जिनाधीशं सत्यभामा प्रमोदिनी ॥२४॥ रुक्मिण्यापि ततः पृष्टः पूर्वजन्मानि सर्ववित् । अवोचिदिति लोकेशो प्रणिधानपरे स्थिते ॥२५॥ अत्रैव भरतक्षेत्रे विषये मगधाभिधे । बाह्यणी सोमदेवस्य लक्ष्मीग्रामेग्रजन्मनः ॥२६॥ आसील्लक्ष्मीमती नाम्ना लक्ष्मीरिव सुलक्षणा। रूपाभिमानतो मृढा प्रवान प्रतिमन्यते ॥२७॥ धतप्रसाधना वक्त्रं कदाचिचित्तहारिणी। नेत्रहारिणि चंद्राभे पश्यंती मणिद्र्पणे ॥२८॥ समाधिगुप्तनामानं तपसातिकशीकृतं । साधुं भिक्षागतं दृष्टा निर्निद विचिकित्सिता ॥२९॥ मुनेर्निदातिपापेन सप्ताहाभ्यंतरे च सा । क्लिकोदंबरकुष्ठेन प्रविक्याग्निमगानमृति ॥ ३० ॥ सा धार्तेन खरी भूरवा मृत्वा लवणभारतः । शुकरी मानदोषेण जाता राजगृहे पुरे ॥ ३१ ॥ वराकी मारिता मृत्वा गोष्ठे जाताथ कुक्कुरी। गोष्ठागतेन सा दग्धा परुषेण दवामिना ॥३२॥ त्रिपदाख्यस्य मंड्क्यां मंड्कग्रामवासिनः । मत्स्यबंधस्य जाता सा दुहिता पृतिगंधिका ॥३३॥ मात्रा त्यक्ता स्वपापन पितामह्या प्रवर्धिना । निष्कुटे वटवृक्षस्य जालेनाच्छादयन्मुनि ॥३४॥ बोधितावधिनेत्रेण प्रभाते करुणावता । धर्म समाधिगुप्तेन प्रोक्तपूर्वभवाग्रहीत ॥ ३५॥ पुरं सोपारकं याता तत्रायी समुपास्यया । ययौ राजगृहं ताभिः कुर्वाणाचाम्लवर्धनं ॥ ३६ ॥ अत्र सिद्धिशिला वंद्या वंदित्वा च स्थिता सती। कृत्वा नीलगुहायां सा सती सल्लेखनामृता ॥३७॥

१ गर्दभी । २ ऽजायत इति स पुस्तके ।

अच्युतेंद्रमहादेवी नाम्ना गगनवल्लभा । वल्लभाभवदुत्कृष्टा स्नीस्थितस्तत्र देव्यसौ ॥ ३८ ॥ ततोवतीय भीष्मस्य श्रीमत्यां त्वं सुताऽभवः। नगरे कुंडिनाभिख्ये हिमणी हिमणः स्वसा। ३९॥ कृत्वा चात्र भवे भव्ये प्रवड्यां विबुधोत्तमः। च्युत्वा तपश्च कृत्वात्र नैग्रेंध्यं मोक्ष्यसे ध्रुवं ॥४०॥ मीष्मजा भीष्मसंसारभीकराकण्यं सा भवान् । ज्ञात्वासमस्वमोक्षाप्तिः प्रणनाम प्रभुं मुदा ॥४१॥ जांबवत्या जिनः पृष्टस्तस्याः प्राह पुराभवं । संसारभयभीतानां सन्निधौ निखिलांगिनां ॥४२॥ सुतासीत्पुष्कलावत्यां जंबुद्वीपस्य देविलात् । नगर्या वीतशोकायां देवमत्यां यशस्विनी ॥४३॥ गृहपत्यात्मजा यासौ गृहपतेः शरीरजा । दत्ता सुमित्रसंज्ञाय मृते तत्र सुदुःखिता ॥ ४४ ॥ जैनेन जिनदेवेन जिनधर्मीपदेशिता । शाम्यमाना न सम्यक्तवं लेभे मोहोदयादसौ ॥ ४५ ॥ दानोपवासविधिना लौकिकेन मृता सती । नंदने व्यंतरस्यासीत् सा भार्या मेरुनंदना ॥ ४६ ॥ त्रिशद्वर्षसहस्राणि लब्धाशीतियुतानि तत् । भोगं भुक्त्वा चिरं कोलं संसारं संससार सा ॥४७॥ द्वीपेत्ररावतक्षेत्रे पुरे विजयपूर्वके । बंधुषेणस्य भूपस्य बंधुमत्याः सुताऽभवत् ॥ ४८ ॥ नाम्ना बंधुयशाः कन्या श्रीमत्या प्रोषधवतं । कन्यया जिनदेवस्य प्रतिपद्य मृताभकत् ॥ ४९ ॥ भनदस्य प्रिया पत्नी नामतः सा स्वयंत्रमा । च्युत्त्रातः पुंडरीिकण्यां जंबुद्दीपे पृथौ पुरि ॥५०॥ वज्रष्टेः सुभद्रायां सुमतिस्तनयाभवत् । सुंदर्याजिकया पार्से कृत्वा रत्नावलीतपः ॥ ५१ ॥ सा त्रयोदशपल्यायुर्बक्षेद्राय्रांगनाऽभवत् । च्युतातो दक्षिणश्रेण्यां विजयार्थस्य भारते ॥ ५२ ॥ नगरे जांबवाभिरूये जांबवस्य खगेशिनः । जांबवत्यां प्रियायां त्वं जाता जांबवती सुता ॥५३॥ तपस्तपस्तिनी कृत्वा भूत्वा कल्पामरोत्तमः। च्युत्वा नृपात्मजो भूत्वा तपसा सिद्धिमेष्यति॥५४॥ सेत्युक्ते त्यक्तशंसीतिशीलालंकृतिशालिनी । प्रणम्य जिनमासीना मन्वाना मवनिर्गमं ॥ ५५ ॥ जननानि जिनो पृष्टो विनयेन सुसीमया । सभाजनमनोह्वादजननध्वनिनाववीद् ॥ ५६ ॥ षातकी खंडपूर्वार्धमें कपूर्वविदेहजे । विजयो मंगलावत्यां नगरे रतनसंचये ॥ ५७ ॥ भूपतिर्विश्वसेनोभूद्धार्यास्यानुंधरीरिता । अमात्यः श्रावकोऽस्यैव विश्वतः सुमतिश्रुतिः ॥५८॥ पद्मसेनेन निहतोऽयोध्याधिपतिना युधि । विश्वसेनोऽस्य जायायै सोऽमात्यो धर्ममञ्जवीत्।।५९॥ मोहादप्राप्तसम्यक्तवा विजयद्वारवासिनः । मृत्वा ज्वलितवेगाभृद्व्यंतरी विजवस्य सा ।।६०॥ दशवर्षसहस्राणि भुक्तवा तत्र सुखं ततः । च्युता चिरं परिभ्रम्य भीमं संसारसागरं ॥६१॥ जंबद्वीपविदेहेंतः सीताया दक्षिणे तटे । रम्ये रम्यामिधे क्षेत्रे शालिग्रामे महाधने ॥६२॥ सुवाभूदेवसेनायां यक्षिलस्य गृहेशिनः । यक्षाराभनतो लम्धा यक्षदेवी स्वनामतः ॥ ६३ ॥

सा यक्षगृहपूजार्थमन्यदा प्रगतात्र च । धर्मसेनगुरोरंते धर्म शुश्राव गौरवात् ॥ ६४ ॥ आहारदानम्मे सा पात्रायातिथयेऽन्यदा । दत्वा भक्तिमती कन्या प्रण्यवंधं ववंध च ॥६५॥ सखीभिः क्रीडितं याता कदाचिद्रिमलाचलं । तत्र चाकालवर्षेण पीडिता प्राविशद्गुहां ॥६६॥ तत्र सिंहेन संत्रस्ता ग्रस्ता त्यक्तात्मविग्रहा । बभूव हरिवर्षेसी द्विपल्योपमजीविता ॥ ६७ ॥ ज्योतिलोकिमतो गत्वा पल्योपमसमस्थितिः । तच्च्युत्वा पुष्कलावत्यां जंबुद्वीपस्य भारते।।६८॥ वीतशोकाभिधानायामशोकस्य महीपतेः । श्रीमत्यामभवत्कन्या श्रीकांता नामतः सुता ॥६९॥ जिनदत्तार्थिकोषांते विनिष्क्रम्य कुमारिका । रत्नावर्लि तपः कृत्वा माहेंद्राधिपतेः प्रिया । ७०॥ भूत्वैकादशपल्यायुर्भुत्तवा स्वर्गसुखं च्युता । सुच्येष्ठायां सुराष्ट्रेषु राष्ट्रवर्धनभूभृतः ॥ ७१ ॥ सुसीमास्तनयाभूरत्वं नगरे गिरिपूर्वके । देवो भूत्वा तपःशक्त्या मोक्ष्यसे नृभवे ततः ॥ ७२ ॥ निशम्यात्मभवानित्यं सुसीमा सौम्यमानसा । प्रकृष्टासन्ननिष्ठेति निष्ठितार्थं ननाम सा॥ ॥७३॥ पृष्टो लक्ष्मणया नत्वा जिनः प्रोवाच तद्भवान् । जिनाः सर्वहिता सर्वे यत्प्रश्लोत्तरवादेन ॥७४॥ द्वीपेऽस्मिन् कच्छकावत्यां सीताया उत्तरे तटे । राजारिष्टपुरे ह्यासीद्वासवी वासवीपमः ॥७५॥ सुमित्राख्या त्रियास्यासौ वंदितुं सांगनो ययौ । गुरुं सागरसेनाख्यं सहस्राम्रवनस्थितं ॥ ७६ ॥

धर्म श्रुत्वा गुरो राजा राज्ये विन्यस्य देइजं । वसुसेनमदीश्विष्ट न पत्नी पुत्रमोइतः ।। ७७ ॥ पतिपुत्रवियोगोग्रशोकदुः खहता पृता । पुलिंदीतैवं गता दृष्ट्या नंदिभद्रं खचारणं ।। ७८ ॥ अवधिक्रानिनं श्रुत्वा तस्मात्पूर्वभवं हि सा । स्मृतपूर्वभवा भृत्वानिदितानशनवता ॥ ७९ ॥ नारदस्याभवदेवी नामतो मेघमालिनी । च्युत्वा च भरतक्षेत्रे रौप्याद्रेर्दक्षिणे तटे ॥ ८० ॥ सानुधर्या महेंद्रस्य पुरे चंदनपूर्वके । सुता कनकमालाभूदिद्याधरमनोहरा ॥ ८१ ॥ हरिवाहनविद्येशं महेंद्रनगरेश्वरं । कृत्वा स्वयंवरे कन्या मान्या जातास्य वस्त्रभा ॥ ८२ ॥ अन्यदा चैत्यपूजार्थं सिद्धकूटिमयं गता । श्रुत्वा च चारणाज्जातिमायीग्रुक्तावलीं तपः ॥८३॥ कृत्वा सनत्कुमारेंद्रवल्लभाभृत् सुरांगना । नवपल्योपमायुष्का सौख्यं भुक्त्वा तत्रश्रयुता ॥८४॥ जातात्र श्लक्ष्णरोम्णस्त्वं कुरुमत्यां सुता भवे । तृतीये मुक्तिरित्युक्ते लक्ष्मणा प्रणता प्रभुं॥८५॥ स गांधार्या कृते प्रश्ने तद्भवानभगवान् जगौ । नगर्या कोशलेष्वासीदयोध्यायां महीपतेः ॥८६॥ महिषी रुद्रदत्तस्य विनयश्रीश्रुतारूयया । श्रीधराय ददौ दानं पत्या सिद्धार्थके वने ॥ ८७ ॥ मृत्वोत्तरकुरुष्वासीद्दानात्पल्यचयस्थितिः । पत्याष्टभागतुल्यायुः सातश्रंद्रमसः प्रिया ॥ ८८ ॥

ततश्रात्रोत्तरश्रेण्यां पुरे गगनवस्त्रभे । विद्युद्वेगस्य कन्याऽभूद्विद्युनमत्यां महाद्युतिः ॥ ८९ ॥ विनयश्रीर्गुणैः ख्याता नित्यालोकपुरेशिनः । मर्हेद्रविक्रमस्यैषा योषिद्गुणसमन्विता ॥ ९० ॥ चारणश्रमणाम्यां तु धर्म श्रुत्वा समंदरे । राज्ये नियोज्य निष्क्रांतो नंदनं हरिवाहनं ॥ ९१ ॥ विनयश्रीस्त कृत्वासौ सर्वभद्रमुपोषितं । पंचपल्यस्थितिर्जाता सौधर्मेद्रस्य बल्लमा ॥ ९२ ॥ पुर्यो त्वं पुष्कलावत्यां गांधारेषु दिवश्युता । गांधारींद्रगिरे राज्ञो मेरुमत्यामभूतसुता ॥ ९३ ॥ तृतीयभवसिद्धिस्त्वामित्युक्ते सानमज्जिनं । गौर्या विज्ञापितो नत्वा तद्भवानाहं विश्ववित्।।९४॥ इभ्यस्येभ्यपुरेऽत्राभृद्धनदेवस्य कामिनी । यशस्विनी स्थिता हर्म्ये चारणी वीक्ष्य सांबरे।।९५॥ सस्मार स्वभवान् सर्वान् धातकीखंडमंडले । पूर्वस्य मंदरस्यासं विदेहेश्वपरेश्वहं ॥ ९६ ॥ आनंदश्रेष्ठिनः पत्नी नंदशोकपुरेऽईते । मितसागरनाम्नेत्र दानं दत्वा सभर्तृका ॥ ९७ ॥ पंचाश्यरीण्यहं प्रापं कृतानि त्रिदशैर्मुदा । पीत्वा काशोदकं भन्नी सविषं मृतवत्यमा ॥ ९८ ॥ भूत्वा देवकुरुवासमैशानेंद्रप्रिया ततः । जातात्राहमिति शात्वा सा संवेगपरायति ॥ ९९ ॥ नत्वा सुभद्रनामानं प्रोषधव्रतमग्रहीत् । पृत्वा शकस्य देव्यासीत्पंचपल्यसमस्थितिः ॥१००॥ च्युत्वाकृदिइ कौशांव्यां सुमित्रायां सुमद्रतः। इभ्याद्दर्ममतिर्नाम्ना कन्या धर्ममतिः सदा ॥१०१॥

जिनमत्यार्थिकापार्श्वे तपो जिनगुणाविधं । गृहीत्वोपोष्य जातासि महाशुक्रेंद्रवस्त्रभा ॥१०२॥ एकविंशातिपल्यायुश्चयुत्वा चंद्रमतिस्त्रियां । गौरी त्वं वीतशोकायां मेरुचंद्रादभूत्सुता ॥ १०३॥ भवैः सिद्धिस्त्रिभिस्ते स्यादित्युक्ते सा नता त्रिश्चं। प्रणिपत्य ततः पृष्टः पद्मावत्या भवान् जगौ।१०४। उज्जयिन्यामिहैवासीदपराजितभूभृतः। तनया विनयश्रीः सा विजयावनितांगजा ॥ १०५॥ हस्तिशीर्षपुराधीशं हरिषेणमसी पति । प्राप्ता पतियुता दानं वरदत्ताय संददी ॥ १०६ ॥ कालागुरुकधूपेन भर्ता गर्भगृहे मृता । भूत्वा हैमवते भुक्त्वा सुखं पल्यसमस्थितिः ॥ १०७॥ जाता चंद्रप्रभादेवी ततश्रंद्रस्य वस्त्रभा । पत्योपमाष्टभागायुरतश्र्युत्वा नु भारते ॥ १०८ ॥ ग्रामेऽभूत्साल्मलीसंडे मगधेषु गृहेशिनोः । दुहिता पद्मदेवीति देविलाजयदेवयोः ॥ १०९॥ आचार्याद्रधर्माख्यादेकदा व्रतमग्रहीत् । यावज्जीवं न भक्ष्यं मे फलमज्ञातमप्यसौ ॥ ११०॥ प्रचंडशारमेलीखंडे ग्रामेऽवस्कंदनामतः। अकांडे चंडवाणाख्यो व्याधमुख्योऽहरज्जनं ॥१११॥ वंदिगेहे गृहीत्वा तां पद्मदेवीं स्वदारतां। निनीषुः शीलवत्यासौ प्रत्याख्यातोऽनया नयात्।११२। स राजगृहनायेन राज्ञा सिंहरथेन तु । हठेन निहतोरण्ये शरण्ये जनताऽभ्रमत् ॥ ११३ ॥ इत्पीडिता जनास्तत्र दिग्मृढा मृढबुद्धयः । मृगा इव मृता दुःखार्तिकपाक फलमक्षिणः ॥११४॥

अनास्वाद्य फलान्येषा पद्मा देवी दृढवता । प्रत्याख्यायैकपल्यायुरंते हैमवते अभवत् ॥ ११५॥ देवी स्वयंत्रभस्यातो व्यंतरस्य स्वयंत्रभा । स्वयंभूरमणद्वीपे स्वयंत्रभगिरावभृत् ॥ ११६ ॥ ततश्रागत्य भरते जयंतनगरेशिनः । श्रीमत्यां विमलश्रीः सा श्रीधरस्य सुतामवत् ॥ ११७॥ प्रादायि मेघनादाय सा भद्रिलपुरेशिने । लेभे च तनयं ख्यातं मेघघोषाख्ययाऽवनी ॥ ११८ ॥ भर्तारे स्वर्गते सापि पद्मावत्यार्थिकांतिके। आचाम्लवर्धमानाख्यं तपः कृत्वा दिवं ययौ॥११९॥ सा सहस्रारकल्पस्य पत्युर्भृत्वाग्रकामिनी । नवपंचकपल्यैस्तु तुल्यं कालमजीगमत् ॥ १२०॥ जातास्यत्र ततश्च्युत्वा त्वमरिष्टपुरेशिनः । श्रीमत्यां स्वर्णनाभस्य सुता पद्मावती श्रुता ॥१२१॥ तपसा नाकमारुद्य देवश्रयुत्वा तपोबलात् । सेत्स्यति त्विमिति प्रोक्ते श्रुत्वा सा जिनमानमत १२२ रोहिणी देवकीपूर्वा देव्योन्येऽपि च यादवाः। पृष्टा श्रुत्वा स्वजन्मानि जाता संसारभीरवः ॥१२३॥ बुद्धा नत्वा जिनेंद्रं तं सुरासुराश्च यादवाः। यांति स्वस्थानमायांति पूजनार्थं पुनः पुनः॥१२४॥ विजहार पुनर्देशान् जिनो भव्यहिताय सः । सर्यस्येव हि चर्यासीज्जगत्कार्याय वैभवी ॥१२५॥ इतश्र वसुदेवाभं वासुदेवमनःप्रियं । सुतं गजकुमाराख्यं देवकी सुषुवे शुभं ॥ १२६ ॥ यौवनं स परिप्राप्तः कन्याजनमनोहरं । ततोऽस्मै वरयांचके चक्री राजकुमारिकाः ॥१२७॥

षष्टितमः सर्गः।

अभिरूपतरां कन्यां सामशर्माग्रजन्मनः। प्रजातां श्वत्रियायां च सोमाख्यां वृतवान् हरिः॥ १२८॥ विवाहारंभसमय मुदिताखिलयादवे । जाते जिनपतिः प्राप्तो विहरन् द्वारिकां तदा ॥१२९॥ समागत्योपविष्टं तमद्रौ रवितिके विभुं । वंदितुं निर्ययौ सर्वे यादवा बहुमंगलाः ॥१३०॥ दृष्टा गजकुमारस्तमाटोपं द्वारिकोद्धवं । दृष्टा कंचुिकनं जैनं विवेद हितमादितः ॥ १३१ ॥ ततो गजकुमारोऽपि प्रयातो वंदितुं जिनं । रथेनादित्यवर्णेन हर्षाद्रोमांचमुद्रहन् ॥ १३२ ॥ आर्हेरयविभवोपेतं गणहीदशभिर्वृतं । जिनं नत्वोपविष्टोऽसौ कुमारश्रक्रपाणिना ॥ १३३ ॥ जगाद भगवांस्तत्र नृसुरासुरसंसदि । संसारतरणोपायं धर्म रत्नत्रयोज्वलं ॥ १३४ ॥ प्रस्तावे हरिरप्राक्षीजिनेंद्रं प्रणिपत्य सः । अत्यंतादरपूर्णेच्छः श्रोत्रिलोकहितेच्छया ॥ १३५ ॥ अईतां चिक्रणामर्थचिक्रणां सीरधारिणां । उत्पत्तिः प्रतिशत्रूणां जिनानां च विशेषतः ॥१३६॥ यथा प्रश्नमितस्तस्मै संभूति विष्णवे ततः। त्रिषष्टियुगमुख्यानां प्रोवाच पुरुषेशिनां ॥ १३७॥ आद्यो वृषभनाथोऽभूदजितः संभवः प्रभुः । अभिनंदननाथश्च सुमतिः पद्मसंप्रभः ॥ १३८॥ सुपःर्श्वनामधेयोऽन्यश्रंद्रप्रभ इतीश्वरः । सुविधिः शीतलः श्रेयान् वासुपूज्यश्च पूजितः ॥१३९॥ विमलोनंतजिद्धर्मः शांतिः कुंथुररो जिनः । मिल्लः शल्यकुशोद्धारो पुनींद्रो पुनिसुवतः ॥१४०॥

निमंब निवतो नेमिर्वर्तमानोहमत्र तु । पार्श्वश्रापि महावीरो भवितारौ जिनेश्वरौ ॥ १४१ ॥ जंब्द्धीपविदेहेष्टी भारते पंच ते जिनाः । सप्तैव धातकीखंडे चत्वारः पुष्करार्धजाः ॥१४२॥ प्राग्मवे पुंडरीकिन्यां वृषभः शांतिरीश्वरः । अजितस्तु सुसीमायां क्षेमपुर्यामरो जिनः ॥ १४३॥ रत्नसंचयजः कुंथुः संभवश्राभिनंदनः । माश्चिश्र वीतशोकायां जंबुद्वीपविदेहजाः ॥ १४४ ॥ चंपायामिह की शांब्यां गजाहनगरे अपि ते, अयोध्यायां भरतक्षेत्रे छत्राकारपुरे क्रमात् ॥ १४५॥ मुनिसुव्रतनाथश्च निर्नेमिजिनस्तथा । पार्श्वाख्यश्च महावीरः पंचामी पूर्वजन्मनि ॥ १४६ ॥ पुंडरीकिण्यखंडश्रीः सुसीमाक्षेमपुर्यपि । धातकीखंडपूर्वार्धं सक्रमं रत्नसंचयं ॥ १४७ ॥ सुमत्यादिचतुर्णो च पुरः पूर्वत्र जन्मनि । सुविध्यादिचतुर्णो च पूर्वपुष्करजास्त्वम् ॥ १४८ ॥ तथैव धातकीखंडे पश्चादैरावतिक्षती । अनंतिजदभूतपूर्वमरिष्टपुरसंभवः ॥ १४९ ॥ पूर्वीर्धभारते तस्य विमलस्तु महापुरे । भद्रिलादी पुरे धर्मस्तत्र नामान्यमूनि तु ॥ १५० ॥ वजनाभिरभूदाद्यो विमलस्तदनंतरः । विपुलो वाहनांत्योऽन्यो महाबल इतीरितः ॥ १५१ ॥ परोऽतिबल इत्यासीदपराजित इत्यतः । नंदिषेणस्तथा पद्मो महापद्मः स्मृतः परः ॥ १५२ ॥ पश्चमुस्मोअपि नीलनगुल्मः पद्योत्तरः परः । पद्मासनः पुनः पद्मस्तथा दशरथो नृषः ॥ १५३ ॥

राजा मेषरथःसिंहरथो धनपतिः परः । नाम्ना वैश्रवणो राजा श्रीधमीख्यस्ततः पदः॥१५४॥ सिद्धार्यः सुप्रतिष्ठोहमानंदो नंदनो तृपः । पूर्वजन्मनि नामानि जिनानामानुपूर्वतः ॥ १५५ ॥ चक्री पूर्वधरः पूर्वो महामंडलिकाः परे । एकादशांगिनः सांगैः सर्वेऽपि कनकप्रभाः ॥ १५६॥ सिंहविक्रीड़ितं कृत्वा प्रायोपगमनं गताः । मासक्षपणतः सर्वे यथास्वं स्वर्गलोकगाः॥ १५७॥ वज्रसेन इति ख्यातस्तथारिंदमसंज्ञकः । स्वयंत्रभाभिधश्चान्यः परो विमलवाहनः ॥ १५८॥ स्रि: सीमंघराभिक्यो गुरुश्च पिहितास्रवः । अरिंदमम्रुनिर्मान्यो वंदनीयो युगंधरः ॥ १५९ ॥ सर्वा सर्वजनानंदोप्युभयानंदनामकः । वजदत्तोऽपरो वैद्यो वजनाभिरभिष्टुतः ॥ १६० ॥ सर्वग्रप्तिश्वप्रााट्यश्चित्ररक्षाभिधः परः । विमलाचारसंपन्नो मान्यो विमलवाहनः ॥ १६१ ॥ गुरुषेनरथाभिष्यः संवरः संवरान्वितः । वरधर्मस्त्रिलोकीयः सुनंदो नंदसंज्ञकः ॥ १६२ ॥ व्यतीतशोकनामान्यो दामरः प्रौष्ठिलः परः। जिनानां गुरवोऽमी न क्रमेणातीतजन्मनि ॥१६३॥ युषो धर्मश्र शांतिश्र कुंधुः सर्वार्थसिद्धितः । चत्वारः प्रच्युता क्रेया विजयादिभनंदनः ॥१६४॥ चंद्रशभसुमत्याख्यौ वैजयंताज्जयंततः । नेम्यरौ निमम्हीशादपराजिततश्युतौ ॥ १६५ ॥ आरणात्प्रव्यदंतेशः शीतलेशोऽच्युताच्च्युतः। पुष्पेश्चरविमानेशः श्रेयोनंतौ च सन्मतिः ॥१६६॥

सहस्रारातु विमलश्रीपार्श्वग्रुनिसुत्रताः । क्रमात्संभवसुपीर्श्वपद्मप्रजनाः पुनः ॥ १६७॥ अधोमध्योपरिप्रख्यप्रैवेयकपरिच्युताः । वासुपूज्यो महाशुक्रादितितीर्थकृतां दिवः ॥ १६८ ॥ वृषभश्चेत्रकृष्णस्य नवस्यामुद्रपद्यतः । माघशुक्तनवस्यां तु तथैवाजिततीर्थकृत् ॥ १६९ ॥ उत्पन्नो मार्गशीर्षस्य पौर्णमास्यां हि संभवः। द्वादश्यां माघशुक्रस्य जिनेंद्रस्त्वभिनंदनः॥१७०॥ सुमतिः श्रावणस्यासीदेकादःयां सितात्मिन । ऊर्जकृष्णत्रयोदश्यां पद्मप्रभिजनेश्वरः ॥१७१॥ द्वादश्यां ज्येष्ठमासस्य शुक्लायां सप्तमो जिनः। पौषस्य कृष्णपक्षेभूदेकादश्यां जिनोऽष्टमः॥१७२॥ सुविधिर्मार्गर्शाष्ट्य शुक्लप्रतिपदि प्रभुः । शीतलो माघकृष्णस्य द्वादश्यामभवज्जिनः ॥१७३॥ फाल्गुनासितपक्षेऽभूदेकाद्द्यां जिनोऽपरः । पक्षेत्रैव चतुर्द्द्यां वासुपूज्यजिनेश्वरः ॥१७४॥ माघशुक्लचतुर्देश्यां विमलो विमलात्मकः। द्वादश्यां ज्येष्ठकृष्णस्य संजातोऽनंतजिज्जिनः॥१७५॥ माघशुक्लत्रयोदस्यां जझे धर्मो जिनाधियः। ज्येष्ठकृष्णचतुर्दस्यां शांतिनायश्च शांतिकृत्।।१७६॥ कुंथुवैंशाखमासस्य ग्रुक्लायां प्रतिपद्यभूत्। मार्गशीर्षस्य ग्रुक्लायां चतुर्दश्यामरो जिनः ॥१७७॥ एकादश्यां तु तस्येव शुक्लायां मिल्लिरीश्वरः। शुक्लायां माश्वयुज्यां च द्वादश्यां ग्रुनिसुवतः १७८ जातश्च कृष्णदशम्यामाषाढस्य निमर्जिनः । नेमिर्वैशाखशुक्लस्य त्रयोदश्यां जिनेश्वरः ॥१७९॥

स कृष्णैकादशीं पार्श्वः पौषमासस्य भूषयन् । शुक्लत्रयोदशीं वीरश्रेत्रस्य जिनजन्मना ॥१८०॥ पितरी जन्म नक्षत्रं जनमभूमिं जिनेशिनां । चत्यवृक्षं च निर्वाणभूमिं विचम निबुध्यतां॥१८१॥ विनीता मरुदेवी च नाभिन्यग्रोधपादपः । कैलाशश्रोत्तराषाढवषभो वृषभो नृणां ॥ १८२ ॥ अयोध्या विजया राजा जितशत्रुजिंनोऽजितः । सम्मेदः सम्मदायास्तु रोहिणी विषमच्छदः १८३ श्रावस्ती-संभवः सेना जितारिः शालपादपः। ज्येष्ठा नक्षत्रमेनांसि सम्मेदश्र पुनंतु वः॥१८४॥ सरलः संवरो योध्या सिद्धार्था च पुनर्वसुः। जिनो अभिनंदनः शैलः स एवास्तु सुदे सतां।।१८५॥ मेघप्रभो मघायोध्या प्रियंगुश्र सुमंगला । सुमतिः सुमतिर्नित्यं सम्मेदश्र दिशंतु वः ॥ १८६॥ कीशांबी धरणिश्रत्रा सुसीमा जिनपुंगवः । पद्मप्रभःप्रियंगुश्च मंगलं वः स पर्वतः ॥ १८७ ॥ प्रिथवी सुप्रतिष्ठोऽस्य काशी वा नगरी गिरिः। स विशाखा शिरीषश्च सुपार्श्वश्च जिनेश्वरः।१८८। वंद्या चंद्रपुरी चंद्रभभो नागतरुगिरिः । सोनुराधामहासेनो लक्ष्मणा जननी सतां ॥ १८९ ॥ काकंदी पुष्पदंतश्च रामा सुग्रीवभूपतिः । मूलक्षं मालिवृक्षश्च सगिरिमूत्रयेऽस्तु वः ॥ १९० ॥ भद्रिला प्रथमाषाढा प्लक्षो दृढरथो नृषः । सुनंदा शीतलः शैलः स एव हितचेतसः ॥१९१॥ विष्णुश्रीविष्णुराजश्र सिंहनादपुरं जिनः । श्रवणः श्रेयान् संदद्यस्तिदुकः स च भूधरः ॥१९२॥ चंपा जन्मनि मुक्तोभृद्वासुपूज्यो जयांघिपः । पाटला वसुपूज्यश्च पूज्या शतिभवापि च ॥१९३॥ शमी च कृतवर्मा च जंबः प्रोष्ठपदोत्तरा । कांपिल्यं सगिरिःशल्यं विमलश्रोद्धरंतु वः ॥१९४॥ साकेता सिंहसेनश्च रेवत्यश्वत्थपादपः । पांतु सर्वयशा सोऽद्रिरनंतश्चापि वः सदा ॥ १९५ ॥ धर्मश्र दिधपर्णश्र भानुराजश्र सुत्रता । पुष्पो रत्नपुरं सोद्रिर्धर्मे बुद्धि ददातु वः ॥ १९६ ॥ ऐरा च विश्वसेनश्र भरणीभैपुरं तरुः । नंदीश्र शांतिनाथश्र सोगः शांति दिशंतु वः ॥१९७॥ सोगो नागपुरं सर्यः श्रीमती कृत्तिका तथा । तिलकश्च तरुः कुंथुर्मध्नंतु दुरितानि वः ॥१९८॥ चृतो गजपूरं मित्रा पार्थिवश्व सुदर्शनः । सम्मेदो रोहिणी चारो दुरितं दारयंतु वः ॥ १९९ ॥ मिथिला रक्षिता कुंमो जिनेंद्रो मिहराश्विनी। अशोकश्व तरुः सोऽद्रिरशोकाय भवंत वः॥२००॥ पद्मावती सुमित्रोऽस्तु कुञात्रनगरं मुदे । चंपकः श्रवणक्षं च सोऽद्रिवीं मुनिसुव्रतः ॥२०१॥ सिथिला विजयो वना वकुलो निमरश्विनी । नमयंतु महामानं सम्मेदश्च महीधरः ॥ २०२ ॥ नेमिः सूर्यपुरं चित्रा समुद्रविजयः शिवा। ऊर्जयंतो जयंतेऽभी मेषपृंगो दिशंतु वः ॥ २०३॥ वाराणसी च वर्मा च विद्याखा च घवांहिएः । अश्वसेननृपः पार्श्वः सम्मेदश्र मुदेऽस्तु वः ॥२०४॥

१ इभपुरं-हस्तिनापुरं ।

शालः कुंडपुरं वीरः सिद्धार्थः प्रियकारिणी । उत्तराफाल्गुनी पावा पापा निष्नंतु वः सदा ॥२०५॥ चैत्यदृक्षस्तु वीरस्य द्वात्रिशद्धनुरुच्छितः । देहोत्सेधाच शेषाणां स द्वादश गुणो मतः ॥ २०६॥ स्पार्थेशोन्राधार्यां ज्येष्ठासु च शशिप्रभः । श्रेयानपि प्रतिष्ठासु वासुपूज्योश्विनीषु सः ॥ २०७॥ भरणीषु जिनो महिर्वीरः स्वातिषु सिद्धिभाक् । जन्मनश्चत्रवर्गेषु शेषाणां परिनिर्वृतिः ॥ २०८ ॥ शांतिकुंध्वरनामानस्तीर्थकुचकवर्तिनः । शेषास्तीर्थकराः सर्वे पृथिवीपतयो नृपाः ॥ २०९ ॥ चंद्राभ एव चंद्रामः मुविधिः शंखसत्प्रभः प्रियंगुमंजरीपुंजवर्णः सुपार्श्वतीर्थकृत् ॥ २१० ॥ मेघत्र्यामवपुः श्रीमान् पार्श्वस्तु धरणस्तुतः । पद्मगर्भानिभामश्र पत्रप्रभजिनाधिपः ॥ २११ ॥ रक्तकिञ्चकपुष्पामो वासुपुष्यो जिनेश्वरः । नीलांजनाचलच्छायो मुनींद्रो मुनिसुव्रतः ॥ २१२ ॥ नीलकंठस्फुरत्कंठरुचिर्नेमिः समीक्षितः । सुतप्तकनकच्छायाः शेषास्तु जिनपुंगवाः ॥ २१३ ॥ निष्क्रांतिर्वीसपूज्यस्य मह्नेनिमिजिनांत्ययोः । पंचानां तु कुमाराणां राज्ञां शेषजिनेशिनां ॥२१४॥ वृषमस्य विनीतायां परिनिष्क्रमणं तथा । नेमेस्तु द्वारवत्यां तु शेषाणां जन्मभूमिषु ॥ २१५॥ निष्क्रातिः सुयतेर्भुक्त्वा मल्लेः साष्टमभक्तका । तथा पार्श्वजिनस्यापि जयाजस्य चतुर्थका॥२१६॥ षष्ठमक्तभृतां दीक्षा शेषाणां तीर्थदर्शिनः। श्रेयः सुमतिमङ्कीशां पूर्वान्हे नेमिपार्श्वयोः॥ २१७॥

अन्येषामपराहे तां वीरो ज्ञात्वनेऽश्रयत्। क्रीडोद्याने जयास्तुः ससिद्धार्थवने वृषः॥ २१८॥ धर्मस्तु वप्रकास्थाने विंशो नीलगुहाश्रये । पार्श्वी मनोरमोद्याने तपोभागाश्रमाश्रये ॥ २१९ ॥ सहस्राम्रवनाद्येषु पुरोद्यानेषु भूमिषु । शेषतीर्थकृतां वेद्यं परिनिष्क्रणं वुधैः ॥ २२० ॥ सुदर्शना तु शिविका सुप्रभा तदनंतरा। सिद्धार्थाचार्यसिद्धा च तत्राभयंकरी प्रभा॥ २२१॥ सा निवृत्तिकरी षष्ठी सप्तमी सुमनोरमा। परा मनोहरा सूर्य-प्रभाशुक्रप्रभा परा॥ २२२॥ ततः परेण विज्ञेया शिविका विमलप्रभा । पुष्पाभा देवदत्ताख्या परा सागरपत्रिका ॥ २२३ ॥ नागदत्ताभिधा चान्या चार्ची सिद्धार्थसिद्धिका। विजया वैजयंती च जयंताख्या पराजिता ॥२२४॥ नाम्नोत्तरकुरुश्चान्या दिव्या देवकुरुश्चितिः। विमलाभा च चंद्राभा जिनानां शिविकाः क्रमात् २२५ दक्षा कृष्णनवम्यां तु चैत्रस्य वृषभेशिनः । मुनिसुत्रतदीक्षास्यां वैशाखस्य बभूव सा ॥ २२६॥ वैशाखस्येव शुद्धस्य प्रतिपद्यभिनंद्यते । कुथोर्निष्क्रमणं लोके नवम्यां सुमतेः पुनः ॥ २२७ ॥ द्वादक्यां ज्येष्ठकुष्णस्य त्रयोदक्यां च संक्रमं । अनंतस्य च शांतेश्र परिनिष्क्रणं स्मृतं ॥ २२८॥ द्वादक्यां ज्येष्ठकृष्णस्य सुपार्श्वस्य जिनेशिनः । नमेराषाढकृष्णस्य दशम्यां कथितं हि तत् ॥२२९॥ नेमेः शितचतुथ्यां तु श्रावणस्योपवर्णितं । पद्माभस्य त्रयोदस्यां कृष्णायां कार्तिकस्य तु ॥२३०॥

कृष्णस्य मार्गशीर्षस्य दशस्यां सुमतेस्तु तत् । शुक्लप्रतिपदि प्रोक्तं पुष्पदंतजिनेशिनः ॥ २३१॥ तस्येवारो दशम्यां तु पौर्णमास्यां च संभवः। एकाद्रश्यां तु मल्लीशः परिनिष्क्रमणं श्रितः ॥२३२॥ पीपस्य कृष्णपक्षस्य द्यकाद्भ्यां सुकालजं । क्षेयं निष्क्रमणं चंद्रप्रभपार्श्वजिनेंद्रयोः ॥ २३३ ॥ माधस्य कृष्णपक्षस्य द्वाद्यां शीतलस्य च । विमलस्य सितायां हि चतुष्यीं परिकीर्तितं २३४ अजितस्य नवस्यां त द्वाद्यामाभिनंदनः । धर्मस्य तु त्रयोद्यां परिनिष्क्रमणं मतं ॥ २३५ ॥ फाल्गुनासितपक्षस्य त्रयोद्द्यां जिनेशिनः । श्रेयसो वासुपूज्यस्य चतुर्दश्यां तदीरितं ॥ २३६॥ वर्षेण पारणाद्यस्य जिनेंद्रस्य प्रकीतिता । तृतीयदिवसे अन्येषां पारणा प्रथमा मता ॥ २३७ ॥ आद्येनेक्षरसो दिच्यः पारणायां पवित्रितः । अन्येर्गोक्षीरनिष्पन्नपरमान्नमलालसैः ॥ २३८ ॥ श्रीहास्तिनपुरं रम्यमयोध्या नगरी शुभा । श्रावस्ती च विनीता च पुरं विजयपूर्वकं ॥ २३९॥ पुरं मंगलकं नाम्ना पाटलीखंडसंबकं । पद्मखंडपुरं कांतं तथा श्वेतपुरं परं ॥ २४० ॥ अरिष्टपुरमिष्टं तुं सिद्धार्थपुरमप्यतः । महापुरमतो नाम्ना स्फुटं धान्यवटं पुरं ॥ २४१ ॥ वर्धमानपुरं क्यातं पुरं सीमनसाह्यं । मंदरं हास्तिनपुरं तथा चक्रपुरं मतं ॥ २४२ ॥ मिथिला राजगृहकं पुरं वीरपुरं तथा । पुरी द्वारवती काम्या कृतं कुंडपुरं पुरं ॥ २४३ ॥

चतुर्विशति संख्यानांसंख्यातानि यथाऋमं । जिनानां वृषभादीनां पारणानगराणि तु ॥२४४॥ स श्रेयान् ब्रह्मदत्तश्च सुरेंद्र इव संपदा । राजा सुरेंद्रदत्तोन्य इंद्रदत्तश्च पद्मकः ॥ २४५ ॥ सोमदत्तो महादत्तः सोमदेवश्र पुष्पकः । पुनर्वसुः सुनंदश्र जयश्रापि विशाखकः ॥ २४६ ॥ धर्मसिंहः सुमित्रश्च धर्ममित्रोऽपराजितः । नंदिषेणश्च वृषभदत्तो दत्तश्च सस्रयः ॥ २४७॥ वरदत्तश्च नृपतिर्धन्यश्च वकुलस्तथा । पारणासु जिनेंद्रेभ्यो दायकाश्च त्वमी स्मृताः ॥ २४८ ॥ सर्वेषामादिभिक्षासु दातारोऽपि जिनेशिनां । सर्वासु वर्धमानस्य वसुधारानियोगतः ॥ २४९॥ अर्धत्रयोदशोत्कर्षाद्वसुधारासु कोटयः । तांवत्येव सहस्राणि दशमानि जघन्यतः ॥ २५० ॥ आद्यो द्वी दायको क्यामी ज्ञेयावंत्यो च वर्णतः । क्षेषास्तु दायका सर्वे संतप्तकनकप्रभाः ॥२५१॥ तपस्थिताश्च ते केचित्सिद्धास्तेनैव जन्मना । जिनांते सिद्धिरन्येषां तृतीये जन्मनि स्पृताः॥२५२॥ वृषभम् श्रीशपार्श्वानाम् हमेन चतुर्थतः । जयाजस्य ययुः शेषा पद्मश्या हानिषष्ठतः ॥ २५३॥ बानाप्तिः पूर्वतालेंत्या वृषस्य सकटामुखे । ऊर्जयंते गिरौ नेमेः पार्श्वस्याप्याश्रमांतिके ॥२५४॥ वीरस्य केवलोत्पादः ऋजुकूलासरित्तटे । अन्येषां तु जिनेंद्राणां स्वोद्यानेषु यथायथं ॥ २२५ ॥ वृषमस्य श्रेयसा मल्लेः पूर्वान्हे नेमिपार्श्वयोः । केवलोत्पत्तिरन्येषामपरान्हे जिनेशिनां ॥ २५६ ॥

फाल्गुने कृष्णपक्षस्य त्वेकाद्रयां वृषो भृतः। द्वाद्रयां केवलं मिष्ठः षष्ठ्यां तु सुनिस्रवतः॥२५७॥ सप्तम्यामेव संप्राप्तः पक्षे तत्रैव केवलं । सुपार्श्वजिनचंद्रश्च चंद्रप्रमाजिनस्तदा ॥ २५८ ॥ चतुष्यो चैत्रकृष्णस्य पार्श्वदेवस्य केवलं । अमावास्यामनंतस्य जिनेंद्रस्य तदिष्यते ॥ २५९ ॥ पक्षे सिते तृतीयस्यां नमेः कुंथोश्र केवलं । दशम्यां सुमतेजीतं पद्मप्रभजिनस्य च ॥ २६० ॥ क्केयं वैशाख्युक्लस्य दशम्यां वीरकेवलं । सिते अवयुजि पक्षेऽभूक्षेमेस्तत्प्रतिपद्दिने ॥ २६१ ॥ कार्तिकासितपंचम्यां शंभवस्य सितात्मनि । सुविधस्तु तृतीयस्यां तद्द्वादश्यामरस्य तु॥२६२॥ पुष्यकृष्णचतुर्देश्यां शीतलः केवलं श्रितः । दशम्यां विमलं शुक्ले शांतिरेकादशे दिने ॥२६३॥ अजितोत्र चतुर्दश्यां केवलं प्रत्यपद्यत । अभिनंदनधर्माख्यौ पौर्णमास्यामवाप हु ॥ २६४ ॥ क्वानोत्पत्या त्वमावास्या माघस्य श्रेयसा कृता। श्रेयसी वासुपूज्येन द्वितीया शुक्लपक्षजा ॥२६५॥ माघकुष्णचतुर्देश्यां वृषस्य परिनिवृतिः । फाल्गुनस्यासिते पक्षे चतुर्थ्यां पद्मभासिनः ॥२६६॥ षष्ट्यां सुपार्र्वनाथस्य द्वाद्व्यां मीनिसुब्रतः। सिता फाल्गुनपंचम्यां मक्षिश्रीवासुपूज्ययोः २६७ अमावस्यां तु चैत्रस्य निर्मिताभ्यां पवित्रिता। अनंतारजिनेंद्राभ्यां शुक्लपक्षस्य तु क्रमात्।।२६८॥ पंचम्यामाजितः पष्ट्यां संभवः परिनिर्वृतः । दश्चम्यां सुमतिनीथः सुरनाथगणस्तुतः ॥ २६९ ॥

वैशाखस्यापुनात्सिद्धचा निमः कृष्णचतुर्दशी । सितां प्रतिपदं कुंथुः सप्तमीमभिनंदनः ॥२७०॥ शांतेः सिद्धितिथिः सिद्धा ज्येष्टकृष्णचतुर्दशी । तस्य शुक्लचतुर्थीतु धर्मस्य प्रतिपादिता ॥२७१॥ आषाढकुष्णपक्षस्य विमलस्याष्ट्रमी मता । नेमेः शुक्लाष्ट्रमी मान्या निर्वाणतिथिरिष्यते ॥२७२॥ श्रावणे शुक्लसप्तम्यां पार्श्वस्य परिनिर्वृतिः । श्रेयसः पौर्णमास्यां तु धनिष्टासु प्रतिष्ठिता ॥२७३॥ चंद्राभः ग्रुक्लसप्तम्यां सिद्धो भाद्रपदस्य तु। अष्टम्यां पुष्पदंतोऽस्य शीतलोऽश्वयुजस्य तु।।२७४॥ निर्वतः सितपंचम्यां कृष्णायां परिनिर्देतिः। श्रीवीरस्य चतुर्दश्यां कार्तिकस्य विनिश्चिता ॥२७५॥ वृषे। जितो अपि च श्रेयान् शीतलश्राभिनंदनः । सुमतिश्र सुपार्श्वश्र पूर्वान्हे चंद्रभस्तथा ॥२७६॥ संभवः पद्मभासश्च पुष्पदंतो भवांतकः । अपरान्हे जिनाः सिद्धा वासुपूज्यजिनस्तथा ॥२७७॥ विमलानंतशांतीनां कुंथोर्मल्लीशविंशयोः । प्रदोषसमये ज्ञेया निवृतिर्नेमिपार्श्वयोः ॥ २७८ ॥ धर्मस्यारजिनेंद्रस्य निमवीरजिनेंद्रयोः । प्रत्युषे सिद्धिरुदिष्टा नष्टाष्टविधकर्मणां ॥ २७९ ॥ वृषस्य वासुपूज्यस्य नेमेः पर्यक्षंधतः । कायोत्सर्गस्थितानां तु सिद्धिः शेषजिनेशिनां ॥ २८०॥ चतुर्दशिदनान्यद्याः संहत्य विहतिं जिनः । वीरोहर्द्वितयं शेषा मासं संहत्य मुक्तिगाः ॥२८१॥ वीरस्येकस्य निर्वाणः पर्द्वित्रतिसहितस्य तु।पार्श्वस्य सह नेमः पर्त्रिशता पंचिमः शतैः ॥२८२॥ माल्लिः पंचर्रातेः सिद्धः शांतिनेवशतेः सह । सैकैरष्टशतैर्धर्मो द्वादशः सेकषद्शतैः ॥ २८३ ॥ सहसैर्विमलः वर्शिरनंतस्तैस्तु सप्ताभिः । सप्तमः पंचशत्यामा पद्माभोष्टशतैस्त्रिभिः ॥ २८४ ॥ वृषो दशसहस्रेस्तु मुनिभिर्मुक्तिमाश्रितः। प्रत्येकं तु जिना शेषाः सहस्रेण समन्विताः ॥२८५॥ भरतश्रक्रवत्यीद्यः सगरो मघवांस्ततः । सनत्कुमारनामान्यः श्वातिः कुंथुररस्तथा ॥ २८६॥ सुभमश्र महापद्मो हरिषेणो जयोऽपरः । ब्रह्मदत्तश्र पद्खंडनाया द्वादशचिक्रणः ॥ २८७ ॥ त्रिपृष्टश्च द्विपृष्टश्च स्वयंभुः पुरुषोत्तमः । पुरुषोपपदौ सिंहपुंडरीकौ प्रचंडका ॥ २८८ ॥ दत्तो नारायणो कृष्णो वासुदेवा नवोदिताः। त्रिखंडभरताधीशाः पराखंडितपौरुषाः ॥२८९॥ विजयोऽचलः सुधर्माख्यः सुप्रभश्र सुद्र्शनः । नांदी च नंदिमित्रश्च रामः पद्मो बला नव ॥२९०॥ अश्वप्रीवो भूवि ख्यातस्तारको मेरुकस्तथा । निशुंभः शुभदंभोजवदनो मधुकैटभः ॥ २९१ ॥ बिल: प्रहरणाभिक्या रावणः खेचरान्वयाः । भूचरस्तु जरासंघो नवैते प्रतिशत्रवः ॥ २९२ ॥ ऊर्ष्वगा बलदेवास्ते निर्निदाना भवांतर। अधोगाः सनिदानास्तु केशवाः प्रतिशत्रवः ॥२९३॥ ष्टपमे मरतश्रकी सगरोप्याजिते जिने । मधवांस्तुर्यश्रकी च धर्मशांत्यंतरे मतौ ॥ २९४ ॥ निजं जिनांतरं द्वेयं शांतिकुंध्वरचिक्रणां । चक्रवर्ती सुभूमोऽभूदरमञ्जिजनांतरे ॥ २९५ ॥

म्रुनिसुत्रतमल्ल्यंतर्महापद्मः प्रकीर्तितः। म्रुनिसुत्रतनम्यंतर्हरिषेणस्तु चक्रभृत् ॥ २९६ ॥ निमनेम्यंतरे चक्री जयसेनोऽभवत्ततः । ब्रह्मदत्तोऽपि निर्दिष्टो नेमिपार्श्वजिनांतरे ॥ २९७ ॥ अष्टानां सिद्धि इद्दिष्टा ब्रह्मदत्तसुभूमयोः । सप्तमीं मधवांस्तुर्यो तृतीयं कल्पमाश्रितौ ॥ २९८ ॥ श्रेयः प्रभृतिधर्मातान् पंचापश्यन्वलोजितान् । त्रिपृष्ठाद्या नृसिंहाताः पंचसंख्यास्तु केशवाः॥२९९॥ पुंडरीकोऽरमल्यंतर्वासुदेवः प्रकीर्तितः । मुनिसुत्रतमल्यंतर्दत्तनामा तु केशवः ॥ ३०० ॥ म्रुनिसुव्रतनम्योस्तु मध्ये नारायणः स्मृतः । प्रत्यक्षं वंदको नेमेः कृष्णः पद्मसमन्वितः ॥३०१॥ एकस्य सप्तमी पृथ्वी पंचानां षष्ठणुदीरिता । पंचम्येकस्य चान्यस्य पर्यतस्य तृतीयभूः।।३०२॥ अष्टानां मुक्तिरुद्दिष्टा बलानां तु तपोबलात् । अंतस्य ब्रह्मकल्पस्तु तीर्थे कृष्णस्य सेत्स्यतः ॥३०३॥ धनुःशतानि पंचाद्ये हानिः पंचशतोष्ट्स । दशानां पंचसु प्रोक्तां पंचानामष्टसु क्षयः ॥३०४॥ उत्सेघः पार्श्वनाथस्य नवारित्नमितस्ततः । वीरस्यारत्नयः सप्त जिनोत्सेधः ऋमाद्यं ॥३०५॥ पंच चापशतान्याद्ये चिक्रण्युत्सेघ इष्यते । चतुःशतानि सार्धानि धन्ंषि सगरस्य तु ॥३०६॥ द्वाचत्वारिंशदिष्टानि सार्धानि तु धनूंष्यतः । सार्धेनैकेन युक्तानि चत्वारिंशद्धनूंषि तु ॥ ३०७॥ चत्वारिश्वदयोक्तानि पंचमस्य तु चिक्रणः । पंचित्रशत्त्वस्थिश्वदष्टाविश्वतिरष्टमे ॥ ३०८ ॥

हितमः सर्गः ।

द्वाविंशतिर्महापद्मे विंशतिश्र चतुर्दश। ततः सप्त धन्ंषि स्यादुत्सेधश्रक्षवितनां ॥ ३०९॥ अशीतिः सप्ततिःषष्टिः पंचाश्रत्पंचभिः सह । चत्वारिंशद्धनूषि स्युः षड्विंशतिस्ततः परः ॥३१०॥ द्वाविंशतिस्तथोक्तानि षोडशापि दशैव तु । उत्सेषो वासुदेवानां बलदेवप्रतिद्विषां ॥ ३११ ॥ आयुश्रत्रशीतिश्र पूर्वलक्षा जिनेशिनां । द्वासप्ततिश्र पष्टिश्र पंचाश्रच ययाक्रमं ॥ ३१२ ॥ चत्वरिशत्तथा त्रिंशद्विंशतिश्र दशैव ताः। लक्षे लक्षं च पूर्वाणां दशानामायुरीरितं ॥ ३१३॥ वर्षलक्ष्यास्ततो लक्ष्या अशीतिश्रतुरुत्तरा । द्वासप्ततिस्ततः पष्टिश्चिशदश तथैककं ॥ ३१४ ॥ ततो वर्षसहस्राणि सपंचनवतिश्व तु । अशीतिः पंचपंचाशित्रशहश तथैककं ॥ ३१५ ॥ ततो वर्षशतं पूर्णं द्वासप्तितिरिति क्रमात् । जिनानामायुराख्यातमायुर्वृद्धं करोतु वः ॥ ३१६ ॥ लक्षायतुरशीतिस्तु द्वासप्ततिरितिकमात् । पूर्वीणां वर्षलक्षास्तु पंचन्येकाः प्रपंचिताः ॥ ३१७॥ ततो वर्षसहस्राणि नवतिः पंचिमिर्युता । तथा चतुरशीतिः स्यादष्टाषष्टिस्ततः पुनः ॥ ३१८॥ त्रिशत षड्गितिस्त्रीणि वर्षसप्तशतानि च। आयुःप्रमाणमेतनु कथितं चक्रवर्तिनां ॥ ३१९॥ वर्षाणां चतुरशीतिर्रक्षा द्वासप्ततिस्ततः । पष्टिस्त्रिशहशातोऽपि पंचपष्टिसहस्रकं ॥ ३२०॥ द्वात्रियद्द्वादशैकं च प्रोक्तं वर्षसहस्रकं । केशवानां यथासंख्यमायुः संख्याविदां सता ॥३२१॥

आयुर्लक्षा बलानां स्युः सप्ताशीतिश्र सप्ततिः । सप्तोत्तरा तथा पष्टिः पंचत्रिशद्य क्रमात्।।३२२।। षष्टिर्वर्षसहस्राणि त्रिंशदश च सप्ताभिः । द्विशत्याब्दसहस्रं तु तचरमस्य बलस्य तु ॥ ३२३॥ वृषाद्याः धर्मपूर्यता जिनाः पंचदश क्रमात् । निरंतरास्ततः शून्ये त्रिजिनाश्शून्ययोर्द्वयं ॥३२४॥ जिने शून्यद्वयं तस्माज्जिनः शून्यद्वयं पुनः । जिने शून्यं जिनः शून्यं द्वौ जिनेंद्रौ निरंतरौ ॥३२५॥ चिक्रणौ भरताद्यो द्वी तौ शून्यानि त्रयोदश। षर चिक्रणस्त्रिशून्यानि चक्री शून्यं च चक्रभृत् ३२६ ततः शून्यद्वयं चक्री शून्यं चक्रधरस्ततः । शून्ययोद्धितयं तस्मादिति चक्रधरक्रमः ॥ ३२७ ॥ शून्यानि दशपंचातिस्त्रपृष्टाद्यास्तु केशवाः । शून्यषद्कं ततश्रीकः केशवो व्योमकेशवः ॥३२८॥ त्रिशून्यं केशवश्रेकः शून्यद्वितयमप्यतः । केशवस्त्रीणि शून्यानि केशवानामयं ऋमः ॥ ३२९ ॥ पादः कुमारकालः स्यादायुषो वृषभस्य सः। नयूनः संयमकालस्य राज्यकालस्ततोऽपरः।।३३०।। पादोष्ट्रादशसंख्यानां पूर्णः शेषजिनेशिनां । कुमारकालः शेषस्य राज्यसंयमकालता ॥ ३३१ ॥ कुमाराणां जिनानां तु संयमानेहसोज्झितः । आयुः कालः सकुमारः पंचानामपि वर्ण्यते ॥३३२॥ जिनसंयमकालस्तु पूर्वलक्षाथ सोज्झिता । पूर्वागन चतुर्भिश्व ह्यष्टाभिद्वादेशांगकैः ॥ ३३३ ॥ ततः षोडशभिद्दींनो विंशन्या तु ततः परं । चतुर्विंशतिपूर्वागैरष्टाविंशतिसंख्यकैः ॥ ३३४ ॥

दशानामायुषः पादः पादोनो द्वादशस्य सः । मह्हेर्वर्षशतेनोनो नेमेर्वर्षशतैस्त्रिभिः ॥ ३३५ ॥ त्रिशद्वर्षविहीनस्तु प्रत्येकं पार्श्ववीरयोः । द्वेषा संयमकालोयं छात्रस्थः केवली स्थितः ॥३३६॥ व्षछग्रस्थकाले। त्र स्यात्सहस्रवर्षाण्यतः । द्वादशाब्दानि पूर्णानि स्युर्वेषाणि चतुर्दश ॥३३७॥ ततोष्टादशवर्षाणि विश्वतिस्तु ततः परे । षण्मासा नव वर्षाणि त्रिचतुस्तिद्विमासकाः ॥३३८॥ एकत्रिद्वचेकमासाश्च वर्पाणि त्रिश्च पोडश । पडेकादशसंख्याहर्मासा वर्षाण्यतो नव ॥ ३३९ ॥ षर्पंचाश्रदिनानि स्युमीसाश्रत्वार एव च । वर्गणि द्वादशैवातः परं केवलिनो जिनाः ॥३४०॥ आद्यस्य गणिनो भर्तुरशीतिश्रतुरुत्तरा । नवीतः पंचसंयुक्तं शतंत्र्युत्तरमप्यतः ॥ ३४१ ॥ शतमेव पुनर्जेयं पोडशैकादशाधिकं । पंचीत्तरा च नवतिस्त्युत्तरा नवतिस्तथा ॥ ३४२ ॥ ततेष्टिकादशाशीतिः सप्तितः सप्तिर्भिता । पर पष्टिः पंच पंचाशत्पंचाशच ततः परं ॥ ३४३ ॥ त्रिचत्वारिंशदेवातः षट्त्रिंशत्त्रिशदन्विता । पंचिमिस्त्रिशदप्यस्मादष्टाविंशतिरेव तु ॥ ३४४ ॥ अष्टादशगणाधीशास्तथा सप्तदश क्रमात् । एकादश दशैव स्युरकादश च ते पुनः ॥३४५॥ आचस्याद्यो गणी नाम्ना सेनांतो वृषभः प्रभोः । सिंहसेनस्ततोष्यन्यश्रारुदत्त इतीरितः ॥३४६॥ वज्रश्च चमरो वज्रचमरो बालेदत्तकौ । वैदर्भाश्चानगारश्च कुंथुश्चापि सुधर्मकः ॥ ३४७ ॥

मंदरायों जयोरिष्टसेनश्रकायुधस्ततः । स्वयंभूः कुंथुनामा च विशाखो मिह्नसोमकौ ॥ ३४८ ॥ वरदत्तः स्वयंभुः स्यादिद्रभूतिर्गणप्रभुः । ऋदिभिः सप्तभिर्युक्ताः सर्वे ते श्रुतपारगाः ॥३४९॥ वीरस्यैकस्य निष्कांतिस्त्रिश्तर्वेमिष्ठिपार्श्वयोः । षडुत्तरैः शतैः षड्भिर्वासुपूज्यजिनस्य तु ॥३५०॥ चतुःसहस्रसंख्यानैर्निष्कांतो वृषमो नृषः । सहस्रपरिवारास्तु प्रत्येकमितरे जिनाः ॥३५१॥ चतुर्भिरिधकाञ्चीतिः सहस्राणि वृषस्य तु । लक्षं लक्षे त्रिलक्षाश्र द्विस्निलक्षाः सहस्रकैः ॥३५२॥ विंशत्या त्रिंशता युक्तास्तास्तु लक्षात्रयं ततः । सार्धलक्षे पुनर्लक्षे लक्षाशीतिश्रतुर्युता ॥३५३॥ सहस्रगुणिता सा तु द्वासप्ततिरपीट्यी । अष्टाषष्टिश्च पर्षष्टिश्चतुःषष्टिसहस्रकं ॥३५४॥ द्वाषष्टिश्र सहस्राणि षष्टिः पंचाशदेव च । चत्वारिंशत्सहस्राणि त्रिंशद्विशतिरेव तु ॥३५५॥ अष्टादश्वसहस्राणि षोडशापि चतुर्दश । सहस्राणि यथासंख्यं गणसंख्या जिनेशिनां ॥३५६॥ संघः सप्तविधः पूर्वधरशिक्षकभेदतः । सावधिः केवली वादी विकिया विपुलायुताः । ३५७॥ स्युअत्वारि सहस्राणि तथा सप्तशतानि च । पंचाशच वृषस्यामी सर्वे पूर्वधरा विभोः ॥३५८॥ चतुः सहस्रगणनाः शतं पंचाशदुत्तरं।शिक्षकाः सावधिज्ञानाः सहस्राणि नव स्मृताः ॥३५९॥ विञ्वतिस्तु सहस्राणि पूज्याः केवलिनः सर्ता। सहस्राण्येव तावंति पद्श्वतानि च वैक्रियाः ॥३६०॥

स्यद्वीदशसहस्राणि मत्या विपुलया युताः। शतानि सप्तपंचाशत्तत्संख्यावादिनोऽपि च ॥३६१॥ अजितस्य सहस्राणि त्रीणि सप्तशतानि च । पंचाशच सतां सेन्याः सभ्यानां पूर्वघारिणः ॥३६२॥ शिक्षकाः षद्यतैः सार्धे सहस्राण्येकविश्वतिः। चतुःश्वत्या सहस्राणि नव सावधयो मताः ॥३६३॥ स्युर्विशतिसहस्राणि केवलाप्तासु वैक्रियाः । ज्ञेषास्तावत्सहस्राणि पंचाशच चतुःशती ॥३६४॥ द्वादशैव सहस्राणि प्रत्येकं च चतुःशती । मत्या विपुलया युक्ता वादिनो हितवादिनः ॥३६५॥ संयमस्य सहस्रे द्वे शतं पंचाशता समं । पूज्याः पूर्वभृतो श्रेयाः पूर्वसन्त्राववेदिनः ॥३६६॥ एकोन्त्रिश्वतालक्षो सहस्रेस्थिततानि च।संख्याशिक्षकसाधूनां संख्याताः प्रश्रया स्मृताः ॥३६७॥ षद शतानि सहस्राणि नव सावधयः स्पृताः। तथा दशसहस्राणि पंचिभः केवलाश्रिताः ॥३६८॥ तथैवैकोनविश्वत्या सहस्र्रष्टिभः शतैः । पंचाशद्वैक्रियाः प्रोक्ता विक्रियाशक्तिधारिणः ॥३६९॥ द्याभ्यां दशसहस्राणि विपुलां मतिमाश्रिताः। शताधिकानि तावंति सहस्राणि च वादिनः।३७०। शतानि पंच तुर्यस्य द्वे सहस्रेथ पूर्विणः । द्विलक्षे शिक्षकास्त्रिशत्सहस्राण्यार्द्धतं शतं ॥३७१॥ शतान्यष्टी सहस्राणि नवैवावधिवीक्षणाः । पोडशेव सहस्राणि मुनयः केवलेक्षणाः ॥३७२॥ एकामविश्वतिर्ह्मेया सहस्राणि तु वैक्रियाः । एकादशसहस्राणि पंचाशत्पद्शतानि च ॥३७३॥

विपुलोपगता ये ते बोद्धच्या भव्यदेहिनां । बादिनोऽपि च तावंति सहस्राणीष्टवादिनः ॥३७४॥ सुमतेर्द्वे सहसे तु चतुः शत्यि पूर्विणः । द्वे लक्षे शिक्षका दश्याश्रतुः पंचा शदेव च ॥३७५॥ सहस्राण्यभियुक्तानि पंचाशच शतत्रयं । एकादशसहस्राणि विमलावधयस्तथा ॥३७६॥ त्रयोदशसहस्राणि केवलज्ञानदृष्टयः । अष्टादशसहस्राणि चतुःशत्यपि वैक्रियाः ॥३७७॥ दृश्या दृशसहस्राणि विपुलाप्ताश्रतुःशती । तावंतो वादिनस्तेभ्यः सर्वे पंचाशताधिकाः॥३७८॥ पद्माभस्य सहस्रे द्वे शतानि त्रीणि पूर्विणः । लक्षे द्वे शिक्षकाः षष्टिसहस्राणि नवापि च ॥३७९॥ क्षेया दशसहस्राणि मुनयोऽवधिलोचनाः । द्वादशाष्ट्रशतैर्युक्ताः सद्दसाण्याप्तकेवलाः ॥३८०॥ षोडशैव सहस्राणि त्रिशती वैकिया नव । वादिनो विपुलाप्ताः षट् शत्यामा दश तानि वै ॥३८१॥ द्वे सहस्रे सुपार्श्वस्य त्रिंशता पूर्विणश्रतः । चत्वारिंशत्सहस्राणि लक्षे नवशतैः सह ॥३८२॥ शिक्षका विश्वतिः प्राप्ताः सहस्राणि नवावधि । एकादश सहस्राणि त्रिश्वती केवलान्विताः ॥३८३॥ शतं पंचाशता पंच सहस्राणि दशापि च । वैक्रियाविपुलाद्याः पर् शती नवसहस्रकैः ॥३८४॥ वादिनोष्टसहस्राणि ततश्रंद्रप्रभस्य तु । पूर्विणो द्वे सहस्रे तु शैक्षालक्षे चतुःशती ।। ३८५ ॥ संघावष्टसहस्राणि पृथक् सविपुलावधी । देशकेवलिनस्तानि वैक्रियास्तु चतुःश्वती ॥ ३८६ ॥

ब्रेयाः सप्त सहस्राणि षट् शतानि च वादिनः । सुविधेः पूर्विणः पंच दश्चशत्यपवर्णिता ॥३८७॥ लक्षेका पंच पंचाशत्सहस्राणि शतानि च। पंच शिक्षकसाधूनामविधज्ञानिनोष्ट तु ॥ ३८८॥ सहस्राणि चतुःशत्या पंचशत्या तु सप्त वे । सहस्राण्याप्तकैवल्याः स्युस्त्रयोदश्वेकियाः ॥३८९ ॥ पट् सहस्राणि विपुलां पंचशस्या मतिं श्रिताः । वादिनः पट् शतैः सप्त सहस्राणि विनिश्चिताः ॥३९०॥ शीतलस्य चतुःशत्या सहस्रं पूर्ववेदिनः । द्विशत्येकाश्वषष्टिस्त सहस्राणि सुशिक्षकाः ॥ ३९१ ॥ द्विशत्या सावधिः संधसहस्राणि हि सप्त सः। सप्तकेवलिनस्तानि द्वादशैतानि वैक्रियाः ॥३९२॥ पंचशत्या सहस्राणि सप्तेते विपुलेश्वराः । सप्तशत्या सहस्राणि पंच सहादवादिनः ॥३९३ ॥ त्रयोदश शतानि स्यः पूर्विणः श्रेयसोऽष्टभिः। चत्वारिंशत्सहस्राणि द्विशती शैक्षसाधवः॥३९४॥ सावधिः षट् सहस्राणि गणः केवलिनामपि । पंचशत्या सहस्राणि तथैकादश वैक्रियाः॥३९५॥ ततोन्ये षद् सहस्राणि पंच तानि ततः परे । शतानि द्वादशैव स्युर्वासुपूज्यस्य पूर्विणः ॥३९६॥ द्विश्वत्या शिक्षकास्त्रिशत्सहस्राणि नवापि च । चतुःशत्या सहस्राणि पंच सावधयो मताः॥३९७॥ सर्वज्ञाः पर सहस्राणि वैक्रियाः दश पर् परे।वादिनस्तु सहस्राणि चत्वारि द्विशती तथा ॥३९८॥ शतान्येकादश क्रेया विमलस्य तु पूर्विणः । अष्टात्रिशत्सहस्राणि पंचशत्या तु श्रेक्षकाः ॥३९९॥ अष्टाश्वत्या सहस्राणि चत्वार्यविधलोचनाः । पंचश्वत्या सहस्राणि पंच केवलिनो नव ॥४००॥ वैकियाय सहस्राणि ततोन्ये केवलिप्रमाः। बादिनिस्त्रिसहस्री च पद् शती च विनिश्चिता ॥४०१॥ पूर्विणोऽनंतनाथस्य सहस्रगणनाः स्पृताः । पंचशत्या सहस्राणि त्रिशकाव च शिक्षकाः॥४०२॥ स्याचत्वारि सहस्राणि त्रिशत्या सावधिर्गणः । अन्ये पंचाष्ट्रपंचत्रिसहस्रान्यंतगे शते ॥ ४०३ ॥ शतानि नव धर्मस्य पूर्विणः शिक्षकाः पुनः । चत्वारिंशत्सहस्राणि तथा सप्तशतानि च ॥४०४॥ षद् शतानि सहस्राणि त्रीणि सावधयः स्मृताः। पंचशत्या सहस्राणि चत्वारि सकलेश्वणाः॥४०५॥ संतः सप्तसहस्राणि वैक्रिया विपुलान्विताः । पंचशत्या तु चत्वारि द्विसहस्रचष्टशस्यतः॥४०६॥ पूर्विणो अष्टशती शांतेरष्टशत्यात्र शिक्षकाः । चत्वारिंशत्सहस्थेकं त्रिसहस्रीगणः परः ॥ ४०७ ॥ चत्वारि षद् चत्वारि द्वे सहस्रे चतुः जाती । कुंथोस्तु सप्तगत्येव पूर्विणः शिक्षकाः पुनः ॥४०८॥ चत्वारिंशत्सहस्राणि त्रीणि पंचशता शतं । सावधिः पंचशत्या तु द्वे सहस्रे गणो मतः ॥४०९॥ त्रिसहस्री द्विशत्या तु गणः केवलिनां स्मृतः। शतेकं वैक्रियाः पंच सहस्राणि च संमताः॥४१०॥ त्रिशत्या त्रिसहस्री तु पंचाशद्विपुलेश्वराः । वादिनां जितवादीनां सहस्रद्वितयी मता ॥ ४११॥ पूज्यः पूर्वभृतोरस्य षट्शती तु दशोत्तरा । श्रेक्षास्तु पंचाप्रत्रिंशत्सहस्रैरष्टभिः शतैः ॥ ४१२ ॥

पंचित्रशन्मताः सर्वे सावधिः परिषत्पुनः । सकेवलावधिर्द्भया द्विसहस्वष्टशत्यपि ॥ ४१३ ॥ वैक्रियास्तु सहस्राणि चत्वारि त्रिशती तथा । सहस्रे पंच पंचाशनमत्या विपुलयान्विताः ४१४॥ शतानि पोडशैव स्युवीदिनः पदुवादिनः । मल्लेस्तु पूर्विणः सर्वे पंचाशत् सप्तशत्यि ॥ ४१५॥ एकाम त्रिंशदुहिष्टाः सहस्राणि तु शिक्षकाः । द्वाविंशतिः शतानि स्युर्मुनयोऽविध्यक्षपः ॥४१६॥ सहस्रे षट् च शत्यामा पंचाशच सकेवला । चतुः शत्या सहस्रं तु वैक्रिया यतयो मताः ॥४१७॥ द्वे सहस्रे भते द्वे च मता विपुलबुद्धयः । तावंत एव जेतारो वादिनः प्रतिवादिनां ॥ ४१८ ॥ मुनिसुव्रतनाथस्य पूर्विणः पंचशत्यभूत् । शिक्षका शिक्षमा युक्ता सहस्राष्येकविंशतिः ॥४१९॥ अष्टाद्य शतान्येव मताः सावधिलोचनाः। द्वाविशतिः पंचदश द्वादशैतान्यतः परे ॥ ४२०॥ पंचाश्चता शतानि स्युश्चत्वारि निमपूर्विताः। षद्भिः शतैः सहस्राणि द्वादशैव तु शिक्षकाः॥४२१॥ श्वतानि बोडरा ख्याताः केवलावधिलोचनाः । वैक्रियास्त् श्वतानि स्युस्तथा पंचदशैव तुः।४२२॥ शतानि द्वादश प्रोक्ताः पंचाशद्विपुलेक्षणाः । सहस्रपरिमाणास्तु वादिनः प्रतिवादिनां ॥४२३॥ चतुःशतानि नेमस्तु पूर्विणः शिक्षकाः स्मृताः । एकादश सहस्राणि शतेरष्टभिरेव तु ॥ ४२४ ॥ सकेवलावधी संघी सहस्रं पंचशत्यपि । सहस्रं विकियाश्चापि शतं च शुभवैकियाः ॥४२५॥

शतानि नव विज्ञेयाः शांता विमलबुद्धयः। वादिनोष्टौ शतानीह निःप्रतिप्रतिभान्विताः ॥४२६॥ पंचाशित्रशती चापि स्युः पार्श्वस्य तु पूर्विणः। शैक्षा दश सहस्राणि शतानि नव च स्मृताः ४२७ चतुःशस्या सहस्रं तु निर्मलाविधवोधनाः । सहस्रं केवलालोका वैक्रियाश्च तथा मताः ॥४२८॥ शतानि सप्त पंचाद्विमलामलबुद्धयः । वादिनः षट् शतानि स्युवीदन्यायविधौ बुधाः ॥४२९॥ वर्धमानजिनेंद्रस्य त्रिशती पूर्वधारिणः । शैक्षा नव सहस्राणि शतानि च नवोदिताः ॥ ४३०॥ त्रयोदश शतानि स्युरवधिज्ञानिनः परे । ये सप्त नत्र पंच स्युश्रत्वारि च शतानि वै ॥ ४३१ ॥ आर्थास्तिस्रोऽभवँ छक्षा जिनपंचकसंसदि । पंचाशद्विंशतिस्त्रिशत्त्रिशत्त्रिशत्त्रहस्रकैः ॥ ४३२ ॥ चतस्रो विदिता लक्षाः पद्माभस्य सभांतरे । विंशतिश्र सहस्राणि सहस्राणि वरोचिषां ॥४३३॥ तिस्रस्त्रिश्वत्सहस्राणि सप्तमस्य सभांबुधी। ततः परं त्रयाणां तास्तिस्रोऽशीतिसहस्रकैः ॥४३४॥ स्याद्विंशतिसहस्रेस्तु लक्षेकान्यस्य संसदि । एका लक्षा त्रयाणां च पर्तिकाष्ट्रसहस्रकैः ॥४३५॥ स्युद्रीषष्टिसहस्राणि धर्मस्यापि चतुःशती । शांतेः पष्टिसहस्राणि शतानां त्रितयं तथा ॥४३६॥ कुंथोः पष्टिसहस्राणि पंचाशच शतत्रयं । पुनः पष्टिसहस्राणि जिनस्यारस्य संसदि ॥४३७॥ मछेस्तु पंच पंचाशत्सहस्राणि सभांतरे । सहस्राण्येव पंचाशन्मुनिसुव्रतसंसदि ॥४३८॥

चत्वारिंशतसहस्राणि नमेः पंचोत्तराणि ताः । चत्वारिंशतसहस्राणि नेमेः सद्सि ताः स्मृताः ॥४३९॥ अष्टात्रिंशत्सहस्राणि त्रयोविंशस्य संसदि । पंचत्रिंशत्सहस्राणि चतुर्विंशस्य सम्मताः ॥४४०॥ तिस्रोष्टानां पृथग्लक्षा जिनानां श्रावकाः स्मृताः । द्वे लक्षे च ततो छ।नां लक्षाष्टानां मता ततः ।४४१। पंचलक्षास्त्रयाष्ट्रानां संसदि श्राविकाः स्मृताः। चतस्रस्तास्ततोष्ट्रानां तिस्रोष्ट्रानां जिनेशिनां ।४४२। सिद्धाः पष्टिसहस्राणि नवशत्या वृषस्य ते । सप्तसप्ततिरन्यस्य सहस्राणि शतान्विताः ॥४४३॥ शिक्षा लक्षा तृतीयस्य सहस्राणि च सप्ततिः । शतं चातः श्वतं लक्षे सहाशीतिसहस्रकैः ॥४४४॥ तिस्रो लक्षाः सहस्रं च पद्शतानि ततस्ततः। त्रयोदशसहस्राणि तिस्रो लक्षाश्र पद्शती ॥४४५॥ पंचाशीतिसहस्राणि द्वे लक्षे पर्शती ततः । चतुस्त्रिशत्सहस्राणि द्वे लक्षे च ततः परं ॥४४६॥ लक्षेकेन विनाशीतिः सहस्राण्यपि पर्शती । ततो श्रीतिसहस्राणि पर्शतानि च निर्वताः ॥४४७॥ पंचषष्टिसहस्राणि श्रेयसः पर्शती यथा । चतुः पंचाशदेव स्यात्सहस्राण्यपि षर्शती ॥४४८॥ सहस्राण्येकपंचाशत् त्रिशती विमलस्य तु । अनंतस्यापि तावंति सहस्राण्येव केवलं ॥४४९॥ धर्मस्यैकान्नपंचाशत सहस्री सप्तशत्यपि। चत्वारिशत्ततोष्टी च सहस्राणि चतुःशती ॥४५०॥ चत्वारिश्वत्सहस्राणि पद चाष्टी च शतान्यतः। सप्तत्रिंशत्सहस्राणि द्विशत्यारजिनस्य तु ॥४५१॥

अष्टशत्या सहस्राणि ततोष्टार्विशतिस्तथा। एकाकार्विशतिस्तस्मात्सहस्राणि शतद्वयं ॥४५२॥ नमेनेव सहस्राणि षद शतानि च निर्वृताः । नेमेरष्टां सहस्राणि षट् सप्त द्वेशते द्वयोः ॥४५३॥ यदैव केवलोत्पत्तिः षोडञ्चानां जिनेशिनां । तदैव तेषां शिष्याणां सिद्धिः केषांचिदिष्यते ॥४५४॥ एकद्वित्रिकषण्मासैरन्येषां शिष्यनिर्वृत्तिः । एक-द्वि-त्रिचतुर्वर्षेरपरेषां विनिश्चिता ॥४५५॥ त्रिविंशतिसहस्राणि पंचानां द्वादशैव तु । तान्येकादश पंचानां पंचानां दश तान्यतः ॥४५६॥ अष्टाशीति शतान्येव शिष्याः पंचजिनेशिनां। षद्र सहस्राणि वीरस्य शिष्यास्तेनुत्तरोद्धवाः ॥४५७॥ ऊर्ध्वेष्रेवेयकांतासु सौधर्मादिषु भूमिषु । शतं त्रीणि सहस्राणि बभूबुईषाशिष्यकाः ॥ ४५८ ॥ एकान्तित्रिसहस्राणि द्वितीयस्य दिवं गताः। नवान्यस्य सहस्राणि शिष्या नवशतीयुताः ॥४५९॥ नवशत्या सहस्राणि तुरीयस्य तु सप्त वै । ततश्रतुःशतीयुक्ता पर्सहस्री दिवंगता ॥४६०॥ ततश्रद्धःसहस्राणि चतुःशत्यान्वितानि तु । द्विसहस्री चतुःशत्यातः सहस्रचतुष्टयी ॥४६१॥ ततो नव सहस्राणि सहितानि चतुःशतैः । ततोष्टी सप्त पद्वापि सहस्राणि चतुःशतैः ॥४६२॥ ततः पंचसहस्राणि सप्तशत्या ततोऽपि च । पंचैत्र तु सहस्राणि चत्वारि त्रिशतैस्ततः ॥४६३॥ ततसीणि सहस्राणि शर्तः षड्भिस्ततः पुनः। त्रीण्येव तु सहस्राणि द्विशते च दिवंगताः ॥४६४॥

सहस्रद्धितयं चातो द्वयोरष्ट चतुःशतैः । द्वे सहस्रे ततोन्यस्य सहस्रं पर् शतान्यतः ॥ ४६५ ॥ द्विशत्यातः सहस्रं हि सहस्रं केवलं ततः। अष्टी शतानि वीरस्य शिष्यास्ते स्वर्गगामिनः॥ ४६६ ॥ कोटीलक्षास्तु पंचाशस्त्रिसद्दश नवान्धयः । नवतिश्व सहस्राणि नवतिश्व शतान्यपि ॥ ४६७ ॥ तथा नवशतान्येव नवतिर्नवकोटयः । जिनानां दृषभादीनामंतराणि नव ऋमात् ॥ ४६८ ॥ षर्षष्टिवेर्षलक्षामिः षड्यितिसहस्रकैः । विहीनान्द्यतेनाव्यिः कोटीद्शमनंतरं ॥ ४६९ ॥ चतुःपंचाशदेवातिस्त्रश्मव च सागराः । चत्वारस्ते त्रयस्तृनािस्त्रचतुर्भागपत्यकैः ॥ ४७० ॥ पल्यार्थं च चतुर्भागो द्दीनकोटीसद्दस्यकः । कोटीसद्दस्यमब्दानां चतुर्लक्षाः शतार्थगाः ॥४७१॥ षद लक्षाः पंचलक्षाश्र त्रयोऽशीति सहस्रकैः । सार्धसप्तशतान्यर्धतृतीये च शते मते ॥ ४७२ ॥ वर्षमानजिनेद्रस्य सहस्राण्येकविंशतिः । तीर्थकालस्तु तावंति सहस्राण्यतिदुःषमः ॥ ४७३ ॥ आदावष्टी तथांतेष्टावन्युन्छिमानि पोडश । मध्ये तु सप्ततीर्थानि न्युन्छिमानीह भारते॥४७४॥ पादः परुषस्य परुषार्धे त्रिपादी परुषमेव तु । त्रिपाद्यर्धं च पादश्र व्युच्छेदानेहसः क्रमात् ॥४७५॥ आदितः सप्ततीर्थेषु केवलश्रीनिरंतरा । चंद्राभस्य मुनेरंते सुविधर्नवतौ मता ॥ ४७६ ॥ वीर्थे चतुरशीतिस्तु शीवलस्य निरंतरा । केवलज्ञानिनोन्यस्य द्वासप्ततिरुदाहुता ॥ ४७७ ॥

चत्वारिंशचतुर्यक्ता वासुपूज्यस्य पूजिता । चतुर्हानिस्तु दशसु द्वयोः केवलिनस्रयः ॥ ४७८ ॥ वीरकेवलिनां कालो द्वाषष्टचन्दानि संस्तुतः। ततो वर्षशतं पूर्ण स्याचनुर्दशपूर्विणां।। ४७९।। त्रयोऽशीत्या शताब्दानि भवंति दशपूर्विणां । विंशत्यंगभृतां युक्ताः कालो वृषशतद्वयं ॥४८०॥ आचारांगभृतांगीतैः शतमष्टादशोत्तरं । त्रिपंचैकादश क्रेया पंच चत्वार एव ते ॥ ४८१ ॥ वीरस्य गणिनां वर्षाण्यायुद्धीनवतिश्रतुः । विंशतिः सप्ततिश्र स्यादशीतिः शतमेव च ॥४८२॥ त्रयोऽशीतिश्र नवतिः पंचिभः साष्ट्रसप्तभिः। द्वाभ्यां च सप्तभिः पष्टिश्रत्वारिश्च संयुताः।।४८३।। षट्सु कालेषु पल्याष्टभागे शेषे तृतीयके । भृतिः कुलकराणां च ततोऽपि वृषभस्य तु ॥ ४८४ ॥ जन्मक्रमेण शेषाणां जिनानां चक्रवर्तिनां । हिलनां वासुदेवानां ुर्ये काले विनिश्चितं ॥ ४८५॥ अष्टाष्टमासमासार्घशेषयोरिह कालयोः । तृतीयतुर्ययोः सिद्धिः प्रसिद्धा वृषवीरयोः ॥ ४८६ ॥ वीरनिर्वाणकाले च पालकोऽत्राभिषिच्यते । लोकेऽवंतिसुतो राजा प्रजानां प्रतिपालकः ॥४८७॥ षष्टिर्वर्षाणि तद्राज्यं ततो विषयभूभूजां । शतं च पंचपंचाशद्वर्षाणि तदुदीरितं ॥ ४८८ ॥ चरवारिञ्जत्पृरूढानां भूमंडलमसंडितं । त्रिंशतु पुष्पिमत्राणां षष्टिवेस्विप्नित्रयोः ॥ ४८९ ॥

१ 'शतांगीतः' इति ख पुस्तके।

श्रुतं रासमराजानां नरवाहनमप्यतः । चत्वारिंशत्ततो द्वाभ्यां चत्वारिशच्छतद्वयं ॥ ४९० ॥ मद्रवाणस्य तद्राज्यं गुप्तानां च शतद्वयं । एकविंशश्च वर्षाणि कालविद्धिरुदाहृतं ॥ ४९१ ॥ द्विचत्वारिंशदेवातः कल्किराजस्य राजता । ततोऽजितंजयो राजा स्वादिंद्रपुरसंस्थितः ॥४९२॥ कीमार्थे मंडलेशत्वे विजये राज्यसंयमे । चक्रयादीनां यथायोग्यमितः कालो निरूप्यते॥ ४९३॥ पूर्वलक्षाः क्रमारे अपूर्भरते सप्तसप्ततिः । वर्षाणां च सहस्रं तु मंडलाधिपतौ मतं ॥ ४९४ ॥ पष्टिर्वर्षसहस्राणि विजयो राज्यमूर्जितं । एकपूर्वागैहीनास्तु पूर्वलक्षाः पडेव तु ॥ ४९५ ॥ अंगलक्षास्त्रयोऽशीतिनेवतिनेवाभेः सह । सहस्राणि नवान्यानि शतानि नवतिनेव ॥ ४९६ ॥ वर्षलक्षास्त्रयोशीतिस्त्रिशस्त्रवसहस्रकैः । चित्रसंयमकालस्तु पूर्वलक्षेव केवलाः ॥ ४९७ ॥ पंचाशकु सहस्राणि पूर्वाणां पूर्वकालयोः । त्रिशदब्दसहस्राणि विजयः सगरस्य तु ॥४९८॥ एकामसप्तिर्रक्षा पूर्वाणां नवतिर्नव । सहस्राणि नवापीह शतानि नवतिर्नव ॥ ४९९ ॥ पूर्वीगप्रीमितिः पूर्वा सप्तिश्च सहस्रकेः । राज्यं लक्षास्त्रयोऽशीतिः पूर्वलक्षेव संयमः ॥ ५०० ॥ पंचिवातिसंख्याब्दसहस्राणि कुमारकः । मंडलेशश्च मघवान् जये दशसहस्रवान् ॥ ५०१ ॥

१ ' एकपूर्वविहीनास्तु ' इति ख पुस्तके ।

तिस्रोस्य वर्षलक्षास्तु नवत्यन्दसहस्रकैः । राज्यं तपस्तु पंचाश्रत्सहस्राणि तपस्विनः ॥ ५०२॥ सनत्कुमारकीमार्थ मंडलेशत्वमेव च । सहस्राणि तु पंचाशिद्वजयो दश तीनि वै ॥ ५०३ ॥ नवत्यब्दसहस्राणि राज्यं प्राज्यग्रुदीरितं । वर्षलक्षास्ततस्तस्य संयमः संयमात्मनः ॥ ५०४ ॥ शांतिर्मेडलिकत्वे तु पंचिविशतिरेव तु । सहस्राण्यष्टशत्येव विजये गदितं परं ॥ ५०५॥ क्रंथोर्भेडलिकत्वे हि त्रिसहस्त्रेस्तु विंशतिः । पंचाशत्सप्तशत्यामा षट् शती विजयः पुनः ॥५०६॥ अरमंडालिकत्वेऽपि सहस्राण्येकविंशतिः । चतुः शतानि विजयः शेषः प्रागेव भाषितं ॥५०७॥ सभीमस्य सहस्राणि पंच कौमार्यमिष्यते । विजयः पंचशत्येव प्रचंडस्य कुमंडले ॥ ५०८॥ द्वाषष्ट्रचन्द्रसहस्राणि तथा पंचशतानि च । बालत्वे गृढवृत्तस्य तस्य राज्यमिहोर्जितं ॥ ५०९॥ शतानि पंच कौमार्यं तथामंडलनाथता । महापद्मस्य विजयो वर्षाणां तु शतत्रयं ॥ ५१०॥ अष्टादश सहस्राणि राज्यं सप्त शतान्यपि । दशवर्षसहस्राणि संयमःसंयमार्थिनः ॥ ५११ ॥ हरिषेणस्य कौमार्ये त्रिशती पंचविंशतिः । पंचाशता तु विजयस्तस्य वर्षशतं मतं ॥ ५१२ ॥ पंचावेंशतिसंख्यानि सहस्राणि तथा शतं । राज्यं च पंचसप्तत्या पंचाशित्रशती तपः ॥ ५१३॥

बहितमः सर्गः ।

जयसेनस्य कौमार्यं त्रिशती मंडलेशिता । विजयस्तु शतं राज्यं सहस्रं नवशत्यपि ॥ ५१४ ॥ चतः श्रती तपस्तस्य ब्रह्मद्रचकुमारता । अष्टाविंशतिवर्षाणि षद्पंचाशत्समंडली ॥ ५१५॥ विजयः षोडशाब्दानि पर शतानि तु राजता। ब्रह्मदत्तस्य विश्लेया केशवानां तु कथ्यते ॥५१६॥ त्रिष्टष्ठस्य सहस्राणि कौमार्ये पंचिवंशतेः । विश्वेयोऽब्दसहस्रे तु विजयः स्नेहवाहिनः ॥ ५१७॥ वर्षलक्षास्त्रयोऽशीतिसहस्राणि तु सप्ततिः । चतुर्भिरिधका तस्य राज्यं राजकराजितं ॥ ५१८॥ द्विपृष्ठस्यापि कौमार्य मंडलैक्यमपि स्कुटं । सहस्राणि समाख्यातं प्रत्येकं पंचिविदातिः ॥५१९॥ विजयोब्दशतं लक्षा राज्यं तस्यैकसप्ततिः । चत्वारिंशत्सहस्राणि नवतिर्नवशत्यपि ॥ ५२० ॥ द्वादशैव सहस्राणि पंचशत्या स्वयंभुवः । कीमार्यं मंडलेशत्वं विजयो नवतिः पुनः ॥ ५२१ ॥ एकाक्षपष्टिलक्षाश्च चतुःसप्ततिरेव च । सहस्राणि शतै राज्यं नवभिर्दश पंचकैः ॥ ५२२ ॥ पुरुषोत्तमकौमार्यं मतं सप्त शतानि तु । अशीतिविजयस्त्रीणि शतान्यब्दसहस्रकं ॥ ५२३ ॥ मंडलेशत्वमेताद्व त्रिश्रष्ठक्षा विनैककं। नवातिश्व सहस्राणि सप्तिभिनेवशत्यपि ॥ ५२४ ॥ विंशतिश्रेव वर्षाणि राज्यमत्यंतमूर्जितं । पुरुषोत्तमतां भूमौ भूमा तस्येह विभ्रतः ॥ ५२५ ॥ कौमार्थे त्रिशती पंचविश्वत्या शतमीरितं । मंडलेक्यं हि विजयः सप्ततिः प्रतिपादितः ॥५२६॥ नवलक्षा सहस्राणि नवतिर्नव च स्मृता । राज्यं पुरुषींसहस्य पंचिमः पंचशत्यपि ॥ ५२७ ॥ पंचाशता शते हे तु कीमार्थ मंडलेशता । विजयः पष्टिवर्षाणि विजयोर्जिततेजसः ॥ ५२८ ॥ चत्वारिशच वर्षाणि स्याचत्वारि शतान्यपि । चतुःषष्टिसहस्राणि पुंडरीकस्य राजता ॥ ५२९॥ शते दत्तस्य कौमार्यं पंचाशत्कालयोर्द्रयं । एकत्रिशत्सहस्राणि सप्तशत्यापि राजता ॥ ५२०॥ शतं लक्ष्मणकौमार्यं चत्वारिंशाद्विजेतृता । एकादशसहस्राष्टशतषष्टचन्दराजता ।। ५३१ ॥ क्रमारकालः कृष्णस्य बोडशाब्दानि पर्युता । पंचाशनमंडलेशत्वं विजयोष्टाब्दकं स्फुटं ॥५३२॥ शतानि नव विंशत्या कृष्णराजस्य सम्मितिः। तथैकादश रुद्राणां कालसंख्या निरूप्यते।।५३३॥ तीर्थे भीमावलिजीतो वृषभस्याजितस्य तु । जितशत्रुरिति ख्यातो-रुद्राख्यः सुविधेः पुनः५३४ विश्वानलस्त दशमे श्रेयसः सुप्रतिष्ठकः । अचलो वासुपूज्यस्य पुंडरीकस्तु वैमले ॥ ५३५ ॥ अजितंधरोऽनंतस्य धर्मस्याजितनाभिकः। पीठाख्यः शांतितीर्थेऽभृत् सुतो वीरस्य सत्यकेः ५३६ भीमाबलेस्तनृत्सेधः पंचचापशतान्यतः । तान्यर्थपंचमान्येकं दशहानिस्तु पंचसु ॥ ५३७॥ अष्टाविंशतिरन्यस्य चतुर्विंशतिरप्यतः । सप्तैवारत्नयोत्यस्य वपुरुत्सेध इष्यते ॥ ५३८ ॥ पूर्वाण्यायुस्तयोशीतिलक्षास्त्वेकसप्ततिः । द्वे लक्षे चैकलक्षा च लक्ष्यालक्ष्यविचक्षणैः ॥ ५३९ ॥

लक्षाश्रतरशीतिश्र पष्टिः पंचाशदेव च । चत्वीरिश्च वर्षाणां विंशतिरुक्षया ऋमात् ॥५४०॥ आयुरेकादशस्यापि वर्षाण्येकान्नसप्ततिः । अभिन्नदशपूर्वाणां म्द्राणां रौद्रकर्मणां ।। ५४१ ॥ त्रयः कालास्त सर्वेषां रुद्राणां क्रमशः स्थिताः । कीमारः संयमोपेतो गृहीतोज्झितसंयमः ॥५४२॥ कालिसभागशेषेण चतुर्णा संयसाधिकः । समाद्रयोस्त्रयोप्यन्ये कौमाराधिक इष्यते ॥ ५४३ ॥ संयमाधिक एकस्य कौमारोन्यस्य साधिकः । दशमस्यापि रुद्रस्य संयमाधिक एव सः ॥५४४॥ वर्षाणि सप्त कीमार्थे विश्वतिः संयमेश्ष्टभिः । एकादशस्य कद्रस्य चतुःस्त्रिशदसंयमे ॥ ५४५ ॥ द्वयोस्तु सप्तमी पृथ्वी पंचानां पष्टचीधष्ठितिः। एकस्य पंचमी भूमिश्चतुर्थी तु द्वयोस्ततः ॥५४६॥ त्तीयांत्यस्य निर्दिष्टा यथोदिष्टा इमाःपुनः । तुर्वसंयमभाराणां रुद्राणां जनमभूमयः ॥ ५४७ ॥ भीमश्राथ महाभीमो रुद्रनामा तृतीयकः । महारुद्रोऽथ कालश्र महाकालश्रतुर्धुखः ॥ ५४८ ॥ नरवक्रोन्मुखारुयो द्वौ नवैते नारदा स्मृताः । वासुदेवसमानायुः स्थितिस्तेषां प्रजायते ॥५४९॥ कलहे प्रीतिसंयुक्ताः कदाचिद्धर्भवत्सलाः । हिंसानंद्वशास्त्वेते महाभव्या जिनानुगाः॥५५०॥ वर्षाणां षद्शतीं त्यकत्वा पंचाग्रं मासपंचकं । मुक्ति गत महावीरे शकराजस्ततोऽभवत् ॥५५१॥ मुक्तिगते महावीरे प्रतिवर्षसहस्रकं । एकैको जायते कल्की जिनधर्मविरोधकः ॥ अपने ॥

480

इहास्यामवसार्पिण्यां यथा तीर्थकरादयः । उत्सार्पिण्यां भविष्यंत्यां भविष्यंति तथा परे ॥५५३॥ मविष्यदुः खमाशेषे सहस्रपरिमाणके । चतुर्दश भविष्यंति प्रागिमे कुलकारिणः ॥ ५५४ ॥ कनत्कनकसंकाशः कनकः कनकप्रभः । त्रयः कनकपूर्वाः स्युस्ते राजध्वजपुरावाः ॥ ५५५॥ निलनीदलसंकाशो निलनो निलनप्रभः । निलनोपपदास्त्वन्ये ते राजध्वजपुंगवाः ॥ ५५६ ॥ ततः पद्मप्रभो क्रेयः पद्मराजस्ततः परः । पद्मध्वजश्च बोद्धव्यः पद्मपुंगव एव च ॥ ५५७ ॥ तीर्थकृच महापद्मः सुरदेवो जिनाधिपः । सुपार्श्वनामधेयोऽन्यो यथार्थश्च स्वयंप्रभः ॥ ५५८ ॥ सर्वातमभूत इत्यन्यो देवदेवः प्रभोदयः । उदकः प्रश्नकीर्तिश्च जयकीर्तिश्च सुव्रतः ॥ ५५९ ॥ अरश्च पुण्यमृतिश्च निष्कवायो जिनेश्वरः । विपुलो निर्मलाभिष्वयश्चित्रगुप्तो परः स्मृतः ॥५६०॥ समाधिगुप्तनामान्यः स्वयंभूरिनवर्तकः । जयो विमलसंज्ञश्च दिव्यबाद इतीरितः ॥ ५६१ ॥ चरमोऽनंतवीयोऽमी वीर्यधेर्यादिसद्गुणाः। चतुर्विशतिसंख्याना भविष्यतीर्थकारिणः॥५६२॥ भरतो दीर्घदंतश्च जन्मदंतश्च चित्रणः । गृढदत्तोऽपरो नाम्ना श्रीषेण इति विश्वतः ॥ ५६३ ॥ श्रीभृतिरितिभूतोन्यः श्रीकांतः पद्मनामकः । महापद्मस्तथैवान्यश्रित्रवाहनसंज्ञकः ॥ ५६४ ॥ विश्वक्तमलसंपर्को नाम्ना विमलवाहनः । अरिष्टसेन इत्येते चित्रणो द्वादशोदिताः ॥५६५॥

नंदी च नंदिमित्रश्च नंदिनो नंदिभृतिकः । महातिबलनामानौ बलभद्रश्च सप्तमः ॥ ५६६॥ द्विष्ठिश्च त्रिपृष्ठश्च वासुदेवा नवैव ते । भविष्यंत्यंजनच्छायाच्

रत्नत्रयस्य तु पवित्रितमस्य लोके साक्षाञ्जवप्रमथनस्य किमत्र वाच्यं ॥ ५७३॥ वाक्यं त्रिकालविषयार्थनिरूपणार्थमाकण्यं कर्णसुखिमत्यमिनस्य भूपाः।

कुष्णादयो हरिरविप्रमुखाश्च देवा नत्वा जिनं स्वपदमीयुरुपात्ततत्वाः ॥ ५७४ ॥

इति "अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे" हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ त्रिषष्टिपुरुषजिनांतरवर्णनो नाम

षष्टितमः सर्गः समाप्तः।

एकषष्टितमः सर्गः।

आकृतं श्रेणिकस्याथ ज्ञात्वा गणभृदग्रणीः । वृत्तं गजकुमारस्य जगादेति जगन्तुतं ॥ १ ॥ श्रुत्वा गजकुमारोऽसौ जिनादि चरितं तथा । विमोच्य सकलान्बंधून् पिनृपुत्रपुरम्सरान् ॥ २ ॥ संसारभीरुरासाद्य जिनेंद्रं प्रश्रयान्त्रितं । गृहीत्वानुमतो दीक्षां तपः कर्तुं समुद्यतः ॥ ३ ॥ निकापितास्तु याः कन्या कुमाराय गजाय ताः । प्रभावत्यादयः सर्वा निर्वेदिन्यः प्रवत्रकुः ॥४॥ कुमारश्रमणस्याथ गजस्यैकांतवार्तिनः । निशीये प्रतिमास्थस्य सर्वद्वंद्वसहस्य सः ॥ ५ ॥ सोमशर्मा सुतात्यागक्रोधाविकणदीवितः । अदीदिपदुदारावि शिरासे स्थिरचेतसः ॥ ६ ॥ दद्यमानशरीरोऽसौ शुक्रध्यानेन कर्मणां। अंतं कृत्वा ययौ मोक्षमंतकृत्केवली मुनिः॥ ७॥ तस्य देहमहं चकुः समुपेत्य सुरासुराः । यक्षिकसरगंधर्वमहोरगपुरोगमाः ॥ ८ ॥ ज्ञात्वा तन्मरणं दुःखा यादवा बहवस्तथा । दशाहीश्र विहायांत्यं दीक्षिता मोक्षकांक्षिणः ॥ ९ ॥ देव्यः शिवादयो बहुरे देवकी रोहिणीं विना। वसुदेवस्त्रियो विष्णोः कन्याश्वापि प्रवत्रज्ञः ॥१०॥ ततः सुरवराभ्याच्यो नानाजनपदान् जिनः । विजहार महाभूत्या भव्यराजीं प्रबोधयन् ॥११॥ उदीच्याक्रपशार्द्लान् मध्यदेशनिवासिनः। प्राच्यानिप प्रजायुक्ता स धर्मे स्थापयन् बहुन्।।१२।।

विहृत्य चिरमीशानः पुनरागत्य पूर्ववत् । गिरौ रैवातिके तस्थौ समवस्थानमंडनः ॥ १३ ॥ तत्र स्थितं जिनेंद्रं तं देवेंद्राः सांद्रतेजसः। प्राप्य नत्वा नितं कृत्वा निजस्थानेषु सुस्थिताः ॥१४॥ वसुदेवो बलः कृष्णः सांतःपुरसुहृज्जनः । द्वारिकापूजया युक्ताः प्रद्युमादिसुतान्वितः ॥ १५॥ विभूत्या पर्यागत्य शेवयमाभिवंद्य ते । आसीनाःधर्मस्थाने धर्मे शुश्रुषुरीश्वरात् ॥ १६ ॥ तत्र धर्मकथांतेऽसौ जिनं नत्वा हलायुधः । पप्रच्छ वस्तुचित्तस्थं करकुड्मलितालिकः ॥ १७॥ नाथ वैश्रवणैनेयं निर्मिता द्वारिकापुरी । कियतानेहसांतोऽस्याःकृतका हि विनश्वराः ॥ १८ ॥ निमज्जेत स्वत एवेयं किम्रु कालांतरें अध्यो । निमित्तांतरसान्निध्ये केनचिद्धाविनास्य ते ॥१९॥ स्वांतकाले निमित्तत्वं को वा कृष्णस्य यास्यति। जातानां हि समस्तानां जीवानां नियता पृतिः २० संयमप्रतिपत्तिर्वो का केन कियता प्रभो । कृष्णस्नेहमहापाश्वद्धाचित्तस्य मेऽभवत् ॥ २१॥ इति पृष्टो जिनोगादीवृद्दष्टाशेषपरापरः । याथातथ्यं यथाप्रश्नं यत्प्रश्नोत्तरवाद्यसौ ॥ २२ ॥ पुरीयं द्वादशे वर्षे राममद्येन हेतुना । द्वीपायनकुमारेण मुनिना धक्ष्यते रुषा ॥ २३ ॥ कीशांबवनसुप्तस्य कृष्णस्य परमायुषः। प्रांते जरत्कुमारोऽपि संहारे हेतुतां व्रजेत् ॥ २४ ॥ अनंतरस्य सामिध्ये हेतोः परिणतेर्वशात् । बाह्यो हेतुर्निमित्तं हि जगतोऽभ्युदये श्वये ॥ २५ ॥

जानंतो वस्तुसद्भावमतोभ्युदयनाशयोः । हर्षे भुवि विषादं च न गच्छंति मनस्विनः ॥ २६ ॥ भवतोऽपि तपःप्राप्तिस्तिश्रिमित्तात्तदा भवेत् । भवपद्धतिभीतस्य ब्रह्मलोकोपपादिनः ॥ २७ ॥ द्वीपायनकुमारोऽसौ रोहिण्याः सोदरो यतिः। तदाकर्ण्य वचो जैनं निर्वेदी तपसि स्थितः॥२८॥ अवधेः पूरणायातः पूर्वदेशमुपेत्य सः । तपश्चरितुमारब्धः कषायतनुश्चोषणं ॥ २९ ॥ दुःखी जरत्कुमारश्च दुःखितान् भातृबांधवान् । परित्यज्य गतः कापि स हरियंत्र नेक्ष्यते ॥३०॥ जरत्कुमारे प्रगते वनमेकािकनि स्थिते । हरिः स्नेहाकुलो मेने शून्यमात्मानमात्मिनि ॥ ३१ ॥ चचार मृगसामान्यं विजनो विजनं वनं । हरिः प्राणप्रियः प्राणान् प्रियान् हातुमना कचित् ३२ इतोऽपि जिनमानम्य यादवा विविद्यः पुरी । आगामिदुःखसंभारचितासंतप्तमानमाः ॥३३॥ घोषणां कारयांचक्रे चक्री पुरि बलान्वितः । मंद्यांगानि च मद्यानि त्रिमृजंतामिति द्वतं ॥३४॥ पिष्टिकिण्वादिमद्यांगैस्ततो मद्यानि मद्यपैः। क्षिप्तानि सिश्चिलाकुंडे कांदंबगिरिगहरे ॥ ३५॥ कदंबवनकुंडेषु युक्ता कांदंबरी तु या । साध्मपाकविशेषस्य हेतुत्वेनावतिष्ठते ॥ ३६॥ तथान्या घोषणादायि कृष्णेन हितबुद्धिना । द्वारिकायां महापुर्यो स्त्रीणां पुंसां च शृष्यतां ॥३७॥ पिता मे यदि वा माता सुता चांतःपुरांगना । तपस्यंतु मते जैने वारयामि न तानहं ॥ ३८॥

ततः प्रद्युक्तभान्वाद्याः कुमाराश्ररमांगकाः । अन्ये च बहवो यातास्तपोवनमसंगिनः ॥ ३९ ॥ रुक्मिणीसत्यभामाद्या महादेव्योऽष्ट सस्तुषा । लब्धानुज्ञा हरेः स्त्रीभिः सपत्नीभिः प्रवत्रज्ञः ४० सिद्धार्थसारियभीता बलदेवनयान्वितः । बोघनं व्यसने स्वस्य प्रतिपाद्य तपोऽगृहीत् ॥४१॥ ततः संघेन महता जिनः पल्लवदेशभाक् । बभूव भव्यबोधार्थं भव्यांभोरुहभास्करः ॥ ४२ ॥ राजस्त्रीनरसंघातो यावान् प्रव्रजितस्तदा । जिनेनैव समं पायादुत्तरापथमुद्यमी ॥ ४३ ॥ वर्षे द्वादश चोद्रस्य पुर्याः लोकः कचिद्रने । कृत्वा वासं पुनस्तत्र त्वागतश्र विधेवैशात ॥४४॥ इतो द्वारवतीं लोकः परलोकभयान्वितः । व्रतोपवासपूजासु सुतरां निरतोऽभवत् ॥ ४५ ॥ द्वीपायनोऽपि महता तपसा सहितस्ततः। व्यतीतं द्वादशं वर्षं मन्वानो भ्रांतिहेतुना ॥ ४६ ॥ व्यतिक्रांतो जिनादेश इति ध्यात्था विमृद्धीः । संप्राप्तो द्वादशे वर्षे सम्यग्दर्शनदुर्वलः ॥४७॥ भृतातापनयोगश्च तस्यौ प्रतिमया पथि । द्वारिकावाहरभ्याशे कदाचिकिकटे गिरेः ॥४८॥ वनकीडापरिश्रांता पिपासाकुलिता जलं। इति कादंबकुंडेषु शंबाद्यास्तां सुरां पपुः ॥ ४९ ॥ कदंबवनसंन्यस्तां कदंबकतया स्थितां। पीत्वा कादंबरीं मृष्टां कुमारा विकृतिं गताः ॥ ५० ॥ वाकणी सा पुराणापि परिपाकवशाद्वशान् । तरुणानकरोद्वाढं तरुणीवारुणेक्षणान् ॥ ५१ ॥

एकषष्टितमः सर्गः ।

असंबद्धानि गायंतो नृत्यंतः स्खलितक्रमाः। मुक्तकेशाः कृतोत्तंसा कंठालंबिवनस्रजः ॥ ५२॥ आगच्छंतः पुरः सर्वे दृष्टाकीभिमुखं मुनि । प्रत्यभिज्ञाय चावोचन् घूर्णमाननिरीक्षणाः ॥५३॥ मोयं द्वीपायनो योगी द्वारावत्या किलांतकृत् । भवितास्माकमद्याये क प्रयाति वराककः ॥५४॥ इत्युक्त्वा तं कुमाराम्ते लाष्ट्रभिः सर्वतोष्मभिः । प्रजध्नुर्निर्धृणास्तावद्यावत्पतति भूतले ॥५५॥ कोधाधिक्यात्ततो दधे दष्टोष्ठो भूकुटीकुटीं। प्रलयाम यदूनां सः प्रायः स्वतपमोऽपि च ॥५६॥ प्रविष्टास्तु पुरी व्याला व्याला इव चलाचलाः । कुमाराः कैश्विदुक्तं तु दुर्वृत्तं लघु विष्णवे ॥५७॥ बलनारायणौ श्रुत्वा द्वीपायनपुपश्रुतं । द्वारिकायाः क्षयं प्राप्तं मेनाते जिनभाषितं ॥ ५८ ॥ संभ्रमेण परित्राप्ती परित्यक्तपरिच्छदौ । मुनि क्षमयितुं कोधान्जवलंतमिव पावकं ॥ ५९॥ दृष्टः संक्रिष्टधीस्ताभ्यां भूभंगविषमाननाः । दुर्निरीक्ष्येक्षणः क्षीणः कंठप्राणो विभीषणः ॥६०॥ कृतांजलिपुटाभ्यां स प्रणिपत्य महादरात् । याच्यते याचना बंध्यं जानद्रचामपि मोहतः॥६१॥ रक्ष्यतां रक्ष्यतां साधो चिरं सुपाररिक्षतः । क्षमामृलस्तपो भारो धक्ष्यते क्रोधवन्हिना ॥६२॥ मोक्षसाधनमप्येष तपो दूर्यित क्षणात् । चतुर्वर्गारयुः क्रोधः क्रोधः स्वपरनाशकः ॥ ६३ ॥ श्वम्यतां श्वम्यतां मृदैः प्रमादबहुलैः कृतं । दुर्विचेष्टितमस्मभ्यः प्रसादः क्रियतां यते ॥ ६४॥

इत्यादिष्रियवादिभ्यां प्रार्थ्यमानो निवर्तकः । सप्रााणद्वारिकादाहे पापधाः कृतनिश्रयः ॥६५॥ संज्ञयादर्शयत्ताभ्यामंगुलीद्वयदर्शनं । युवयोरेव मोक्षोत्र नान्यस्येति परिस्कुटं ॥ ६६ ॥ अतिवर्तकरोपं तं विदित्वा विदितक्षयो । विपण्णा तो पुरी यातौ किंकर्तव्यत्वविह्नलौ ॥६७॥ शंबाद्यास्तु तदानेके यादवाश्चारमांगकाः । पूर्या निष्कम्य निष्क्रांतास्तस्थुगिरिगुहादिषु ॥६८॥ मृत्वा क्रोधामिदिग्धतपः सारधनश्र यः । बभूवामिकुमाराख्यो मिथ्याद्रग्भवनामरः ॥ ६९ ॥ अंतर्भृहूर्तकालेन पर्याप्तः प्रतिबुद्धवान् । विभंगेन विकारं स्वं कृतं यदुकुमारकैः ॥ ७० ॥ रौद्रध्यानं स दध्यों में तपस्यस्य निरागसः । हिंसकानां पूरीं सर्वो दहामि सह जंतुभिः ॥७१॥ इति ध्यात्वा सुदुर्वारा यावदायाति दारुणः। द्वारावत्यां महोत्पातास्तावज्जाताः श्वयावहाः॥७२॥ बभुवुः प्रत्यगारं च रामहर्षविकारिणः । प्रजानां निशि सुप्तानां स्वप्नाश्च भयशंसिनः ॥७३॥ प्राप्य पापमतिश्वासौ पुरीमारभ्य बाह्यतः । कोपी दग्धुं समारेभे तिर्यग्मानुषपूरितां ॥ ७४ ॥ भूमज्वालाकरान् वृद्धस्त्रीबालपशुपक्षिणः । नश्यतोग्री क्षिपत्येष कारुण्यं पापिनः कुतः ॥ ७५ ॥ प्रोणिजातस्य सर्वस्य जातवेदसि मञ्जतः। आऋंदनस्यना जाता येऽत्र जाता न जातुःचित् ॥७६॥ दिव्येन दह्ममानायां दहनेन तदा पुरि । नुनं कापि गता देवा दुवीरा भवितव्यता ॥ ७७ ॥

७५३

अन्यथा देवराजस्य राजराजेन शासनात् । निर्मिता रक्षता चासौ दह्यते कथमप्रिना ॥ ७८ ॥ रक्षतां बलकृष्णी च चिरेणाग्निभयार्दिताः । इति स्त्रीबालदृद्धानामालापा ययुराकुलाः ॥ ७९ ॥ अकुलौ बलकुष्णौ च भिरवा प्राकारमंबुधेः । विध्यापयितुमालग्नौ प्रवहिस्तं हुताशनं ॥८०॥ सागरांबु इलाकृष्टं हलिना बलशालिना । जज्वाल ज्वलनस्तेन तैलभावप्रुपेयुषा ॥ ८१ ॥ असाध्यतां विदित्वाग्रेजनन्यौ जनकं जनं । सुबहुं रथमारोप्य संयोज्य गजवाजिनः ॥ ८२ ॥ रथं नोदयतो क्षोण्यां रथचक्राणि पंकवत् । निमन्जंति विपत्काले क गजा वाजिनः क च ॥८३॥ स्वयमेव रथं दोभ्यीमाकृष्य प्रयतोस्तयोः । निरुद्धः कीलियत्वाऽसाविद्रकीलेन पापिना ॥८४॥ अवष्टमति पादेन यावत्कीलं हलायुधः । पिहितं गोपुरद्वारं तावदैत्येन कोपिना ॥ ८५ ॥ कपाटं पादघातेन ताभ्यां पातितमाशु तत् । द्विषोक्तं निर्ममोऽन्यस्य युवाभ्यां नानुविद्यते ॥८६॥ ततः पित्रा च मातृभ्यां पुत्रै। यातामितीरितो । विनिश्चित्योपसंहारमात्मीयामिति दुःखिभिः ॥८७॥ भवतोः जीवतोः पुत्रौ कदाचिद्वंशसंततिः । न क्राम्येदप्यतो घातिमीत तद्वाक्यमस्तकौ ॥८८॥ तानप्रशाम्य गतौ दीनौ दुःखितौ दुःखपीडितान् । प्रपत्य पादयोयौतौ गुरुवानयकरौ पुरः॥८९॥ निर्गत्य निर्गती पुर्या ज्वालालीलीढवेश्मनः। रुदित्वा कंठलगौतौ दक्षिणां दिश्वमाश्रितौ ॥९०॥

इतोऽपि वसुदेवाद्या यादवाश्र तदंगनाः । प्रायोपगमनं प्राप्ता संप्राप्ता बहवो दिवः ॥ ९१ ॥ काचिचरमदेहास्तु बलदेव-सुतादयः। गृहीतसंयमा नीता लं(जं) भकैर्जिनसिक्षिधं॥ ९२॥ यद्नां यादवीनां च धर्म्यध्यानवशात्मनां । सम्यग्दर्शनशुद्धानां प्रायोपगममाश्रितां ॥ ९३ ॥ बहुनां दह्यमानानामपि देहविनाशनः । यातो हुताशनो रीद्रो न तु ध्यानविनाशनः ॥ ९४ ॥ आर्तघ्यानकरः प्रायो मिथ्यादृष्टिषु जायते । उपसर्गश्रतुर्भेदो न सदृष्टेस्तु जातुचित् ॥ ९५ ॥ आगाढे वाप्यनागाढे मरणे समुपास्थित । न मुह्यंति जना जातु जिनशासनभाविताः ॥ ९६ ॥ मिष्यादृष्टेः सतो जंतोर्मरणं शाचनाय हि । न तु दर्शनशुद्धस्य समाधिमरणं शुचे ॥ ९७ ॥ मृतियीतस्य नियता संमृतौ नियतेर्वशात् । सा समाधियुजो भूयादुपसर्गेऽपि देहिनः ॥ ९८ ॥ धन्याः शिखिशिखाजालकवलीकृतविग्रहाः । अपि साधुसमाधाना ये त्यजंति कलेवरं ॥ ९९ ॥ तपो वा मरणं वापि शस्तं स्वपरसीख्यकृत् । तच द्वीपायनस्यैव स्वपरासुखकारणं ॥ १०० ॥ परस्यापकृति कुर्वन् कुर्यादेकत्र जन्मनि । पापी परवधं स्वस्य जंतुर्जन्मनि जन्मनि ।।१०१॥ कषायदश्याः प्राणी हता स्वस्य भवे भवे। संसारवर्धनोऽन्येषां भवेद्वा वधको न वा ॥ १०२ ॥ परं इन्मीति संध्यातं लोहपिंडग्रुपाददत् । दहत्यात्मानमेवादौ कषायवशगस्तथा ॥ १०३ ॥

संसारांतकरं पुंसामेकेषां परमं तपः । द्वीपायनस्य तज्जातं दीर्घसंसारकारणं ॥ १०४ ॥ जंतोः को वापराधोऽत्र स्वकर्मवशवार्तेनः । यत्नवानिष यज्जंतुमों ह्यते मोहवेरिणा ॥ १०५ ॥ अपि कियतापि परः कथंचिद्रतितिक्षणः । उपिक्रयेत यद्यात्मा तथेहपरलोकयोः ॥ १०६ ॥ परदुःखिवधानेन यत्स्वदुःखपरंपरा । अवव्यंभाविनी तस्मात्तितिक्षैवातिभाष्यतां ॥१०७॥ क्रोधांधेन विधेवेशेन नगरी द्वीपायनेना विला बालस्त्रीपशुबद्धलोककिता द्वाराकुला द्वारिका । मासैः षिश्चिमरशेषिता विलासिता संत्यज्य जैनं वचो धिक्कोधं स्वपरापकारकरणं संसारसंवर्धनं १०८ इत्यारिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ द्वारावती विनाशवर्णनो नामैकषष्टितमः सर्गः ।

द्विषष्टितमः सर्गः ।

पुण्योदयात्पुरा प्राप्तामुन्नति योजनातिगां । चक्रादिरत्नसंपन्नी बलिनी बलकेश्वनौ ॥ १ ॥
पुण्यक्षयात्तु तावेव रत्नबंधुविवर्जितो । प्राणमात्रपरीवारौ श्लोकभारवशीकृतौ ॥ २ ॥
प्रस्थितौ दक्षिणामाशां जीविताशावलंबिनौ । क्षुत्पिपासापरिश्रांतौ यातौ यत्कांक्षिणौ पथि ॥३॥
उद्दिश्य पांडवान् यातौ मथुरां दक्षिणामुभौ । हस्तवप्रं पुरं प्राप्तौ तत्रोद्याने हरिः स्थितः ॥ ४॥

गतोत्रपानमानेतुं कृतसंकेतकोग्रजः । बस्त्रसंवृतसर्वागः प्रविष्टश्च तर्तः पुरं ॥ ५ ॥ अच्छदंतो तृपस्तत्र धार्तराष्ट्रोऽवितष्ठते । वृथिव्यां प्रिथतो धन्वी यदुरंधदुरंतधीः ॥ ६ ॥ जनैर्जनितसंघट्टैः रूपपाशवशीकृतः । प्रविद्य तत्पुरी वीरो दृश्यमानः सविस्मयैः ॥ ७ ॥ कंठकं कुंडलं चापि दत्वा कस्य चिदाएणे । अन्यानमुपादाय निर्गच्छन् वीक्ष्य रक्षकैः ॥ ८॥ विज्ञाय बलदेवोयमिति राज्ञे निवेदितः । ततस्तेन वधायास्य प्रेषितं सकलं बलं ॥९॥ संघट्टोभूत्पुरद्वारे सैन्यस्य बलरोधिनः । बलेन संज्ञ्या हृतः कृष्णश्च द्वतमागतः ॥ १० ॥ असं पानं च सुस्थाप्य गजस्तंभं बलोऽग्रहीत् । कृष्णस्तु परिषं घोरं किंचित्कुपितमानसः॥११॥ चतुरंगं ततः सन्यं सनायकमितस्ततः । हन्यमानं ननाशाभ्यां विह्नलीभूतमानसं ॥ १२ ॥ समादायाञ्चपानं ता निर्गत्य नगरात्ततः । वनं विजयमागत्य सरो रम्यमपश्यतां ॥ १३ ॥ स्नात्वा सरिस तो तत्र जिनं नत्वा मनःस्थितं । चित्रमभ्यवहृत्याञ्चं पयः पीत्वातिशीतलं ॥१४॥ विश्रम्य च क्षणं वीरो प्रयातौ दक्षिणां दिशं । कौशांब्याख्यं वनं भीमं प्रविष्टी परदुर्गमं ॥१५॥ खगरावखरारावमुखरीकृतदिग्मुखं । दृष्णार्तमृगयुथानां गम्यं प्रोन्मृगतृष्णकं ।। १६ ॥

१ 'स तत्पुरं ' इति स पुस्तके।

ग्रीष्मोग्रतापपरुषवहन्मारुतदुस्सहं । दावदग्धलताजालगुल्मपादपखंडकं ॥ १७ ॥ असंभाव्यांभिस भ्राम्यत्-श्वापदश्वासशब्दके । वने वनेचरोद्धिन्नकुंभिकुंभास्तमौक्तिके ॥१८॥ आरोहति वियनमध्यं सुतीवे तीव्ररोचिषि । जगौ जनार्दनो ज्येष्ठं गुणज्येष्ठमिति श्रमी ॥१९॥ पिपासाकुलितोत्यर्थमार्य शुष्कौष्ठतालुकः । शक्नोमि पदमप्येकं न च यातुमतः परं ॥ २०॥ तत्पायय पयः शीतमार्य तृष्णापहारि मां । सद्दर्शनीमवानादी संसारे सारवर्जिते ॥ २१ ॥ इत्युक्ते स्नेहसंचारसमाद्रीकृतमानसं । स जगाद बलः कृष्णमुष्णनिश्वासमोचिनं ॥ २२ ॥ ततः शीतलमानीय पानीयं पाययाम्यहं । त्वं जिनस्मरणांभोभिस्तावनृष्णां विमर्दय ॥२३॥ निरस्यति पयस्तृष्णां स्तोकां वेलामिदं पुनः । जिनस्मरणपानीयं पीतं तां मूलतोऽस्यति ॥२४॥ छायायामस्य वृक्षस्य शीतलायामिहास्यतां । आनयामि जलं तेऽहं शीतलं शीतलाशयात्।।२५॥ अग्रजः प्रतिपाद्येव मनुजं मनसा वहन् । जगाम जलमानेतुं निजं श्रममचितयन् ॥ २६ ॥ कृष्णोऽपि च यथोदिष्टां तरुच्छायां घनां श्रितः। क्षितो मृदु मृदि रुखणवाससा संभृतांगकः॥२७॥ वामे जानुनि विन्यस्य दक्षिणं चरणं क्षणं । श्रमव्यपोहनायासा वसेत गहने हरिः ॥ २८ ॥ र्यं प्रदेशं तदेवासौ जरासूनुर्यदच्छया । एकाकी पर्यटन्प्राप्तो मृगयाव्यसनप्रियः ॥ २९ ॥

यो हरिस्नेहसंभारो हरिप्राणरिरिक्षया । द्वारिकाया विनिर्गत्य प्राविशन्मुगवद्वनं ॥ ३० ॥ स तत्र विधिनानीय तदानीं विनियोजितः । अद्राक्षीद्द्रतोऽस्पष्टं किंचिद्रे धनुर्धरः ॥ ३१ ॥ मरुचिलतवस्नांतजनित्रभांतिरंतिके । प्रसप्तमृगकणीयं चलतीति विचित्य सः ॥ ३२ ॥ गुल्मगृढवपुर्गादमाकर्णाकृष्टकार्मुकः । विव्याध व्याधधीस्तीक्ष्णकारेण चरणं हरेः ॥ ३३ ॥ विद्धतालपदः शौरिरुत्थाय सहसाखिलाः । दिशो निरीक्ष्य सो दृष्टा परमुचैर्जगाविति ॥ ३४॥ विद्यपादतलोई भो केनाकारणवैरिणा । कथ्यतां कुलमात्मीयं नाम च स्फ्रटमत्र मे ॥ ३५ ॥ अज्ञातकुलन।मानं नरं नावधिषं रणे । कदाचिदपि योहं ही किं ममेदमुपागतं ॥ ३६॥ तद् ब्रवीतु भवान् को भो यज्ज्ञातकुलनामकः । अज्ञातवैरसंबंधो वने जातो ममांतकः ॥ ३७॥ इत्यक्ते सोऽब्रवीदस्ति हरिवंशोद्भवो नृपः । वसुदेव इति ख्यातः पिता यो हलिचिक्रणोः॥३८॥ मूनुर्जरत्कुमारोऽस्मि तस्याहमतिवछभः । एकवीरो भ्रमाम्यत्र वने भीरुदुरासदे ॥ ३९ ॥ सोहं नेमिजिनादेशभीरुर्वनचरर्वने । द्वादशाब्दप्रमाणं च वसाम्यत्र प्रियानुजः ॥ ४० ॥ इयंतं वसता कालमरण्ये वचनं मया । आर्यलोकस्य कस्यापि न श्रुतं को भवानिह ॥ ४१ ॥ इति श्रुत्वा हरिर्ज्ञात्वा आतरं स्नेहकातरः । एद्योहि आतरत्रेति संभ्रमेण तमाहयत् ॥ ४२ ॥

सोऽपि ज्ञात्वानुजं प्राप्तो हाकारमुखराननः । क्षितिक्षिप्तधनुर्वाणो निपत्यास्थाच पादयोः॥४३॥ उत्थाप्य तं हरिः प्राह कंठलग्रमहाशुच । मातिशोकं कृथा ज्येष्ठ दुर्लेघ्या भवितव्यता ॥ ४४ ॥ प्रमादस्य निरासाय निरस्तसुखसंपदा । चिरं पुरुषशार्देल सेविता वनवासिता ॥ ४५ ॥ करोति सज्जनो यत्नं दुर्यशःपापभीरुकः । दैवे तु कुटिले तस्य स यत्नः किं करिष्यति ॥४६॥ ततस्तेन हरिः पृष्टो वनागमनकारणं । आदितोऽकथयद्वृत्तं द्वारिकादाहदारुणं ॥ ४७ ॥ श्रुत्वा गोत्रक्षयः सोऽपि प्रलापमुखरोऽवदत् । हा आतः कृतमातिथ्यं मया ते चिरदर्शतात्॥४८॥ किं करोमि क गच्छामि क लभे चित्तनिर्वृति । दुःखं च दुर्यशो लोके हंत्रा ते हा मयार्जितं ॥४९॥ इत्यादि प्रलपन्नकः कृष्णेनासौ सुचेतसा । प्रलापं त्यज राजेंद्र कृत्स्नं स्वकृतभुग् जगत् ॥५०॥ सुखं वा यदि वा दुःखं दत्ते कः कस्य संस्तौ । मित्रं वा यदि वामित्रः स्वकृतं कर्म तत्त्वतः॥५१॥ तोयार्थं मे गतो रामो यावनायाति सन्वरं । प्रयाहि तावदक्षांतिः कदाचितस्यास्वयि प्रभौ ॥५२॥ गच्छ त्वमादितो वार्तां पांडवेभ्यो निवद्य । हितास्ते अस्मत्कुलस्याप्ताः करिष्यंति तव स्थिति॥५३॥ उक्त्वेति कोस्तुभं तस्म दन्वाभिज्ञानमादरात्। परावृत्त्यांतरं स्तोकं व्रजेति प्रतिपादितः ॥५४॥ उक्त्वासौ क्षम्यतां देव ममेति करकों स्तुभः। शनैरुद्धत्य तं वाणं परावृत्तपदो अमन् ॥ ५५ ॥

तस्मिन्गते इरिस्तीववणवेदनमार्दितः । उत्तराभिमुखो भूत्वा कृतपंचनमस्कृतिः ॥ ५६ ॥ कृत्वा नेमि-जिनेंद्राय वर्तमानाय सांजिलः । पुनः पुनर्नमस्कारं गुणस्मरणपूर्वकं ॥ ५७ ॥ जिनेंद्रविनतिर्ध्वस्तसमस्तोपद्रवा यतः । ततः कृतशिराः शौरिः क्षितिशय्यामाधिश्रितः ॥५८॥ वस्त्रसंवृतसर्वागः सर्वसंगनिवृत्तघीः । सर्वत्र मित्रभावस्थः शुभचितामुपागतः ॥ ५९ ॥ पुत्रपात्रकलत्राणि ते भातृगुरुवांधवाः । अनागतविभातारो धन्या ये तपसि स्थिताः ॥ ६० ॥ अंतःपुरसहस्राणि सहस्राणि सुहद्गणाः । अभिधाय तपः कष्टं कष्टं वन्हिमुखे मृताः ॥ ६१ ॥ कर्मगीरवदोषेण मयापि न कृतं तपः । सम्यवक्तवं मेऽस्तु संसारपातहस्तावलंबनं ॥६२॥ इत्यादिशुभिचतातमा भविष्यत्तीर्थकुद्धरिः । बद्धायुष्कतया मृत्वा तृतीयां पृथिवीमितः ॥६३॥ दक्षा दक्षिणभारतार्धविभुतामुद्धाच्य भव्यप्रजा बंधुबँधुजनांबुधेरहरहर्वृद्धिं विहाय प्रभुः। पूर्णां वर्षसहस्रमेकमगमत्संजीव्य कृष्णो गतिं भोगी स्वाचरणोचितां जनतया यो योक्ष्यते दर्शनात्।। इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ हरिगत्यंतरवर्णनो नाम द्वाषष्टितमः सर्गः ।

त्रिषष्टितमः सर्गः ।

स्नहवानथ जलार्थमाकुलो विष्णुमात्मनि वहन् हुलायुधः। वारितोऽपि शकुनैः पदे पदे दूरमंतरिमतो वनांतरे ॥ १ ॥ धावतोऽस्य मृगयूथवर्तमना लोभितस्य मृगतृष्णिकांभसा । प्रत्यभासत दिशां कदंबकं प्रोत्तरंगसरसीमयं तदा ॥ २ ॥ अभ्यलोकि कलिता कलस्वनैश्वक्रवाककलहंससारसैः। सीरिणाथ सरसी तरंगिणी भूंगनादितसंरोजसकुला ॥ ३ ॥ चेतसास्य सहसा तदीक्षणाद्दीर्घमुच्छिसितमंगसंगिना । मारुतेन शिशिरेण सीहृदं सन्मुखेन गदितं सुगंधिना ॥ ४ ॥ संपत्रद्भिराभितः विपासुभिः श्वापदैः सभयमीक्षितस्ततः । आससाद सरसीं स सादरो वन्यहस्तिमदवारिवासितां ॥ ५ ॥ वारितीर्थमवगाद्य शीतलं संप्रपाय निरपास्य तृह्व्यथा। पद्मपत्रपुटिकां स वारिणा संप्रपूर्य परिवृत्य वाससा ॥ ६ ॥

आदधाव पदधूतधूलिभिर्धूसरीकृतशरीरमूर्धजः। कंपमानहृदयः सर्वाकया प्रत्यपायबहुल वने हरी ॥७॥ दूरतस्तमथ तत्र दृष्टवान् संवृतांगमभितोंऽबरेण सः। आस्त एव भुवि यत्र शायितः सूरिसोरिरिति दीर्घनिद्रया ॥८॥ सुप्त एव सुखिनद्रया हरिः सुप्रबोधमुपगच्छतु स्वयं। इत्यपेक्ष्य हरिबोधनं तदा तत्प्रबोधनमसौ प्रतीक्ष्यते ॥९॥ वीर ! किं स्विपिष दीर्घमित्यलं स्वापग्रुज्झ पिब तोयमिच्छया। इत्युदीर्णमधुरस्वरः पुनः सन्निरुध्य वचनोऽवतिष्ठते ॥१०॥ सीरिणा क्षतजगंधतस्ततः कृष्णसंवरणवाससींतरे। संप्रवेशनिजनिर्गमाकुलाः प्रक्षि तीक्ष्णमुखकुष्णमक्षिकाः ॥११॥ संघटोद्घटिततन्युखो इरिं वीक्ष्य वांतजनकांतजीवितं । हा हतोऽस्मि मृत एव तृष्णया विष्णुरित्युपारे तस्य सोऽपतत् ।।१२।। मोहमुद्रमनसोऽस्य मूर्छया प्राप्तयोपकृतमप्यनिष्ट्या।

स्नेहपाश्रदृढवंधनो हली प्राणहानमकरिष्यद्वयथा ॥१३॥ बोधमाप्य परितः परामृशन् केशवस्य वपुरात्मवाणिना । पश्यतिसम चरणव्रणव्रजं तीव्रगंधरुधिरारुणक्षमं ॥१४॥ सप्त एव विषमेषुणा हरिः विद्धः एव चरणेन केनचित्। दुष्प्रबोधहरिमारकोऽत्र कोऽपूर्वमद्य मृगयाफलं श्रितः ॥१५॥ इत्युदीर्य कुपितो हली बली सिंहनादमकरोद्भयंकरं। व्यापिनं विपिनदुर्गसंचरद्व्याघ्रसिंहकरिदर्पशातनं ॥१६॥ संजगी च श्यितो ममानुजः छद्मना विधिविधानयोगतः। येन केनचिदहेतुवैरिणा संददातु लघु सोऽद्य दर्शनं ॥१७॥ सुप्तमात्रमपशस्त्रमानतं मुक्तमानमसकृत्पलायिनं । प्रत्यवाययुतमंगनां शिशुं मंति शत्रुमपि नो यशोधनाः ॥१८॥ उचकीरति गदन समंततः संप्रधाय किमदप्यवांतरं। सोऽन्यदीय पदवीमनाग्नुवन्नेत्य कृष्णम्रपगृद्य रोदिति ॥१९॥

हा जगत्सुभग ! हा जगत्पते ! हा जनाश्रयण ! हा जनार्दन ! हाऽपहाय गतवानिस क मां हानुजैहि लघु हेति चारुदत् ॥२०॥ हारिवारिपरितापहारितं पाययत्यपि विचेतनं मुहुः। क्राम्यतीषद्पि तन्न तहले दूरभव्यमनसीव दर्शनं ॥२१॥ मार्ष्टि मार्दवगुणेन पाणिना सन्मुखं मुखमुदीक्ष्यते मुदा । लेढि जिद्यति विमूढधीर्वचः श्रोतुमिच्छति धिगातममूढतां ॥२२॥ द्यौरिवोरुविभवाग्निभस्मिता द्वारकेति किमिवासि तृप्तवान् । अक्षयेर्बहुविधाकरैश्रिता प्रागिवास्ति ननु भारताविनः ॥ २३ ॥ भोजराजकुलयादवक्षये श्रष्टबंधुरिति किं विमुह्यसि। सत्यसंघ मिय ते मम त्विय पाणितीह सकलास्ति बंधुता ॥ २४ ॥ पूर्वजन्मसु बहुष्वनारतं पश्यतो हि तव मामिहापि च। एकताननयनस्य नोदभू तृप्तिरद्य किमिवासि तृप्तवानु ॥ २५॥ त्वां पयोर्थमपहाय मोहतो हा मतेन नररत्नभूषणं।

लोकसारमपहारितं मया सन्निधौ तु मम कोस्य हारकः ॥ २६ ॥ कंसकोपमदपर्वताशने भूनभोगविषधृग्गरुत्मनः। पीतमागधयशों ऽबुधेरभूद्रोष्पदे वत निमज्जनं तव ॥ २७ ॥ शार्वरं तिमिरमुप्रतेजसा शात्रवं त्वमिव निर्विध्य यः। विष्टपं तपति विष्टरश्रवः पश्य सोऽस्त्मुपयोत्यहर्पतिः ॥ २८ ॥ दीर्घनिद्रमिव वीक्ष्य संहतेरस्तमस्तकनिवेशितैः करेः। त्वां विशोचिति रविभुवां त्रये स्वाप एष तव कस्य नो शुचे ॥ २९ ॥ वारुणीमतिनिषेच्य वारुणश्रकवाकनिवहैरुदश्रुभिः। शोचितः पतति भानुमानधः को न वा पतति वारुणीप्रियः ॥ ३० ॥ शोकभारमपनीय सांप्रतं सन्निमज्जति पयोनिधौ रविः। दातुमेष तब वा जलांजिं कालिबिद्धि कुरुते यथोचितं ॥ ३१ ॥ सांध्यरागपटलेन सर्वतः पत्रय संस्थगितमंग विष्टपं। त्वय्यति—स्वपिति रोदनोद्गतैरक्षिरागनिवहैरिहांगिनां ॥ ३२ ॥

देवभक्त भज सांध्यवंदनां वंध्यया किमपि देव ! निद्रया । संध्ययापि गलितं गलद्वचा वेगवद्रविरथानुबंध्यया ॥ ३३ ॥ एकवर्णमिखलं जगत्खला कुर्वती समवसर्पति द्वतं । ध्वांतसंतितरपेतदर्शना कालवृत्तिरतिदुःषमा यथा ॥ ३४ ॥ श्वापदानि पदशब्दगंधतो प्राणकणवर्रुवंति विंदते । एहि दुर्गमिह संश्रयावहे क्षेमतो वजित तत्र नौ निशा ॥ ३५ ॥ चित्रिते कुसुमचित्रमंडपे दत्तबंधुनुपले।कदर्शनः। श्रीयुषि स्विपिषि यो वधूजनैः सोपधानशयने महामृदौ ॥ ३६॥ त्वं महीधवनरंधवृत्तिभिगृद्धकाककुलजंबुकादिभिः। साद्यमक्षकगणरुपासितः श्रीपते स्वपिति तक्षितक्षितौ ॥ ३७॥ कामिनीप्रणयकेलिकोपिनीस्त्वं प्रसाद्य कुपितः प्रसादितः। यः पुरा नयति यामिनीं रतैः सोद्य कि विगतचेतनात्मना ॥ ३८ ॥ चारुवारवनितासुगीतकैर्वदिष्टंदपदुपाठानिस्वनैः।

यः प्रबोधमुषि प्रपद्यसे सोद्य वीर ! विरसैः शिवारुतैः ॥३९॥ त्वत्प्रवृत्तिमिव वेदितुं परः पूर्वमित्रपतिसुप्रयुक्तया । संध्ययाप्युपसि सानुरागया रज्यते शयनता विरज्यता ॥४०॥ अभ्युदेति करभिन्नपंकजश्रीसमग्रमुद्याचलाद्यं। द्राक् प्रधानपुरुषायते अधुना दातुमर्घमिव धर्मदीधितिः ॥४१॥ चादुकारशतमत्र सीरिणा प्राणवल्लभतया कृतं हरी। निष्कलं सफलमप्यभूतपुरा गाँढसुप्त इव मुग्धवालके ॥४२॥ तं प्रधृतय भुजपंजरोदरे स्पर्शनेंद्रियसुखं भजन् शिशोः। जन्मनीव वनमध्यमाट स छत्रधारपुरकंसशंकया ॥४३॥ इत्यनेकदिनरात्रियापनैः सोत्यतंदितमनोवचावपुः। प्रत्यहं हरिवपुर्वहन् भ्रमन् प्रत्यपद्यत रति न कानने ॥४४॥ तीव्रधमसमयत्यये ततः प्रावृषा शमितधर्मसंपदा । गर्जदंबदघटांबुवर्षणैः प्रापितं जगदितस्ततः शिवं ॥४५॥

वासुदेववचनाज्ञरासुतः शावरं विषमवेषमुदृह्न् । दाक्षिणां मथुरलोकसंकुलां प्राप्य पांडवपुरीमखंडितः ॥४६॥ सोऽवगाह्य हरिद्तकार्यकृत् प्रश्रयण विहिताचितस्थितिः । सिवणणमुद्वछयतेशितः क्षेमित्यथं युधिष्ठिरादिभिः ॥४७॥ मन्युरुद्धगलगद्भदस्वरः सिन्नवेद्य स जरात्मको जगौ। द्वारिकास्वजनदाहपूर्वकं स्वपमादवशतो मृतिं हरेः ॥४८॥ प्रत्ययाय हरिदत्तकौस्तुभं प्रस्फुरत्किरणजालकं पुरः। संप्रदर्भ पुरुदुःखपूरितः पूत्कृतिं व्यतनुतातनुस्वनः ॥४९॥ तत्क्षणेलमुद्तिष्ठदाकुलः कुंत्यधिष्ठितकलत्रकंठजः। पांडुपुत्रभवनेऽखिले रुद्रयाकुलस्य जलघरिव ध्वनिः ॥५०॥ हा प्रधानपुरुपेकधीर हा हा जगद्व्यसननोदनोद्यत । हा त्वयीह विधिना किमीहितं हा वतंति रुदितं चिरं त्वभूत् ॥५१॥ संहतातिबहुरोदनैस्ततः पांडवादिबहुबांधवैर्जगत्। 88

वृत्तवेदिभिरदायि विष्णवे संस्थितस्वजनतृप्तये जलं ॥५२॥ जारसेयमपनीय पूर्वदुर्वेपमीपदवधीरिताधिकं । अग्रतस्तमभिकृत्य पांडवा जग्मुरार्तहलभृहिद्दक्षया ॥५३॥ ते कियद्भिरपि वासरैर्द्युतं द्रौपदीप्रभृतिभामिनीजनैः। मात्रुत्रसहिताः ससाधनाः प्राप्यं तं दहशुराहता वने व्यर्थिकाः शवशरीरगोचरोद्धर्तनस्तपनमंडनक्रियाः। वर्तयंतमुपगृद्य तं चिरं बांधवा रुरुद्रुचकैःस्वनाः ॥५५॥ कुंत्यधीनतनया विनम्य तं बोधयंति हरिसंस्क्रियां प्रति । कोपनः स न ददाति याचितस्तं तदा विषफलं शिशुर्यथा ॥५६॥ सज्यतां सुलघु मज्जनिक्रयां पांडवास्तदनुपानमोजनं । भोक्तमिच्छति विवासितः प्रश्नः क्षिप्रमित्यभिहिते तथाकृते ॥५७॥ मज्जयत्यभिनिवेक्य विष्टरे भोजयत्यपि स पाययत्यपः । व्यर्थतामपि तदास्य पांडवा मेनिरेऽनुचरणाः कृतार्थतां ॥५८॥

त्रेषष्टितमः सर्गः ।

निन्युरित्थमनुष्टत्तितस्तु ते तत्र मेघसमयं बलानुगाः। मोहमेघपटलं बलस्य वा भेनुमाविरमवत्तदा शरत्।।५९।। सप्तपर्णसुरभेः सदा तदा वैष्णवस्य वपुषो वपुष्मतः। दुरदेशमगमद्विगंधता गंधयोर्हि न तयोः सहस्थितिः ॥६०॥ आययावय कृतव्यवस्थितिश्रीतृपूर्वनिजसारथिः सुरः । सोयमाभिमुखकाललब्धितः योधनाय बलदेवसात्रिधि ॥६१॥ भूभृतोऽतिविषमं तटं रथः संव्यतीत्य दलितः समे पथि। संधिमस्य दधता पुरः पुनर्दर्शितः सपदि तेन सीरिणे ॥६२॥ सीरिणा स गदितस्तटे गिरेः स्यंदनस्तव चु भज्यते स्मयः। मार्गशीर्णपतितस्य तस्य भो जन्मनीह पुनरुद्रतिः कुतः ॥६३॥ प्रत्युवाच विबुधो हरेमेहाभारतांभरणपारदर्शिनः। जारसेयकरकांडकांडकापातमात्रपतितस्य सा कुतः ॥६४॥ इत्युद्दीर्य मृदुपियनी पुना रोपयत्यसिलले शिलातले।

पर्यपृच्छत्कृतः शिलातले पश्चिनीप्रभव इत्यनेन सः ॥६५॥ सोंतरे रुत हली सुधाशिना सिंचता सुचिरशुष्कपादपं। गोकुले वरतृणांबुदायिना कृच्छ्तः प्रतिविबोधितस्तदा ॥६६॥ सत्यमेव विगतासुभिहेरिर्यद् ब्रवीपि मम मानुषे दशी। सत्यमेतिदह नान्यथेति सन् भव्य ! भव्यमर्थमगदीर्थथास्थिति ॥६७॥ सर्वमत्र जिनभाषितं पुरा जानतापि भवता भवस्थिति । मासषद्भातिवाहितं वृथा केशवस्य वहता कलेवरं ॥६८॥ कोऽत्र कस्य बहिरंगहिंसकः स्वांतरंगशुभकर्मरक्षकं। आयुकर्मनिजत्राणकारणं तत्क्षये भवति सर्वथा क्षयः ॥६९॥ संपद्त्रे करिकर्णचंचला संगमाः प्रियवियोगदुःखदाः। जीवितं मरणदुःखनीरसं मोक्षमक्षयमतोऽर्जयेद्धधः ॥७०॥ पूर्वेरूपधरवंशदेवतो लब्धबोधिरितिवीतमोहकः।

१ ' संपदोऽत्र १ इति ख पुस्तके।

निबेभौ हलधरस्तदाधिकं धूतमेघपटलः शशी यथा ॥७१॥ पांडवैः सह जरासुतान्वितस्तुंग्यभिष्यागिरिमस्तके ततः । संविधाय इरिदेहसंस्क्रियां जारसेयसावितीर्णराज्यकः ॥७२॥ शृंगमेवमचलस्य तस्य तैः संगतैः सविवतं ततः श्रितः । संगहानकृतनिश्रयो बलो भंगुरं समधिगम्य जीवितं ॥७३॥ पञ्जवस्थजिननाथशिष्यतां संसृतोस्म्यहमिह स्थितोऽपि सन्। इत्युदीर्य जगृहे मुनिस्थिति पंचमुष्टिभिरपास्य मूर्धजान् ॥७४॥ पारणासु पुरसंप्रवेशने वैपरीत्यमवगम्य योषितां । सत्रियोगभूदतोरणत्रती संतुतोष वनभैक्ष्यवर्तनैः ॥७५॥ पांडवास्तु बहुराजकन्यकाः संप्रदाय हरिवंशभूभुजे ! व्रेक्षस्र्येपुरसंद्रिकं निजं आत्मजान्यसुनिधाय शासने ॥७६॥ त्यक्तरागमपि पांडुनंदना संविभज्य निजसंपदा मुदौ।

१ 'इमे द्वे पंक्ती' ख पुस्तके न स्तः।

पुत्रयोजितनिजिश्रयोऽगमन् पस्त्रवारूयविषयं जिनं प्रति ॥७७॥ द्रौपदीप्रभृतयस्तदंगनाः संयमं प्रति निविष्टबुद्धयः । पांडवान नुगता विमोहिता संमृतौ विगतस्क्षधीयुषा ॥७८॥ द्वादशात्मभिद्यासतामनुप्रेक्षयानुमतया हलायुधः। व्यावृतोऽभवदखंडितस्थितिः सत्रिदंडदढखंडनोन्मुखः ॥७९॥ तिक्रमित्तमिति यत्र पूर्छना स्थानदेहधनसी ख्यबंधुषु । तत्र किचिद्पि नास्ति नित्यता आत्मनोऽन्यदिति चितयत्यसौ ॥८०॥ मृत्युदुःखपरिपीडितस्य मे व्याघ्रवक्त्रमृगशावकस्य वा। बांधवा न शरणं धनादि वा धर्मतोऽन्यदिति चिंतनामितः ॥८१॥ नैकयोनिकुलकोटिकुटसंसारचक्रमिह यांति जंतवः। प्रेरिताः कडुककर्मयंत्रकैः स्वामिभृत्यपित्पुत्रपूर्वतां ॥८२॥ एक एव भवभृत्प्रजायते मृत्युमेति पुनरेक एव तु ।

१ 'पांडवाननुगता जनन्यपि स्निग्धता विगतस्क्षधीस्तु या ' इति स पुस्तके ।

धर्ममेकमपहाय नापरः सत्सहाय इति चैकतास्मृतिः ।'८३॥ नित्यता मम तनोरिनत्यता चेतनोऽहमपचेतना तनुः। अन्यता मम शरीरतोऽपि यत्तत्किमंग ! पुनरन्यवस्तुन: ॥८४॥ शुक्रशोणितकुवीजजनमके सप्तथातुमयके त्रिदापके । कः शुचं तदनुगाशुचौ शुची रज्यते स्वपरयोः शरीरके ॥८५॥ कायवाद्मनसयोगभेदवानास्रवो भवति पुण्यपापयोः। कर्मबंधदृढशंखलश्चिरं संसरत्यसुभृदुग्रसंसृतौ ॥८६॥ स्यादद्विधास्रवनिरोधलक्षणः संवरः समितिगुप्तिपूर्वकैः। संवर सति सनिर्जरेऽसुभृत्सिध्यति स्वकृतकर्मसंक्षयात् ॥८७॥ द्रगतिष्वकुशलानुवंधिनी संयमासु कुशलानुवंधिनी। निर्जरा निरनुवंधिनी च सा चिंतिता परमयोगिनी शुभा ॥८८॥ लोकसंस्थितिरनाद्यनंतिका लोकगर्भबहुमध्यभागमाक्। अत्र ही षडसुकायसंहतिर्दुः खिनीति खुळ लोकचितना ॥८९॥

स्थावरे त्रसकुलेऽखिलेंद्रियैः पूर्णतादिषु सुधर्मलक्षणा । बोधिलब्धिरतिदुर्लभा भवेत्सत्समाधिमरणाप्तिसत्फला ॥९०॥ धर्म एष जिनभाषितः शिवप्राप्तिहेतुरवधादिलक्षणः। त्यागतोऽस्य भवदुः खितेत्यनुषेक्षिकांत्यग्रुभचित्यनात्मकाः ॥९१॥ इत्यनुश्रुतमनूनधीरनुप्रेक्षिकार्थमनुभावयन् मुद्दः। भ्रात्मोहमजयज्जयन्मुनिः सद्विविश्वतिपरीपहद्विषः ॥९२॥ बह्मिग्रहपरिग्रहोज्वलज्जाठराग्नि नठरोपरोधतः । मोक्षसाधनतयार्धभुग्व्यधातश्चतपरीपहजयं महामुनिः ॥९३॥ देहैनियदवयवाटवीप्लुषा दावमूर्तिनिभया पिपासया। निष्प्रतिक्रियधृतिर्ने बध्यते क्षांतिनीरदघटामिषिक्तया ॥९४॥ स्थंडिले निशि दिवा च योगिना तीत्रवाताहमबृष्टचनेहसि । वातवर्षविषमे तरोरधोऽयोधि शीतपरुषः परीषदः ॥ ९५ ॥

पर्वतायशिखरस्थितोऽजयद्येष्ममुष्णमभितः परीषद्धं । दावधूमवलयातपत्रसंछायमेव विनिवारितातपः ॥ ९६ ॥ गृढवृत्तिभिरनश्चिजंतुभिगीढपीतरुधिरोऽप्यकंपितः। सोदवान् दृहमसौ परीवहं प्रौदृदंशमशकोपलक्षितं ॥ ९७ ॥ सोंगलप्रमनपायमप्यविश्वास्यमेकदिनदुःखपालनं । सत्कलत्रमिव सत्रपं न्यधान्नाग्न्यमात्मवश्चगं परीषहं ॥ ९८ ॥ ध्यानयोग्यगिरिमार्गदुर्गभृदेक एव हि विहृत्य निग्रहे । धर्मसाधनरतिर्यथा रिपोर्च्यावृतो रतिपरीषहस्य सः ॥ ९९ ॥ भूलताकुटिलचापयोजितस्त्रीकटाक्षशरवार्षणं वृथा । कुर्वता मद्नयोधमूर्जितस्त्रीपरीषहजयः कृतोऽमुना ॥ १०० ॥ तीर्थभूमिविहतिः ससंयमावश्यकेष्वपरिहाणितो वजन्। वाहनाद्यनभिसंध्य चर्यया खिद्यतेस्म न परीषहारूयया ॥ १०१ ॥ प्रासुकास्वथ विविक्तभूमिषु ध्यानघौतिधिषणो विभूतधीः।

क्षेत्रकालनियतासनेष्वसौ बाध्यतसम् न निषद्ययाऽनिशं ॥ १०२ ॥ ध्यानतोध्ययनतो मुनिः क्रमादल्पकालनियताल्पनिद्रया । एकपार्श्वकृतभूमिशय्यया नावृतोऽपि निशि न प्रपीडितः ॥ १०३ ॥ दुर्जनेनिशितदुर्वचोऽस्रकैराहतोऽपि हृदयेऽतिदुस्सहैः। क्रोशबाधसहनः क्षमावृतः स्यामिति स्मृतिमदत्त धीरधीः ॥ १०४ ॥ अस्रशस्त्रनिवहैर्वपूर्वधः प्राप्यतं यदि नु मे तथाप्यलं सह्यते वधपरीषहो मयेत्येष बुद्धिमद्धादनागतं ॥ १०५ ॥ वाह्यमांतरमसौ तपश्चरत्रस्थिशेषवपुषः स्थिति प्रति । च्यापृतोऽपि समयच्यवस्थया याचनारूयमजयत्परीषहं ॥ १०६ ॥ मोनिना निजशरीरदर्शिना संहितेन हितचंडचर्यया। लब्ध्यलब्धिसुधियासुना जितोऽलाभनामविदितः परीषहः ॥ १०७ ॥ रूक्षशीतलविरुद्धभुक्तिजां वातिपत्तकप्रकापजां रुजं। सोऽप्रतिक्रियतयाऽवधीरयन् रोगसंज्ञमजयत्परीषहं ॥ १०८ ॥

लाक्षलेशतृणशर्करादिभिः कर्कशैः स शयनासनादिषु । पीडिनोऽप्यविकृतांतरस्त्रणस्पर्शस्त्रहिमरणत्परीषहं ॥ १०९ ॥ अस्पृशन् करनर्खेस्तनुं मुनिः शाभते सम धवलो मलावृतः। शैलतुंगशिखराश्रितो यथा कालमेघपटलावृतः शशी ॥ ११० ॥ नादरे परकृते कृतादरोऽनादरे च न मनोविकारवान । शुद्धधीर्विषहतेस्म तत्पुरस्कारस्द्रहमपरं परीषहं ॥ १११ ॥ वादिवाग्मिगमको महाकविः सांप्रतं सकलशास्त्रविद्भवि। नास्मदन्य इति हि स्मयो मनाक् प्रज्ञया न परिषद्य दृषितः ॥११२॥ अझ एष न पशुर्न मानुषो वीक्ष्यते न हि न भाषते मुषा। मौनिमित्यबुधवाच्यवज्ञयाऽज्ञानमेष सहते परीषद्दं ॥ ११३ ॥ वार्तमुत्रतपसा महर्घयः पूर्वमित्यनुपलविधतोऽधुना । इत्यनुक्तिरतिशुद्धदर्शनो दर्शनाख्यमसहत्परीषहं ॥ ११४॥

इत्यशेषितपरीषहारिणा सीरिणा विषयदोषहारिणा ।
अभ्यत्प्यत तपोऽतिहारिणा जैनसचरणभूविहारिणा ॥ ११५ ॥
इति "अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे" हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य बलदेवतपोवर्णनो नाम
त्रिषष्टितमः सर्गः।

चतुःषष्टितमः सर्गः ।

अथ ते पांडवाश्रंडसंसारभयभीरवः । प्राप्य पछवदेशेषु विहरंतं जिनेश्वरं ॥ १ ॥ चतुर्विधामराकीणसमवस्थानमंडनं । तं ते ववंदिरं देवं परीत्य परमेश्वरं ॥ २ ॥ पीत्वा धर्मामृतं लब्धजिनेंद्रधनकालतः । पूर्वजनमानि तेऽपृच्छन् जिनेंद्रोऽप्यगदीदिति ॥ ३ ॥ अत्रैव भरतक्षेत्रे चंपायां मेधवाहने । रक्षति क्षितिपे क्षोणीं कुरुवंशविभूषणे ॥ ४ ॥ विप्रस्य सोमदेवस्य सोमिलायां त्रयः सुताः । प्रथमः सोमदत्त्रोऽभूत्सोमिलः सोमभूतिना ॥ ५ ॥ अप्रिभूत्यिप्रलोज्नुतास्तेषां मानुलजाः क्रमात् । धनश्रीरिप सोमश्रीनागश्रीरिति योषितः ॥ ६ ॥ श्रीरभोगसंसारनिर्वेदं सर्ववेदिवत् । सोमदेवः परिप्राप्य प्रात्राजीज्जिनशासने ॥ ७ ॥

त्रयोऽत्र भ्रातरस्तेऽपि जिनशामनभाविताः। गृहधर्मरता जाता धर्मकामार्थसेविनः ॥ ८ ॥ भिक्षाकालेऽन्यदा तेषां गृहं धर्मकचिर्यतिः । धर्मपिंड इवाखंडः प्रविष्टश्चंद्रचर्यया ॥ ९ ॥ प्रतिगृह्य तमुन्थाय सोमद् नो यमीश्वरं । कार्यव्यग्रतया दाने नागश्रियमयोजयत् ॥ १० ॥ सा स्वपापोदयात्सार्थां कोपावेशवशाब्ददात् । विषात्रमेष सन्यासकारी सर्वार्थसिद्धिमैत् ॥ ११॥ नागश्रीदुष्कृतं ज्ञात्वा ने त्रयाऽपि सहोदराः । दीक्षां वरुणगुर्वते निर्विन्नाः प्रतिपेदिरे ॥ १२ ॥ धनश्रीश्रापि मित्रश्रीग्रेणवन्यार्यिकांतिके । अदीक्षिपातां निःशेषभववासविषादतः ॥ १३ ॥ ज्ञानपंचकसिद्धचे ते दर्शनत्रिकशुद्धये । चारित्रतपसां शुद्धचे प्रवृत्ताश्वरणोद्यताः ॥ १४ ॥ स्यात्सामायिकचारित्रं सर्वत्र समभावकं । सर्वमावद्ययोगस्य पत्याख्यानमखंडितं ॥ १५॥ स्वप्रमादकृतानर्थप्रवंधप्रतिलोपने । सम्यक् प्रतिक्रिया या सा छेदोपस्थापना मता ॥ १६ ॥ विशिष्टा परिहारेण शुद्धिर्यत्र प्रतिष्ठिता । परिहारविशुद्धचारूयं चारित्रं तत्प्रकथ्यते ॥ १७ ॥ संपरायाः कषायास्तु यत्र ते सूक्ष्मवृत्तयः । तत्सूक्ष्मसांपरायाख्यं चारित्रं पापनोदनं ॥ १८ ॥ यथाक्यातमथाक्यातमिति वा परिभाषितं । सुशांततीक्ष्णमोहं तचारित्रं मोक्षसाधनं ॥ १९ ॥ तपः पोढा भवद्वाह्यमथानशनपूर्वकं । अभ्यंतरं तपः पोढा प्रायश्चित्तादिकं मतं ॥ २०॥

संयमादिकसर्ध्यानसिद्धिदृष्टफलाप्तये । रागोच्छित्यै तपो नानाविधं ह्यनशनं स्पृतं ॥ २१ ॥ दोषोपश्चयसंतोषस्वाध्यायध्यानसिद्धये । संयमायावमोदर्ये प्रजागरणकारणं ॥ २२ ॥ मिक्षार्थिमुनिसंकल्पा ये वेस्मात्राभिगोचराः । आज्ञानिवृत्तये वृत्तिपरिसंख्यानमिप्यते ॥२३॥ घृतक्षीरादिवृष्यात्मरसानां विरद्दः परं । तयो रसपरित्यामो निर्द्रेद्रियजयाय सः ॥२४॥ पशुस्तिप्रविविक्तेषु स्थानेषु प्रासुकेषु यत् । वर्तनं व्रतशुद्धचै तद्विविक्तशयनासनं ॥२५॥ त्रिकालयोगप्रतिमास्थानपूर्वः स्वयंकृतः । कायक्रेशः सुखत्यागो मोक्षमार्गप्रभावनः ॥२६॥ वाह्यद्रज्यव्यपेक्षत्वात्परप्रत्ययहेतुकः । षड्विधस्यास्य बाह्यत्वं तपसः प्रतिपादनं ॥२७॥ मनोनियमनार्थत्वादाभ्यंतरमभिष्ठुतं । प्रायश्चित्तं कृतावद्यशोधनं नवधात्र तु ॥२८॥ चतुर्धा विनयः पुज्येष्वादरो दशधा पुनः । वैय्यावृत्त्यं स्वकामेनान्यद्रव्यैरप्युपासनं ॥२९॥ स्वाध्यायः पंचधा ज्ञानभावनालस्य वर्जनं । स्वसंकल्पपरित्यागो व्युत्सर्गो द्विविधः पुनः ॥३०॥ चित्ताक्षेपपरित्यागो ध्यानं चापि चतुर्विधं । आतं रौद्रं च दुध्यीनं धर्म्यशुक्ले तु शोभने ॥३१॥ तत्रालोचनकं कृच्छं दशदोषविवर्जितं । प्रमादकृतदोषाणां गुरवे विनिवेदिनं ॥३२॥ मिथ्या मे दुष्कृतार्धेर्यत्स्वाभिव्याक्तिः प्रतिक्रियां । दोपव्यपोद्दनं साधु तत्प्रतिक्रमणं मतं ॥३३

आलोचनाद्यतः शुद्धिः प्रतिक्रमणतोऽपि च । तदुभयं तु तदुद्दिष्टं प्रायश्चितं विश्वद्भित् ॥३४॥ स्याद्विवेको विभजनं यः संसक्तान्नपानयोः । कामोत्सर्गादिकरणं व्युत्मर्गः संप्रकीर्तितः ॥३५॥ तपस्त्वनशनाद्येव प्रायश्चित्तप्रदीरितं । प्रव्रज्या हापनं छेदो दिनमासादिभिर्यतेः ॥३६॥ पक्षमासादिभेदेन दूरतः परिवर्जनं । परिहारः पुनदीक्षा म्यादुपस्थापना पुनः ॥३७॥ कालानतिक्रमादौ तु ज्ञानाचारे प्रधा मते । यथाक्तग्रहणादिर्यः स ज्ञानविनयो मतः ॥३८॥ अष्टधा दर्शनाचारे निक्शंकादिषु संस्थित । विनयो दर्शने दक्ष्यो गुणदोषविवेकिता ॥३९॥ त्रयोदश्विधोदारचारित्राचारगोचरा । निरतीचारता चारुश्वरित्रविनयः परः ॥४०॥ या प्रत्यक्षपरोक्षेषु प्रत्युत्थानादिकाः क्रियाः। गुर्वादिषु यथायोग्यं विनयश्रीपचारिकः ॥४१॥ आचार्ये चाप्युपाध्याये तपःश्रेष्ठे तपस्विनि । शिक्षाशीले यतौ शैक्षे ग्रस्ते ग्लाने रुजादिभिः ॥४२॥ गणे स्थिवरसंतानलक्षणे च कुलेऽपि च । दीक्षकाचार्यशिष्यादिसंस्त्याय निजलक्षणे ॥४३॥ गृहिश्रमणसंघाते संघ च गुणसंघके । चिरप्रव्रजित साधी मनोबे लोकसम्मते ॥४४॥ व्याधिमिध्यात्वसंपातपरीषहरिषूद्ये । वैष्यावृत्त्यं यथायोग्यं विचिकित्साव्यपोहनं ॥४५॥ प्रथार्थयोः प्रदानं हि वाचना पृच्छनं पुनः । परानुयोगो निश्चित्यै निश्चितानुबलाय वा ॥४६॥

ज्ञानस्य मनसाभ्यासोऽनुप्रेक्षा परिवर्तनं । आस्राये देशनान्येषामुपदेशोऽपि धर्मगः ॥४७॥ प्रशस्ताध्यवसायार्थप्रतिज्ञाशयलब्धये । संवेगाय तपोवृद्धये स्वाध्यायः पंचधा भवेत् ॥४८॥ क्रोधाद्यभ्यंतरोपाधेः कायस्य सविचारता । वाह्यापधरकल्पस्य त्यागोप्युत्सर्ग इज्यते ॥४९॥ निस्संगानिर्भयत्वाय जीविताशानिवृत्तये । स बाह्याभ्यंतरोपध्योवर्युत्सर्गः संप्रजायते ॥५०॥ तपसा निर्जरा मुत्त्यै संवृतस्योपजायते । परिणामस्य भदेन प्रतिस्थानं तु भिद्यते ॥५१॥ भन्यः पंचेद्रियः संज्ञी पर्याप्तो लब्धिभिर्युतः । अंतःशुद्धिप्रवृद्धो स्याद्धहुकमीविनिर्जरः ॥५२॥ ततः प्रथमसम्यक्तवलाभकारणसन्निधा । सम्यग्दष्टिर्भवेत्स स्यादसंख्यगुणनिर्जरः ॥५३॥ ततः श्रावकतापन्नोऽसंख्येयगुणनिर्जरः । ततोऽपि विरतस्तरमादनंतानां वियोजकः ॥५४॥ ततो दर्शनमोहस्य क्षपकः क्षायिकोद्धकृत् । ततश्रारित्रमोहस्य सर्वोपशमको यतिः ॥५५॥ उपशांतकषायोऽतोऽसंख्ययगुणिनर्जरः । ततश्चारित्रमोहस्य क्षपकः क्षपकाभिधः ॥५६॥ ततः श्लीणकषायाख्योऽसंख्येयगुणनिर्जरः । जिनेंद्रः केवली तस्मादनंतज्ञानदर्शनः ॥५७॥ पुलाको वक्कशश्रेद कुशीलो गुणशीलवान् । निर्प्रेथः स्नातकश्रेति निर्प्रेथः पंचधा मताः ॥५८॥ पुलाका भावनाहीना ये गुणेषूत्तरेषु ते । न्यूनाः कचित्कदाचिच पुलाकाभा व्रतेष्वपि ॥५९॥

अखंडितव्रताः कायभूषोपकरणानुगाः । अविविक्तपरीवारा सवला वकुशाः स्मृताः ॥६०॥ परिपूर्णीभया जातूत्तरगुणविरोधिनः । प्रतिसेवनाकुशीला य अविविक्तपरिप्रहाः ॥६१॥ शमितान्यकषाया ये समंज्वलनमात्रकाः । ते कषायकुशीलाः स्युः कुशीला द्विविधा यतः ॥६२॥ अन्यक्तोदयकर्माणां ये पयोदंडराजिवत् । निर्प्रथास्तं मुहूर्तोध्वीद्रिद्यमानात्मकेवलाः ॥६३॥ प्रक्षीणघातकर्माणः स्नातकाः केवलीश्वराः । एते पंचापि निर्प्रधा नैगमादिनयाश्रयात् ॥६४॥ संयमादिभिरष्टाभिरतुयोगैर्यथाऋमं । ते पुलाकादयः साध्याः साध्यसाधनभेदिनः ॥६५॥ प्रतिसेवनाकुशीलाः पुलाका वकुशा द्वयोः । प्राक्कपायकुशीलाः स्युरंतवर्ज्ये चतुष्ट्ये ॥६६॥ संयमे च यथाख्याते निर्प्रथस्नातकाः स्थिताः। श्रुताद्योऽपि पंचानां प्रकथ्यंते यथाक्रमं॥६७॥ प्रतिसेवनाकुशीलाः पुलाका वकुशाः स्थिताः । दशपूर्वाण्यभिन्नानि विभ्रत्युत्कर्षतः श्रुतं ॥६८॥ ये कषायकुरीला ये निर्प्रथाख्याश्च संयताः । ते चतुर्दशपूर्वाणि सर्वे विश्रति सर्वथा ॥६९॥ जघन्येन पुलाकस्य श्रुतमाचारवस्तु तत् । निर्ग्रथांतयतीनां त्वष्टी प्रवचनमातरः ॥७०॥ वतानः राज्यभूक्तेश्व बलादन्यतमं प्रति । सेवमानः पुलाकः स्यात्परेपामभियोगतः ॥७१॥ बकुश्वः सोपकरणो बहूपकरणित्रयः । शरीरवकुश्वः कायसंस्कारं प्रतिसेवते ॥७२॥

प्रतिसेवनाकुशील उत्तरेषु विराधनं । गुणेषु सेवते कांचिदविराधितमूलकः ॥७३॥ स्युः कषायकुशीलास्तु रहितप्रतिसेवनाः । निर्प्रथाः स्नातकाश्चापि ते सर्वे सर्वतीर्थजाः ॥७४॥ मावलिंगं प्रतीत्यामी निर्प्रेथाः पंच लिंगिनः। प्रतीत्य द्रव्यलिंगं तु भजनीया मनीषिभिः॥७५॥ पुलाकस्योत्तरास्तिस्रो वक्कलप्रतिसेवना - कुशीलयोश्च षह्मेदा कषाये चतुरुत्तराः ॥७६॥ स्यात्सृक्ष्मसांपराये च निर्प्रथस्नातकेऽपि च । शुक्लैव केवला लेव्याऽयोगाः लेक्याविवर्जिताः ॥ पुलाकस्योपपादः स्यात्सहस्रारे परायुषः । प्रतिसेवनाकुशीलवकुशस्यारणेऽच्युते ॥७८॥ तथा सर्वार्थिसिद्धौ तु निर्प्रथांत्यकुक्षीलयोः । द्विसागरोपमायुष्काः सौधर्मे ते जघन्यतः ॥७९॥ संयमस्थानभेदास्तु स्युः कवायनिमित्तकाः । असंख्येयतमानंतगुणसंयमलब्धयः ॥८०॥ तत्र सर्वजघन्यानि लिब्धस्थानानि सर्वदा । स्युः कषायकुशीलस्य पुलाकस्य च योगिनः॥८१॥ गच्छतस्तावसंख्येयस्थानानि युगपत्ततः। व्युच्छिद्यते पुलाकोऽन्यस्त्वसंख्येयानि गच्छति॥८२॥ वकुशेन कुशीली द्वी स्थानानि युगपत्ततः । असंख्यानि च तौ यातौ वकुशस्त्ववहीयते ॥८३॥ असंख्येयानि गत्वातः स्थानानि प्रतिसवना – कुशीला हीयते तस्माद्यः कषायकुशीलकः ॥८४॥

वतुःषष्टितमः सर्गः।

स्थानान्यतोऽकषायाणि निर्प्रेथः प्रतिपद्यते । सोऽसंख्येयानि गत्वातो न्युच्छेदग्रुपगच्छति॥८५॥ स्थानमेकमतस्यूर्ध्वं गत्वानंतगुणार्धिकः । स्नातकः कृतकर्मातो निर्वाणं प्रतिपद्यते ॥८६॥ क्षेत्रकालादिभिः सिद्धाः साध्या द्वादशिभस्तु ते । अनुयोगैर्यथायोग्यं नयद्वयाविवक्षया ॥८७॥ सिद्धिक्षेत्रेमला सिद्धिरात्माकाशप्रदेशयोः । प्रत्युत्पन्नप्रतिप्राहिनययोगादसंगिनां ॥८८॥ कर्मभूमिषु सर्वासु जन्म प्रति च संहति । संसिद्धिमीनुषे क्षेत्रे भूतप्राहिनयेक्षया ॥८९॥ एकस्मिन् समये कालात्प्रत्युत्पन्ननयेक्षया । भूतग्राहिनयेक्षातो जन्मतोऽप्यविशेषतः ॥९०॥ उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योजीतः सिद्धचिति जन्मवान् । विशेषेणावसर्पिण्यां तृतीयांततुरीययो :॥९१॥ दुःखमायां तु संजातो दुःखमायां न सिद्धचिति । उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योः संहारात्सर्वदा पुनः ॥९२॥ सिद्धिः सिद्धिगतौ ज्ञेया सुमनुष्यगतौ यथा । अवेदत्वेन लिंगेन भावतस्तु त्रिवेदतः ॥९३॥ न द्रव्यादुद्रव्यतः सिद्धिः पुर्क्तिगेनैव निश्चिता । निर्प्रेथेन च लिंगेन सप्रंथेनाथवा न या ॥९४॥ तीर्थिसिद्धिद्विंघा तीर्थकारीतरविकल्पतः । साते तीर्थकरे सिद्धा असतीतीतरे द्विधा ॥९५॥ सिद्धिरव्यपदेशेन नयादेकेन वा पुनः । चतुर्भिः पंचिभिर्वापि चारित्रैरुपजायते ॥ ९६॥ सिद्धिः प्रत्येकबुद्धानां स्वतो बोधिग्रुपेयुषां। तथा बोधितबुद्धानां परतो बोधिलाभिनां ॥९७॥

सिद्धिर्ज्ञानविशेषैरेकद्वित्रिचतुर्थकैः । अवगाहेन चोत्कृष्टजघन्यांतर्भिदावता ॥९८॥ अवगाहनमुत्कृष्टमूनं पंचधनुःशती । पंचिवंशा च देशोनारत्नयोर्षचतुर्थकाः ॥९९॥ मध्ये उनेकविकल्पास्तु यथासंभवमीरिताः । तत्र सिद्धचिति चैतस्मिक्नेकस्मिन्नवगाहने ॥१००॥ अंतरः श्रून्यकालः स्यादंतरं सिद्धचतां पुनः । जघन्येनैकसमयो मासानां पद्वमन्यथा ॥१०१॥ जघन्येनैक एवेकसमये सिद्धचति ध्रुवं । तथात्कर्षेणाष्टशतसंख्यास्ते संख्यया स्मृताः ॥१०२॥ क्षेत्रादिभेदभिन्नानां संख्याभेदः परस्परं । ख्यातमल्पबहुत्वं च सिद्धिक्षेत्रे न विद्यते ॥१०३॥ भृतपूर्वव्यपेक्षातश्चित्यते तस्र तद्यथा । जन्मनः संहतेश्वेति क्षेत्रसिद्धा द्विषा यतः ॥१०४॥ अल्पे संहारसिद्धास्ते जन्मसिद्धास्तु तत्त्वतः । म्युः संख्येयगुणाः सर्वे सार्वसर्वज्ञशासने ॥१०५॥ . ऊर्ध्वलोकस्य सिद्धा ये स्तोकास्तेऽधोजगद्भताः। स्युः संख्येयगुणास्तिर्यग्लोकसिद्धास्तथा ततः॥ स्तोकाः समुद्रसिद्धास्तु स्युः संख्येयगुणाः पुनः द्वीपसिद्धा इतीहत्थमप्यशेषेण भाषिताः॥१०७॥ लवणोदे त्रयःसिद्धाः सर्वस्तोकास्तु ते स्तुताः। कालोदसिद्धा बोद्धच्यास्तत्संख्येयगुणाः सदा १०८ ये जंबुद्वीपसिद्धास्ते स्युः संख्येयगुणास्तथा । धातकाखंडसिद्धाश्च पुष्करद्वीपगास्तथा ॥१०९॥ यथा क्षेत्रविभागेन प्रोक्ताल्पबद्धता तथा। सा कालादिविभागेन वेदितव्या यथागमं ॥११०॥

इतिदृग्ज्ञानचारित्रतपमामत्युपासकाः । सोमदत्तादयौत्ये ते पंच भूत्वारणाच्युते ॥१११॥ देवाः सामानिका भागं द्वाविवत्यन्धिजीविनः । भ्रंजानस्तस्थुरत्यंतशुद्धदर्शनदर्शनाः ॥११२॥ नागश्रीरिप मृत्वाप फलं धूमप्रभावनी । अनुभूय महादुःखं सा सप्तदशसागरं ॥११३॥ भूत्वा स्वयंत्रभद्वीपे दुष्टो दृष्टिविषोरगः । त्रिसागरोपमायुष्कां मृत्वागाद्वालुकात्रभां ॥११४॥ तत्रानुभूय दुःखोघांश्चिरादुद्वर्य पापतः । तत्र स्थावरकायेषु सानयत्सागरद्वयं ॥ ११५॥ ततो मातंगकन्याभूचंपायां सान्यदा मुनेः । समाधिगुप्ततः कृत्वा मधुमांसादिवर्जनं ॥११६॥ जीवितांते सुबंधोःस्याचंपायामेव वैश्यतः । धनवत्यां सुता जाता नाम्ना च सुकुमारिका ॥११७॥ पापानुबंधदोषेण सुदुर्गधशरीरिका । रूपवत्यपि विद्वेष्या जाता युवजनस्य सा ॥११८॥ वैज्यस्य धनदेवस्याशोकदत्तासमुद्धवो । तनया जिनदेवश्च जिनदत्तश्च विश्वतौ ॥११९॥ कन्यां तामपि दुर्गधां वृतां बंधुभिरग्रजः । परित्यज्य प्रवत्राज सुत्रतः सुत्रतांतिके ॥१२०॥ कनीयान् जिनद्त्तम्तां वंधुवाक्योपरोधनः । परिणीयापि तत्याज दुर्गंधामतिदूरतः ॥१२१॥ आत्मानमपि निदंती सोपवासान्यदा च सा । क्षांतार्यामार्थिकायुक्तां भोजियत्वातिभक्तितः ॥ अभिवंद्य तदापुच्छदार्थिके केन हेतुना । इमे परमरूपिण्यो स्थिते तपसि दुष्करे ॥१२३॥

सेति पृष्टा जगौ हेतुमार्ययोस्तपसस्तयोः । प्रवोधनाय तस्याश्र करुणापरिनोदिता ॥१२४॥ श्रयतां सुकुमारि द्वे सुकुमारकुमारिके । हेतुना येन तापस्ये तपस्विन्यौ व्यवस्थिते ॥१२५॥ सौधर्मादिपतेर्देव्याविमे पूर्वत्र जन्मनि । विमला सुप्रभा चेति सुप्रसिद्धे बभूवतुः ॥१२६॥ ते नंदीश्वरयात्रायां जिनपूजार्थमागते । कथंचिज्जातसंवेगे चित्तांतरमिति श्रिते ॥१२७॥ मनुष्यभवसंप्राप्तो करिष्यावो महत्तपः। आवां स्त्रीत्विनिमित्तं तु येन दुःखं न दृश्यते ॥१२८॥ इति संगीर्य ते देव्यो दिवः प्रश्नुत्य भूपते । श्रीषणस्येह साकेते श्रीकांतायां सुयोषिति ॥१२९॥ हरिषेणा सुता ज्येष्ठा श्रीवेणा च कनीयसी । जाते जाते च कांते ते यौवनश्रीविभूषिते ॥१३०॥ स्वयंवरविधौ स्मृत्वा पूर्व जनम च संगरं। बंधुलोकं परित्यज्य कुमार्यौ तपसि स्थिते ॥१३१॥ इति श्रुत्वार्यिकावाक्यं निर्विण्णा सुकुमारिका । तदंते सा प्रवत्राज संसारभयवेदिनी ॥१३२॥ तपस्विनीभिरन्याभिस्तपस्यंती तपस्विनी। कालं नीत्वती नीत्या तपसा शोषितांगिका ॥१३३॥ वसंतसेनां गणिकां कामुकैः परित्रेष्टितां । दृष्टा वनविहारेऽसावेकदा क्रीडनोद्यतां ॥१३४॥ निदानमकरोतिकलष्टा दुर्यशः प्राप्तिकारणं। सीमाग्यमीदृशं मेऽन्ये जन्मन्यस्त्वित साद्रा ॥१३५॥

स्वमर्द्धः सोमभूतेस्तु भृत्वाभूदारणाच्युते । देवी सा पंचपंचाशत्पस्यतुल्यानिजास्थितिः ॥१३६॥ च्युत्वा ते पांडुराजस्य सामदत्तादयस्त्रयः । कुंत्यां युधिष्ठिरो भीमः पार्थश्रेत्यभवत्सुताः॥१३७॥ धनश्रीपूर्वको देवो मित्रश्रीपूर्वकस्तथा । नकुलः सहदवश्र मद्रचां जातौ शरीरजौ ॥१३८॥ सा कुमारी दिवश्रयुत्वा द्वपदस्य शरीरजा। जाता दृढरथाख्यायां स्त्रियां द्रौपद्यभिख्यया॥१३९॥ द्रीपद्यर्जनयोर्योगः पूर्वस्नेहेन सांप्रतं । सुन्यक्तं सांप्रतं जातो राघावेधपुरस्सरः ॥१४०॥ ज्येष्ठानां भविता सिद्धिस्त्रयाणामिह जन्मनि । सर्वार्थसिद्धिर्हि तयोरंत्यपांडवयोरिह ॥१४१॥ सम्यग्दर्शनशुद्धाया द्रौपद्यास्तपसः क्रमात् । आरणाच्युतदेवत्वपूर्विका सिद्धिरिष्यते ॥१४२॥ इत्थं ते पांडवाः श्रुत्वा धर्मं पूर्वभवांस्तथा । संवेगिनो जिनस्यांते संयमं प्रतिपेदिरे ॥१४३॥ कंती च द्रौपदी देवी सुभद्राद्याश्च योषितः । राजीमत्याः समीपे ताः समस्तास्तपसि स्थिताः ॥ क्वानदर्शनचारित्रेर्वतैः समितिगुप्तिभिः । आत्मानं भावयंतस्ते पांडवाद्यास्तपोऽचरन् ॥१४५॥ क्रंत्यग्रेण वितीर्णभैक्षनियमः श्रुत्क्षामगात्रः क्षमः

षण्मासैरथ भीमसेनम्रुनिभिनिष्ठाप्य स्वांतक्रमं।

षष्ठाद्यैरुपवासभेदविधिभिर्निष्ठाभिमुख्यैः स्थितै-ज्येष्ठाद्येविजहार योगिभिरिलां जैनागमांभोधिभिः ॥१४६॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ युधिष्ठिरादिपंचपांडव-प्रवज्यावर्णनो नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ।

षंत्रषष्टितमः सर्गः।

अथ सर्वामराकीर्णस्तिथिकृत्कृतदेशनः । उत्तरापथतो देशं सुराष्ट्रमभितो ययौ ॥ १ ॥ उत्तरायणसुरक्रम्य दक्षिणायनमागते । जिनाके तेजसो वृत्तिः प्राग्वत्सर्वत्रगाभवत् ॥२॥ आईत्यविभवापते मही विहरतीथरे । दक्षिणां दक्षिणादेशा भेजिरे स्वर्गविभ्रमाः ॥३॥ तत्रोर्ज्ञयंतमंतेऽसावंतकल्याणभूतिभाक् । आरुरोह स्वभावन नृसुरासुरसेवितः ॥४॥ पूर्ववत्समवस्थानभूमिस्तत्राभवत्प्रभोः । तिर्थग्मानवदेवीधरनधेः समिधिष्ठिताः ॥५॥ भर्मं तत्र जिनोऽवोचद्रत्नित्रयण्यवनं । स्वर्गापवर्गसौरूयैकसाधनं साधुसम्मतं ॥६॥

पंचवचितमः सगेः।

निषद्यायां यथाद्यायां पूर्व सर्वहितो जिनः । अंत्यायां च तथा धर्म स सविस्तरमञ्जवीत ॥७॥ ऊर्ध्वज्वलनमुष्णत्वं यथाग्रेः शीतताप्यपां । जवनं मरुतस्तिर्यग्भास्वरत्वं च तेजसः ॥८॥ अमृतित्वं यथा व्योम्नः स्वभावाद्वारणं क्षितः । कृतार्थस्य जिनेंद्रस्य तथा धर्मस्य देशनं ॥९॥ अघातिकर्मणामंतं तता योगनिरोधकृत् । कृत्वानेकशतैः सिद्धि जिनेंद्रो मुनिभिर्ययौ ॥१०॥ परिनिर्वाणकल्याणपूजामंत्यशरीरगां । चतुर्विधसुरा जैनीं चकुः शक्रपुरोगमाः ॥११॥ गंधपुष्पादिभिदिंच्येः पूजितास्तनवः क्षणात्। जैनाद्या द्योतयंत्यो द्यां विलीना विद्युतो यथा॥१२॥ स्वभावीयं जिनादीनां शरीरपरमाणवः । ग्रुंचति स्कंधतामंते क्षणात्क्षणरुचामिव ॥१३॥ ऊर्जयंतिगरों वजी वजेणालिख्य पावनं । लोके सिद्धिशिलां चके जिनलक्षणयुक्तिभिः ॥ १४॥ वरदत्तादिसंघं च वंदित्वा वासवादयः । देवा नृपतयश्चापि ययुः सर्वे यथायथं ॥१५॥ दशाहीदयो मुनयः पर्सहोदरमंयुताः । सिद्धि प्राप्तास्तथान्येऽपि शंबप्रद्युम्नपूर्वकाः ॥१६॥ ऊर्जयंतादिनिर्वाणस्थानानि भुवने ततः । तीर्थयात्रागतानेकभव्यसेव्यानि रेजिरे ॥१७॥ बारवा भगवतः सिद्धि पंच पांडवसाधवः । शत्रुंजयगिरौ धीराः प्रतिमायोगिनः स्थिताः ॥१८॥

दुर्योधनान्वयस्तत्र स्थितो युर्धवरोधनः । श्रुत्वागत्याकरोद्वैरादुपसर्गं सुदुस्सहं ॥१९॥ तप्तायोमयमूर्तीनि मुकुटानि ज्वलंत्यलं । कटकैः कटिस्त्रादि तनमुर्घादिष्वयोजयत् ॥२०॥ रौद्रं दाहोपसर्गं ते मेनिर हिमशीतलं । वीराः कमीविपाकज्ञाः कर्मक्षयकृतौ क्षमाः ।।२१॥ शुक्लध्यानसमाविष्टा भीमार्जुनयुधिष्ठिराः । कृत्वाष्टविधकमौतं मोक्षं जग्मुस्रयोऽक्षयं ॥२२॥ नकुलः सहदेवश्र ज्येष्ठदाहं निरीक्ष्य तौ । अनाकुलितचेतस्कौ जातौ सर्वार्थसिद्धिजौ ॥२३॥ नारदोऽपि नरश्रेष्टः प्रवच्य तपसो बलात् । कृत्वा भवक्षयं मोक्षमक्षयं सम्रुपेयिवान् ॥२४॥ अन्येऽपि बहवो भव्याः सुरत्नत्रयधारिणः । मोक्षं प्राप्ताः परे स्वर्गसासम्भवसंख्यया ॥२५॥ तुंगिकाशिखरारूढो बलदेवोऽपि दुष्करं । तपो नानाविधं चक्रे भवचक्रश्वयोद्यतः ॥२६॥ एकद्वित्र्यादिषण्मासप्यतोषोषितरसो । कवायवपुवां चक्रे शोषणं पोषणं धृतेः ॥२७॥ कांतारभिक्षया प्राणधारणां कर्तुमुद्यतः । भ्रमन् कांतारमध्येन्यैर्घ्यलेकि ग्रंशिविश्रमः ॥२८॥ पुरग्रामादिषु रूयातां श्रुत्वा वार्ता तथाविधां। पर्यतवासिनो भूपाः प्राप्ताः क्षुभितमानसाः॥२९॥ शंकाविषसमापन्नानानावहरणाश्रितान् । सिद्धार्थस्तान् तथालोक्य सृष्टवान् सिंहसंततिं ॥३०॥

१ 'भ्रुपवरोधन' इति स पुस्तके।

मुनिपादसमीपे तान् सिंहानालोक्य भूभृतः । ते ज्ञातमुनिसामध्याः प्रणम्योपशमं ययुः ॥३१॥ ततः प्रभृत्यसौ लोके नरसिंहः इति श्रुति । सिंहोरस्को इली प्राप्तः सिंहानुचरसंयतः ॥३२॥ एकं वर्षशतं कृत्वा तपो हलधरो मुनिः । समाराध्य परिप्राप्तो ब्रह्मलोके सुरेशतां ॥३३॥ तत्र पद्मोत्तरे नाम्नि विमाने रत्नभास्वरे । देवदेवीगणाकीर्णे प्रासादोद्यानमंडिते ॥३४॥ मृद्पपादशय्यायाग्रुद्पादि बलोऽमरः । महामणिरिवोदाररत्नाकरमहाक्षितौ ॥३५॥ भाषामनःशरीराक्षप्राणाहारप्रसिद्धिभिः । षड्भिः पर्याप्तिभिः सद्यः पर्याप्तोऽभूतसुरोत्तमः ॥३६॥ श्यने सर्वतोभद्रे वस्ताभरणभूषितः । विबुधः सुखनिद्रांते यथात्र नवयौवनः ॥३७॥ विलोक्यमानमालोक्य शब्दैरमरयोषितां । सुराणामनुरक्तानामप्यसावभिनंदितः ॥३८॥ चंद्रादित्याधिकोदारप्रभावलयदेहभृत् । इति दध्यौ धृतध्यानः प्रमदापूर्णमानसः ॥३९॥ कोऽयं रम्यतमो देशः कोयं प्रमुदितो जनः। कोहं काद्य भवोयं मे धर्मः को वार्जितो मया॥४०॥ बोधितः सुरमुख्यैः स सभवप्रत्ययावधिः । विवेद सहसा देवः पौर्वापर्यमशेषतः ॥४१॥ ज्ञातपूर्वभवाशेषबंधुर्वधुहितोद्यतः । प्राप्ताभिषेककल्याणः स्वीकृतात्मपरिच्छदः ॥४२॥ अवधिज्ञातकृष्णश्च गत्वासौ वालुकाप्रभां । दृष्टाऽनुजं निजं देवो दुःखितं दुःखितोऽभवत ॥४३॥

महाप्रभावसंपन्ने देवे तत्र तथास्थिते । शब्दगंधरसस्पर्शाः शुभतामशुभा ययुः ॥४४॥ एहाहि कृष्ण योहं ते आता ज्येष्ठो हलायुधः। ब्रह्मलोकाधियो भूत्वा त्वत्समीपमिहागतः ॥४५॥ इत्युक्त्वा तं समुद्भत्य स्वर्लोकं नेतुमुद्यते । देवे तस्य व्यलीयंते गात्राणि नवनीतवत् ॥४६॥ ततः कृष्णो जगौ देव भ्रातः किं व्यर्थचेष्टितैः। किन ज्ञातं यथा सर्वे जीवाः स्वकृतभोगिनः॥ यद्येन यादृशं कर्म संसारे समुपार्जितं । तत्तेन तादृशं आतर्नियमादनुभूयते ॥४८॥ शक्नुयुः सुखमाहतुँ हतुँ वा दुःखमंगिनां । देवा यदि ततो प्रति मुत्युदुःखं निजं न किं ॥४९॥ भ्रातयीहि ततः स्वर्ग भुंक्ष्व पुण्यफलं निजं । आयुषोंते इहमप्येमि मोक्षहेतुं मनुष्यतां ॥५०॥ आवां तत्र तपः कृत्वा जिनशासनसेवया । मोक्षसौख्यमवाष्ट्यावः कृत्वा कर्मपरिक्षयं ॥५१॥ आवां पुत्रादिसंयुक्तौ महाविभवसंगतौ । भारते दर्शयान्येषां विस्मयव्याप्तचेतसां ॥५२॥ शंखचक्रगदापाणिर्मदीयप्रतिमा गृहैः । भारतं व्यापय क्षेत्रं मत्कीर्तिपरिवृद्धये ॥५३॥ इत्यादि वचनं तस्य प्रतिपद्य सुरेश्वरः । सम्यक्त्वे शुद्धिमाख्याप्य भारतं क्षेत्रमागतः ॥५४॥ श्रातुस्नेहवशो देवो यथोदिष्टं स विष्णुना । चक्रे दिव्यविमानस्थं चक्रिलांगलदर्शनं ॥५५॥ वासुदेवगृहैश्वके नागरादिनिवेशितैः । विष्णुमोहमयं लोकं स्नेहारिक वा न चेष्टचते ॥५६॥

ब्रह्मलोकं समासाद्य कृतजैनमहागहः । विदन्सरसुखं सोऽस्थात्सरस्नीनिवहादृतः ॥५७॥ उच्चैर्देशस्थितोऽपि प्रतिभयपतनं याति पातालमूलं । अंको नेवोपलब्धं विषयसुखरसं सारसंसारसारं ॥ स्नेहाधिक्यादधीतं स्मरति न तनुभृत्सेवते प्रत्यनीकं ।

धिक् धिक् स्वर्भोक्षसी रूपप्रतिघमतिघनम्नेहमोहं जनानां ॥५८॥ तीर्थे नेमिजिनस्य तत्र वहति व्यामोहिवच्छेदने ।

संजाते वरदत्तनामिन मुनौ कैवल्यचक्षुष्मित ॥ राजासौ हरिवंशसंतितिधरो धीरो धरायाः सुतो ।

दन्ने राज्यधुरां धुरंघरधराधीशश्रियं धारयन् ॥ ५९ ॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ भगवित्रवाणवर्णनो

नाम पंचषष्टितमः सर्गः।

षद्षष्टितमः सर्गः ।

प्रतापवश्याखिलराजके नृपे प्रशासति क्ष्मातलमुप्रशासने । जरत्कुमारे जनितादराः प्रजाः प्रकाममायुःप्रमदं धरातले ॥ १ ॥ कलिंगराजस्य नृपस्य देहजा जरन्कुमारस्य वधूर्वधूत्तमाः। सुखेन लेभे जगतः सुखावहं वसुध्वजं राजकुलध्वजं सुतं ॥ २ ॥ स तत्र यूनि व्यवसायिनि क्षिति जरत्कुमारो हरिवंशशेखरे । निधाय यातस्तपसे वनं सतां कुलवतं तीव्रतपोनिषेवणं ॥ ३ ॥ सुतोभनचंद्र इव प्रजाप्रियो वसुध्वजाचासुवसुर्वसूपमः। सभीमवर्गास्य कलिंगपालकस्तदन्वयेऽतीयुरनेकशौ नृपाः ॥ ४ ॥ कपिष्टनामान्वयभूषणस्त्वभूदजातशत्रुस्तनयस्ततोऽभवत्। स शत्रुसेनोस्य जितारिरंगजस्तदंगजा यंत्रितशत्रुरीश्वरः ॥५॥ भवान कि श्रेणिक वेत्ति भूपति नृपेंद्रसिद्धार्थकनीयसीपति । इमं प्रसिद्धं जितशत्रुमाख्यया प्रतापवंतं जितशत्रुमंडलं ॥६॥

षद्षष्टितमः सर्गः

जिनेंद्रवीरस्य समुद्रवोत्सवे तदागतः कुंडपुरं सुहृत्परः । सुपूजितः कुंडपुरस्य भूभृता नृगोयमाखंडलतुल्यविक्रमः ॥७॥ यशोदयायां सुतया यशोदया पवित्रया वीरविवाहमंगलं। अनेककन्यापरिवारयारुहत्समीक्षितं तुंगमनोरथं तदा ।।८॥ स्मितेऽथ नाथे तपसि स्वयंभुवि प्रजातकैवल्यविशाललोचने । जगद्विभृत्ये विहरत्यपि क्षिति क्षिति विहाय स्थितवांस्तपस्ययं ॥९॥ अमुष्य याताद्य तपोबलान्युनरवाप्तकैवल्यफला मनुष्यता । मनुष्यभावो हि महाफलं भवे भवेदयं प्राप्तफलस्तपः फलात् ॥१०॥ इतीरितेयं हरिवंशसत्कथा समासतः श्रेणिक लोकविश्रुता । त्रिषष्टिसंख्यानपुराणपद्धतिप्रदेशसंबंधवती श्रियेऽस्तु ते ॥११॥ सुगौतमायुष्यपुराणपद्धति सपार्थिवैः श्रेणिकपार्थिवस्तदा। सुदृष्टिराकण्यं सकर्णतां गता गतः पुरं स्फीतमतिः कृतानितः ॥१२॥ चतुर्णिकायामरखेचरादयो जिनं परीत्य प्रणिपत्य भक्तितः ।

यथायथं जम्मुरजन्मकांक्षिणः प्रसिद्धसद्धर्मकथानरागिणः ॥१३॥ विहृत्य पुज्योऽपि महीं महीयसीं महामुनिर्मोचितकर्मबंधनः। इयाय मोक्षं जितशत्रुकेवली निरंतसौक्यप्रतिबद्धमक्षयं ॥ १४॥ जिनेद्रवीरोऽपि विबोध्य संततं समंततो भव्यसमूहसंतति । प्रपद्म पावानगरीं गरीयसीं मनोहरोद्यानवने तदीयके ॥१५॥ चतुर्थकालेधेचतुर्थमासकैर्विहीनताविश्वतुरब्दशेषके । सकातिके स्वातिषु कृण्णभूतसुप्रभातसंध्यासमये स्वभावतः ॥ १६ ॥ अघातिकमीणि निरुद्धयोगको विध्वय घातीं घनवद्धिबंधनः। विवंधनस्थानमवाप शंकरो निरंतरायोरुसुखानुबंधनं ॥ १७॥ स पंचकल्याणमहामहेश्वरः प्रसिद्धनिर्वाणमहे चतुर्विधैः। श्रीरपूजाविधिना विधानतः सुरैः समभ्यच्येत सिद्धशासनः ॥१८॥ ज्वलस्प्रदीपालिकया परृद्धया सुरासुरैः दीपितया प्रदीप्तया । तदा स्म पावानगरी समंततः प्रदीपिताकाशतला प्रकाशते ॥ १९॥

तथैव च श्रेणिकपूर्वभूभृतः पक्तत्य कल्याणमहं सहप्रजाः । प्रजग्मुरिंद्राश्र सुरैर्यथायथं प्रयाचमाना जिनबोधिमर्थिनः ॥ २० ॥ ततस्तु लोकः प्रतिवर्षमादरात्प्रसिद्धदीपालिकयात्र भारते। सम्रुचतः पूजियतुं जिनेश्वरं जिनेद्रिनवीणविभृतिभक्तिभाक् ॥ २१ ॥ त्रयः क्रमात्केवलिनो जिनात्परे द्विषष्ठिवर्षान्तरभाविनोऽभवन् । ततःपरे पंच समस्तपूर्विणस्तपोधना वर्षशतांतरे गताः ॥ २२ ॥ ञ्यशीतिके वर्षशते तु रूपयुक् दशैव गीता दशपूर्विणः शते । द्वये च विशेंऽगभूतोऽपि पंच ते शते च साष्टादशके चतुर्धुनिः ॥ २३ ॥ गुनः सुभद्रो जयभद्रनामा परो यशोबाहुरनंतरस्ततः । महाहिलोहार्यगुरुश्र ये दधुः प्रसिद्धमाचारमहागमत्र ते ॥ २४ ॥ महातपोभृद्विनयंधरश्रुतामृषिश्रुतिं गुप्तपदादिकां दधत्। मुनीश्वरोऽन्यः शिवगुप्तसंज्ञको गुणैः स्वमईक्वलिरप्यधात्पदं ॥ २५ ॥ स मंदरायोंऽपि च मित्रवीरविं (वित ?) गुरू तथान्यौ बलदेवमित्रकौ । 48

विवर्धमानाय त्रिरत्नसंयुतः श्रियान्वितः सिंहबलश्च वीरवित् ॥ २६ ॥ स पद्मसेनो गुणपद्मखंडभृदुणाप्रणीव्योघपदादिहस्तकः। स नागहस्ती जितदंडनामभूत्सनंदिषेणः प्रभुदीपसेनकः ॥ २७ ॥ तपोधनः श्रीधरसेननामकः सुधर्मसेनोऽपि च सिंहसेनकः । सुनंदिषेणेश्वरसेनकौ प्रभू सुनंदिषेणाभयसेननामकौ ॥ २८ ॥ स सिद्धसेनोभयभीमसेनकौ गुरू परी तौ जिनशांतिषेणकी। अखंडषर्खंडसुमंडितस्थितिः समस्तसिद्धांतमधत्त योथितः ॥ २९ ॥ दधार कर्मप्रकृति श्रुति च यो जिताक्षवृत्तिर्जयसेनसदुरुः। प्रसिद्धवैय्याकरणप्रभाववानशेषराद्धांतसग्रुद्रपारगः ॥ ३० ॥ तदीयशिष्योऽमितसेनसद्भुकः पत्रित्रपुत्राटगणाग्रणी गणी । जिनेद्रसच्छासनवत्सलात्मना तपोभृता वर्षशताधिजीविना ॥ ३१ ॥ सुशास्त्रदानेन वदान्यतामुना वदान्यमुख्येन भुवि प्रकाशिता। यदग्रजो धर्मसहोदरः शमी समग्रधीर्धम इवात्तविग्रहः ॥ ३२ ॥

तपोमयीं कीर्तिमशेषदिश्च यः क्षिपन्बभौ कीर्तितकीर्तिषेणकः। तदग्रशिष्येण शिवाग्रसीरूयभागरिष्टनेमीश्वरभक्तिभाविना । स्वशक्तिभाजा जिनसेनसृरिणा धियाल्पयोक्ता हरिवंशपद्धतिः ॥ ३३ ॥ यदत्र किंचिद्रचितं प्रमादतः परस्परच्याहृतिदोषदृषितं । तदप्रमादास्तु पुराणकोविदाः सृजंतु जंतुरिथतिशक्तिवेदिनः ॥ ३४ ॥ प्रशस्तवंशो हरिवंशपर्वतः क मे मतिः काल्पतराल्पशक्तिका। अनेन पुण्यप्रभवस्तु केवलं जिनेंद्रवंशस्तवनेन वांछितः ॥ ३५ ॥ न काव्यबंधव्यसनानुबंधतो न कीर्तिसंतानमहामनीषया। न काव्यगर्वेण न चान्यवीक्ष्यया जिनस्य भक्त्येत्र कृता कृतिर्यथा ॥ ३६ ॥ जिनाश्रतुर्विशित्रित्र कीर्तिताः सुकीर्तयो द्वादश चक्रवर्तिनः। नवत्रिधा सीरिहरिप्रतिद्विषित्रविष्ठिरित्थं पुरुषाः पुराणगाः ॥ ३७॥ अवांतरेऽनेक्शतानि पार्थिवा महीचरा व्योमचराश्च भूरिशः। क्षितो चतुर्वर्गफलोपमोगिनः पुराणमुख्येऽत्र यशस्विनस्तुताः ॥ ३८॥

नवान्यदीर्घ्यया इति खपुस्तके ।

अगण्यपुण्यं हरिवंशकीर्तिना यदत्र गण्यं गुणसंचितं मया। फलाद् मुष्मन्तु मनुष्यलोकजा भवंतु भव्या जिनशासनिस्थताः ॥ ३९॥ जिनस्य नेमेश्वरितं चराचरप्रसिद्धजीवादिपदार्थभासनं । प्रवाच्यतां वाचकगुरूयसज्जनैः सभागतैः श्रोत्रपुटैः प्रपीयतां ॥ ४० ॥ जिनेद्रनामग्रहणं भवत्यलं ग्रहादिपीडापगमस्य कारणं। प्रवाच्यमानं दुरितस्य दारणं सतां समस्तं चरितं किमुच्यते ॥ ४१ ॥ कुर्वेतु व्याख्यानमनन्यचेतसः परोपकाराय स्वम्रक्तिहेतवे । मुमंगलं मंगलकारिणामिदं निमित्तमप्युत्तममर्थिनां सतां ॥ ४२ ॥ महोपसर्गे शरणं सुशांतिकृत् सुशाकुनं शास्त्रमिदं जिनाश्रयं। प्रशासनाः शासनदेवताश्र या जिनाश्रतुर्विंशतिमाश्रिताः सदा ॥ ४३ ॥ हिताः सतामप्रतिचक्रयान्विताः प्रयाचिताः सिन्नहिता भवंतु ताः । गृहीतचका प्रतिचक्रदेवता तथोर्जयंतालयसिंहवाहिनी। शिवाय यस्मित्रिह सन्निधीयने क तत्र विद्याः प्रभवंति शासने ॥ ४४ ॥

ग्रहोरमा भूतपिशाचराक्षसा हितप्रवृत्तौ जनविव्नकारिणः। जिनेशिनां शासनदेवतागणाः प्रभावशक्त्याथ समं श्रयंति ते ॥ ४५ ॥ प्रकाममाकांक्षितकामसिद्धयः प्रसिद्धधर्मार्थविमोक्षलब्धयः। भवंति तेषां स्फुटमल्पयत्नतः पठंति भक्तया हरिवंशमत्र ये ॥ ४६ ॥ निवार्यमात्सर्यमवार्यवीर्यया धिया सुधैयोजिंतया जिनादराः। अनार्यवर्याः सहिताः सपर्यया पुराणमार्याः प्रथमं तु विष्टपे ॥ ४७ ॥ कि मेऽथवा प्रार्थनया यतस्ततः स्वभावतो विश्वभरक्ष्माविदः। पयोधरोन्मुक्तमिदांबुभूधरा विधाय मूर्झि प्रथमं तु भूतले ॥ ४८ ॥ सुपृष्ट्युत्सृष्ट्ययुदात्तशब्दकैर्नवं पुराणं च पुराणवारि सत्। महाभ्वकुर्लेजीनिता सरित्कुलैश्वतुःसमुद्रांतिमदं प्रतन्यते ॥ ४९ ॥ जयंति देवाः सुरसंघसेविताः प्रजातिशातिप्रदशांतशासनाः । विशुद्धकेवल्यविनिद्रदृष्ट्यो सुदृष्टतस्त्रा भुवने जिनेश्वराः ॥ ५० ॥

जयत्वजय्या जिनधमसंतिः प्रजास्यिह क्षेममुभिश्चमस्तिह ।
सुखाय भूयात्प्रतिवर्षवर्षणैः सुजातसस्या वसुधासुधारिणां ॥ ५१ ॥
शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पंचोत्तरेषूत्तरां पातींद्रायुधनान्नि कृष्णनृपजे श्रीवछभे दक्षिणां ।
पूर्वी श्रीमदवंतिभूभृति नृपे वत्सादिराजे परां शौर्याणामधिमंडलं जययुते वीरेवरोहेऽवित ॥५२॥
कल्याणैः परिवर्धमानविपुलश्रीवर्धमाने पुरे श्रीपाश्चीलयनकराजवसतौ पर्याप्तशेषः पुरा ।
पश्चाद्दोस्तिटकाप्रजाप्रजनितप्राज्याचिनावर्चने शांतः शांतगृहे जिनस्य रचितो वंशो हरीणामयं ५३
च्युत्सृष्टापरसंघसंतिवृहत्पुन्नाटसंघान्वये प्राप्तः श्रीजिनसनसूरिकविना लाभाय बोधे पुनः ।
इष्टोगं हरिवंश पुण्यचरितः श्रीपर्वतः सर्वतो व्याप्ताशासुखमंडलः स्थिरतरः स्थेयात् पृथिव्यां चिरं ॥

इति "अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे" हारिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ गुरुपादकमल-वर्णनोनाम षट्षष्टितमः सर्गः।

इति श्रीहरिवंशपुराणं सम्पूर्ण ।

प्रार्थना

इस प्रन्थमालाको सहायता देना प्रत्येक धर्मात्माका कर्तव्य

होना चाहिए । प्रत्येक दानके अवसरपर इसका स्मरण

रखिए । सब तरहकी सहायता मंत्रीके पास अथवा "जौहरी

माणिकचन्द पानाचन्द एण्ड कम्पनी, जौहरी बाजार,

बम्बई '' के पतेपर भेजना चाहिए।

प्राचीन और अप्रकाशित हस्तलिखित प्रन्थोंकी सूचना भी मंत्रीको देनेके छिए प्रार्थना है।